तुलसी प्रज्ञा

JOURNAL OF THE JAIN VISHVA BHARATI

YUVACHARYA MAHAPRAJNA

जैन विश्व भारती

लाडनूं (राजस्थान)

युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ के मनोनयन पर—हमारी हार्दिक अभिनन्दन व मंगल कामनाएं

तेरापथ धर्म सघ के प्राण, महान द्रष्टा युगप्रधान आचार्य श्री द्वारा महाप्रज्ञ श्री जी का युवाचार्य के रूप मे मनोनयन इस धर्म सघ के उत्तरोत्तर विकास का एक सर्वाधिक गौरवपूर्ण चरण है। हमारी हार्दिक मगल कामनाए व अभिनन्दन है।

हनुमानमल बेंगानी,
सस्थापक—प्रधान ट्रस्टी
श्री मोतीलाल बेंगानी चेरिटेबल ट्रस्ट
१२ इण्डिया एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता

ट्रस्ट ने अपने प्रारभकाल से सन् १९७८-७९ तक की बीस वर्ष की अवधि मे २२ लाख ६३ हजार रुपयो से अधिक की राशि के अनुदान से जिन संस्थाओ की स्थापना व सचालन किया है—

* **होम्यो होस्पीटल, लाडनू**
* **मोतीलाल बेंगानी साइंस कॉलेज लाडनू**
* **वर्द्धमान ग्रन्थागार, जैन विश्व भारती, लाडनू**
* **ठक्करबापा बालमन्दिर, लाडनू**
* **मोतीलाल बेंगानी सभा-स्थल, राणावास**
* **सेठ मोतीलाल बेंगानी ग्रन्थागार, बरौनी, बिहार**
* **सेठ एम० एल० चेरिटेबल डिस्पेंसरी, (मित्र परिषद् भवन) कलकत्ता, (प० बगाल)।**

सेठ मोतीलाल बेंगानी चेरिटेबल ट्रस्ट
(स्थापत सन् १९५९ ई०)
१२ इडिया एक्सचेंज प्लेस
कलकत्ता-७००००१
(प० बगाल)

आचार्य श्री तुलसी ने उत्तराधिकारी के रूप मे युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ को नियुक्त किया । युवाचार्य श्री को आचार्य श्री उत्तराधिकार-पत्र प्रदान कर रहे है, उस समय का दृश्य ।
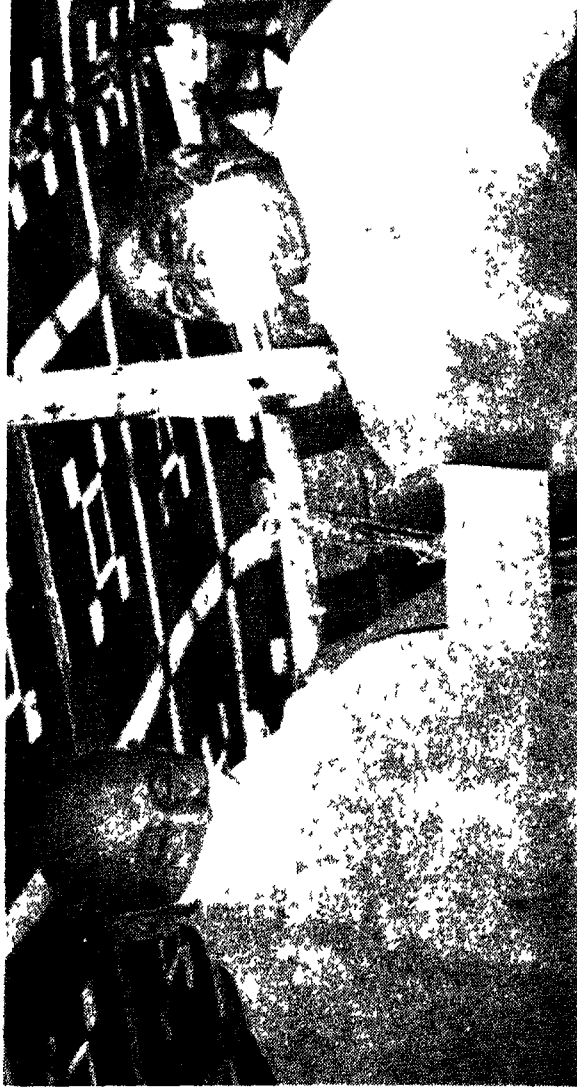
युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ को उत्तराधिकारी घोषित करने के पश्चात् आचार्य श्री तुलसी ने उन्हे अपने पास पट्ट पर बिठाया। युवाचार्य श्री ने अत्यन्त सकोच के साथ पट्ट पर बैठना स्वीकार किया, उस समय का एक भावपूर्ण दृश्य।
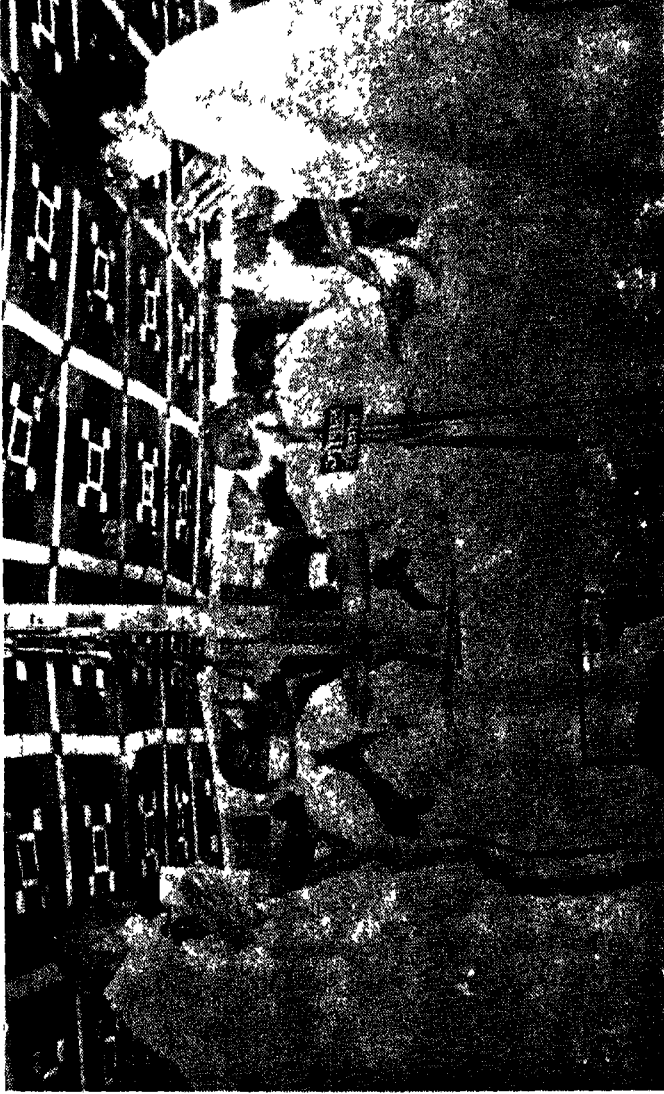
युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ की नियुक्ति के पश्चात् समस्त श्रमण-सघ खडा होकर अभिनन्दन कर रहा है। बीच मे आचार्य श्री तुलसी पट्टासीन है।

तुलसी अध्यात्म नीडम्, जैन विश्व भारती तथा अध्यात्म साधना केन्द्र के संयुक्त तत्त्वावधान मे दिल्ली मे
१८ मार्च से २५ मार्च तक आयोजित नवम प्रेक्षा ध्यान शिविर मे प्रवचन करते हुए
युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ । आचार्य श्री तुलसी का सान्निध्य प्राप्त हो रहा है ।

सम्पादक
डॉ० नथमल टाटिया

सह-सम्पादक
डॉ० कमलेशकुमार जैन

प्रबन्ध सम्पादक
गोपीचन्द चोपडा

जैन विश्व भारती
लाडनूं (राजस्थान)

आजीवन सदस्यता शुल्क 201-00 रुपये मात्र,
वार्षिक शुल्क 25-00 रुपये,
एक अंक का मूल्य : 2-50 रुपये,
इस विशेषांक का मूल्य 10-00 रुपये

'तुलसी प्रज्ञा' पहले त्रैमासिक पत्रिका थी, जिसमे केवल शोध-लेख ही प्रकाशित किये जाते थे, किन्तु अब इसे खण्ड ४, अक ३-४ (अक्टूबर-नवम्बर १९७८) से मासिक बना दिया गया है। प्रस्तुत अक भी युग्माक के रूप मे प्रकाशित किया जा रहा है।

'तुलसी प्रज्ञा' मे जैन विद्या के विविध क्षेत्रो मे चल रही शोध-प्रवृत्तियो से सम्बन्धित शोध निबन्ध एव अन्य ज्ञानवर्धक सामग्री (कथाए, कविताये, मुक्तक, महापुरुषो की जीवनिया सस्मरण, सस्था-परिचय आदि) प्रकाशित की जायेगी। प्रकाशनार्थ प्रेषित निबन्ध एव अन्य सामग्री अन्यत्र प्रकाशित नही होनी चाहिये। सामग्री कागज के एक ओर सुस्पष्ट रूप मे हस्तलिखित या टकित होनी चाहिए। साथ मे लेखक अपना परिचय भी भेजे।

जैन विद्या की विविध विधाओ से सम्बद्ध विषयो पर विश्वविद्यालयो के द्वारा स्वीकृत शोध महानिबन्धो के सार-सक्षेप भी प्रकाशनार्थ भेजे जा सकते है।

'साहित्य समीक्षा' स्तम्भ के अन्तर्गत समीक्षार्थ भेजी जाने वाली पुस्तक की दो प्रतियाँ प्राप्त होनी चाहिए।

नोट :—यह आवश्यक नही है कि इस अक मे प्रकाशित लेखो मे उल्लिखित विचार सम्पादक अथवा सस्थान को मान्य हो।

खण्ड-४ फरवरी-मार्च १९७९ अंक ७-८

युवाचार्य विशेषांक

लेख-सूची

लेखक परिचय

१ युग प्रधान आचार्य श्री तुलसी
जैन श्वेताम्बर तेरापथ के
नवम आचार्य एव अणुव्रत-
अनुशास्ता

२ युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ
जैन श्वेताम्बर तेरापथ मे
आचार्य श्री तुलसी के उत्तराधिकारी
(पूर्ण नाम मुनि नथमल)

३. साध्वी प्रमुखा श्री कनकप्रभा
जैन श्वेताम्बर तेरापथ साध्वी समुदाय
की प्रमुखा एव
आचार्य श्री तुलसी की शिष्या

४ प्रो० दलसुख भाई मालवणिया
भू० पू० निदेशक
लाल भाई दलपत भाई
भारतीय सस्कृति विद्यामन्दिर
अहमदाबाद-६

५ श्री अगर चन्द नाहटा
नाहटो की गवाड
बीकानेर (राजस्थान)

६ श्री जमनालाल जैन
अभयकुटीर
सारनाथ
वाराणसी (उ० प्र०)

७ श्री गोपीचन्द चोपडा
कुल सचिव
जैन विश्व भारती
लाडनू (राजस्थान)

८ श्री जबरमल भडारी
जाटावास
जोधपुर

९ श्री रतिलाल भाई
अहमदाबाद

१० मुनि श्री किशनलाल
आचार्य श्री तुलसी के शिष्य

११ मुनि श्री नथमल (बागौर)
जैन श्वेताम्बर तेरापथ के सर्वाधिकज्येष्ठ
सन्त
(आचार्य श्री तुलसी के आज्ञानुवर्ती)

१२- मुनि श्री दुलहराज
आचार्य श्री तुलसी के शिष्य

१३ मुनि श्री बुद्धमल्ल
आचार्य श्री तुलसी के शिष्य एव
युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ के सहपाठी

१४ साध्वी श्री कनकश्री
आचार्य श्री तुलसी की शिष्या

१५ मुनि श्री रवीन्द्रकुमार
आचार्य श्री तुलसी के शिष्य

१६ मुनि श्री विमलकुमार
आचार्य श्री तुलसी के शिष्य

१७ श्री लूनकरण विद्यार्थी
प्रवक्ता
जैन विश्व भारती
लाडनू (राजस्थान)

१८ साध्वी श्री मोहन कुमारी
"श्रीडू गरगढ"
आचार्य श्री तुलसी की शिष्या

१९ साध्वी श्री आनन्दश्री
आचार्य श्री तुलसी की शिष्या

२० श्री कन्हैयालाल फूलफगर
हिन्दी के प्रसिद्ध कवि
मित्र परिषद, कलकत्ता

२१ श्री सोहनराज कोठारी
न्यायाधीश, औद्योगिक न्यायाधिकरण
३१, गंगवाल पार्क
जयपुर (राजस्थान)

२२. साध्वी श्री सघमित्रा
आचार्य श्री तुलसी की शिष्या

२३ डा० नरेन्द्र भानावत
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर (राजस्थान)

२४ श्री देवेन्द्रकुमार कर्णावट
सम्पादक "सस्थान", राजसमन्द

२५ साध्वी श्री कमलश्री
आचार्य श्री तुलसी की शिष्या

२६ उपाध्याय श्री अमर मुनि
जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी
सम्प्रदाय के उपाध्याय
वीरायतन, राजगृह

२७ डा० छगनलाल शास्त्री
सरदारशहर

२८ मुनि श्री छत्रमल
आचार्य श्री तुलसी के शिष्य

२९ मुनि श्री नवरत्नमल
आचार्य तुलसी के शिष्य

३० मुनि श्री मोहनलाल 'शार्दूल'
आचार्य श्री तुलसी के शिष्य

३१ साध्वी श्री यशोधरा
आचार्य श्री तुलसी की शिष्या

३२. प्रो० कैलाशचन्द जैन
इतिहास विभाग
श्री दि० जैन कालेज
बड़ौत (उ० प्र०)

३३ डॉ० जेठमल भसाली
१० ई केमेक कोर्ट
२५ केमेक स्ट्रीट
कलकत्ता-१६

३४ कुमारी मुकेश जैन
इतिहास विभाग
श्री दि० जैन कालेज,
बड़ौत (उ० प्र०)

३५ डा० नेमीचन्द जैन
सम्पादक, तीर्थंकर, इन्दौर

३६ डा० एस० के० रामचन्द्र राव
बैंग्लोर

३७ श्री रामस्वरूप सोनी
जैन विश्व भारती
लाडनू (राजस्थाम)

३८ सुश्री वीणा जैन
जैन विश्व भारती
लाडनू (राजस्थान)

३९ डा० नथमल टाटिया
निदेशक, शोध विभाग
जैन विश्व भारती
लाडनू (राजस्थान)

४० डा० शिवकुमार
उच्चानुशीलन सस्कृत केन्द्र
पूना विश्वविद्यालय
पूना-७

विद्वानों की सम्मतियाँ

डा० नेमीचन्द जैन, सम्पादक 'तीर्थङ्कर' इन्दौर (म०प्र०)

'तुलसी प्रज्ञा' अच्छा निकल रहा है। उसका व्यक्तित्व और चरित्र अलग है। वह दूसरी तरह की भूख मिटाता है। उसका होना भी आवश्यक है। क्वालिटी की दृष्टि से सम्पादक गण बधाई के पात्र हैं।

श्री कपूरचन्द जैन, प्रवक्ता-के० के० जैन डिग्री कालेज, खतौली (उ० प्र०)

'तुलसी प्रज्ञा' का प्राप्त अक देखकर प्रसन्नता हुई और यह जान कर और भी प्रसन्नता हुई कि अब यह पत्रिका त्रैमासिक से मासिक होने जा रही है। मै आशा करता हू कि यह पत्रिका समग्र जैन समाज की प्रतिनिधि स्तरीय पत्रिका होते हुए अपना उदाहरण आप होगी।

श्री कैलाशचन्द जैन 'मनीष', प्रवक्ता-दि० जैन कालेज बडौत

'तुलसी प्रज्ञा' आध्यात्मिक-ज्ञान, धर्म-दर्शन, सस्कृति के प्रसार का भडार है। भौतिक युग की चमक-दमक मे आत्मिक चेतना धूमिल होती जा रही है, मानव-मन अशान्ति मे डूबता जा रहा है। **'तुलसी प्रज्ञा'** मे उच्चकोटि के विद्वानो के द्वारा हृदयग्राही, मानवीय, नैतिकता की शिक्षा देने वाले लेखो का महत्त्व स्वय अभिव्यक्त है।

"तुलसी प्रज्ञा" धर्म-दर्शन, सस्कृति के छिपे हुए उपयोगी अध्यायो को प्रकट करने का प्रयास कर रही है। जैन दर्शन के अतिरिक्त अन्य धर्म-दर्शनो, प्राच्य इतिहास, सस्कृति एव सभ्यता के तार्किक विवेचन के लेखो को स्थान देकर पत्रिका अपने उद्देश्य मे अधिक सफलता प्राप्त कर सकेगी, जिससे इसका दृष्टिकोण और अधिक व्यापक होगा।

श्री कुन्दनलाल जैन, प्रिंसिपल, शिक्षा निदेशालय, दिल्ली प्रशासन

आपका पत्र और पत्रिका दोनो प्राप्त किए। धन्यवाद। पत्रिका बडी सुन्दर साज-सज्जा एव टिकाऊ कागज से परिपूर्ण है। रूप-रग शोध-पत्रिका जैसा ही प्रतीत होता है। चिन्तन-परक सामग्री का बाहुल्य है। मुनि श्री नथमल जी की तार्किक शैली एव चिन्तन निश्चय ही अनुसन्धित्सुओ के लिए पूर्णतया उत्प्रेरक है।

सम्पादकीय

जैन श्वेताम्बर तेरापथ धर्मसघ प्रारम्भ से ही एक आचार्य के नेतृत्व मे फला-फूला और विकसित हुआ है। यही कारण है कि समस्त धर्मसघो मे एकता की दृष्टि से इसका असाधारण स्थान है। इस धर्मसघ मे दीक्षित साधु-साध्वी-सघ एक ही आचार्य के कुशल निर्देशन मे चलता है। **भिक्षु स्वामी** ने जिस धर्मवृक्ष का बीजारोपण किया, उसे क्रमश **आचार्य भारिमाल, ऋषिराय, जयजश, मघवा, माणक, डालचन्द, कालूगणी** और **आचार्य श्री तुलसी** ने सिञ्चित कर समृद्ध किया है।

अणुव्रत अनुशास्ता युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी तेरापथ धर्मसघ के नवम-आचार्य है। आपके शासन काल मे इस धर्मसघ ने जो चातुर्दिश् उन्नति की है, वह आपकी कार्य-क्षमता का निदर्शन है। किसी भी धर्मसघ को एक सूत्र म पिरोए रहने का कार्य गुरुतर होता है और उससे भी गुरुतर कार्य होता है अपने सुयोग्य उत्तराधिकारी का चयन। किन्तु आचार्य श्री ने इस कार्य मे अपनी जिस अलौकिक सूझ-बूझ का परिचय दिया है, वह अभि-नन्दनीय है।

गत ३ फरवरी को राजलदेसर मे आचार्य श्री ने तेरापथ धर्मसघ के ११५वे मर्यादा महोत्सव के अवसर पर विशाल चतुर्विध सघ के ममक्ष **मुनि श्री नथमल जी को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया है**। कुछ ही महीनो पूर्व परमपूज्य आचार्यप्रवर ने उन्हे **महाप्रज्ञ** की उपाधि से विभूषित किया था और अब उन्हे **युवाचार्य** के पद पर आसीन किया है। साथ ही साथ उनकी **महाप्रज्ञ** उपाधि को उनके नाम मे परिवर्तित कर दिया है और अब महाप्रज्ञ विशेषण विशेष्य बनकर उनका स्वरूप बन गया है।

इस प्रसग मे 'प्रज्ञा' शब्द के मौलिक अर्थ पर प्रकाश डालना अप्रासगिक न होगा। प्रज्ञा के सामान्यत तीन भेद गिनाये गये हैं—१ श्रुतमयी प्रज्ञा २ चिन्तामयी प्रज्ञा एव ३ भावनामयी प्रज्ञा। आप्तवचन के आधार पर विकसित प्रज्ञा को श्रुतमयी प्रज्ञा, चिन्तन-मनन पर आधारित प्रज्ञा को चिन्तामयी प्रज्ञा एव समाधिजन्य ज्ञान को भावनामयी प्रज्ञा कहा गया है। ये तीनो प्रज्ञाए आध्यात्मिक विकास के सोपान है। **पातञ्जल योगभाष्य** मे एक श्लोक उद्धृत है, जो प्रज्ञा के स्वरूप पर विशद प्रकाश डालता है। वह इस प्रकार है—

आगमेनानुमानेन ध्यानाभ्यासरसेन च ।
त्रिधा प्रकल्पयन्प्रज्ञां लभते योगमुत्तमम् ॥

यह उक्ति **युवाचार्य** के जीवन मे अक्षरश चरितार्थ होती है। आपका गम्भीर आगमज्ञान एव चिन्तन-मनन अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति पा चुका है तथा ध्यान के क्षेत्र को भी नये आयाम प्रदान किये हैं।

परमाराध्य आचार्य श्री ने मुनिश्री को **युवाचार्य** पद पर नियुक्त करके एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य सुसम्पन्न किया है, जो तेरापथ महासघ को और भी अधिक उज्ज्वल बनायेगा, ऐसा हमारा सुदृढ विश्वास है।

युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ के सम्मान मे '**तुलसी प्रज्ञा**' का प्रस्तुत अक **युवाचार्य महाप्रज्ञ विशेषांक** के रूप मे प्रकाशित किया जा रहा है।

इसे प्रकाशित करने मे हमे भाई कमलेश जी चतुर्वेदी द्वारा प्रसारित विज्ञप्तियो एव विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ से काफी सहयोग मिला है, जिसके लिए हम अत्यन्त आभारी है।

—नथमल टाटिया
सम्पादक

विज्ञापन-दाताओं को आह्वान

आप अपने से सम्बन्धित अथवा सम्पृक्त व्यावसायिक सस्थानो के विज्ञापन इस पत्रिका मे प्रकाशित करा कर हमे सहयोग प्रदान करे। विज्ञापन दर प्रति अक इस प्रकार है—

कवर का चौथा पृष्ठ ५००/- रु०
कवर का द्वितीय व तृतीय पूरा पृष्ठ ४००/- रु०
कवर का द्वितीय व तृतीय आधा पृष्ठ २५०/- रु०
पत्रिका के भीतर का पूरा पृष्ठ ३००/ रु०
पत्रिका के भीतर का आधा पृष्ठ १७५/ रु०

विज्ञापन-दाता की रुचि के अनुकूल स्पेशल आर्ट पेपर पर एक से अधिक रगो की छपाई कराए जाने का भी प्रावधान है, जिनकी दरो के लिए कुल सचिव अथवा हमारे अधिकृत प्रतिनिधि से सम्पर्क स्थापित करे।

विज्ञापन मे कोई ब्लॉक देना अभीष्ट हो तो विज्ञापन-दाता के ब्लॉक भेजने पर या उनके व्यय पर उसकी व्यवस्था भी हो सकेगा। लगातार तीन या अधिक अको मे विज्ञापन देन पर उपरोक्त दरो मे कुछ रियायत किए जाने का भी प्रावधान है, जिसके लिए सपर्क स्थापित करे।

—गोपीचद चोपड़ा
प्रबन्ध सम्पादक

वचन-वीथी

खत्तियगणउग्गरायपुत्ता
माहणभोइय विविहा य सिप्पिणो।
नो तेसिं वयइ सिलोगपूयं
तं परिन्नाय परिव्वए स भिक्खू॥

क्षत्रिय, गण, उग्र, राजपुत्र, ब्राह्मण भोगिक (सामन्त) और विविध प्रकार के शिल्पी जो होते है, उनकी श्लाघा और पूजा नही करता, किन्तु उमे दोष-पूर्ण जान उसका परित्याग कर जो परिव्रजन करता है—वह भिक्षु है।

गिहिणो जे पव्वइएण दिट्ठा
अप्पव्वइएण व संथुया हविज्जा।
तेसिं इहलोइयफलट्ठा
जो संथवं न करेइ स भिक्खू॥

दीक्षा लेने के पश्चात् जिन्हे देखा हो या उसमे पहले जो परिचित हो, उनके साथ इहलौकिक फल (वस्त्र-पात्र आदि) की प्राप्ति के लिए जो परिचय नही करता—वह भिक्षु है।

सयणासणपाणभोयणं
विविहं खाइमसाइमं परेसिं।
अदए पडिसेहिए नियण्ठे
जे तत्थ न पउस्सई स भिक्खू॥

शयन, आसन, पान, भोजन और विविध प्रकार के खाद्य-स्वाद्य गृहस्थ न दे तथा कारण विशेष मे माँगने पर भी इन्कार हो जाए, उस स्थिति मे जो प्रद्वेष न करे—वह भिक्षु है।

जं किंचि आहारपाणं विविहं
खाइमसाइमं परेसिं लद्धुं।
जो तं तिविहेण नाणुकम्पे
मणवयकायसुसंवुडे स भिक्खू॥

गृहस्थो के घर से जो कुछ आहार, पानक और विविध प्रकार के खाद्य-स्वाद्य प्राप्त कर जो गृहस्थ की मन, वचन और काया मे अनुकम्पा नही करता—उन्हे आशीर्वाद नही देता, जो मन, वचन और काया से सुसवृत होता है—वह भिक्षु है।

आयामगं चेव जवोदणं च
सीयं च सोवीरजवोदगं च।
नो हीलए पिण्डं नीरसं तु
पन्तकुलाइं परिव्वए स भिक्खू॥

ओसामन, जौ का दलिया, ठण्डा-बासी आहार, काँजी का पानी, जौ का पानी जैसी नीरस भिक्षा की जो निन्दा नही करता, जो सामान्य घरो मे भिक्षा के लिए जाता है—वह भिक्षु है।

सद्दा विविहा भवन्ति लोए
दिव्वा माणुस्सगा तहा तिरिच्छा।
भीमा भयभेरवा उराला
जो सोच्चा न वहिज्जई स भिक्खू॥

लोक मे देवता, मनुष्य और तिर्यञ्चो के अनेक प्रकार के रौद्र, अमित भयकर और अद्‌भुत शब्द होते हैं, उन्हे सुनकर जो नही डरता—वह भिक्षु है।

वाद विविहं समिच्च लोए
सहिए खेयाणुगए य कोवियप्पा।
पन्ने अभिभूय सव्वदसी
उवसन्ते अविहेडए स भिक्खू॥

लोक मे विविध प्रकार के वादो को जानकर भी जो भिक्षुओ के साथ रहता है, जो सयमी है, जिसे आगम का परम अर्थ प्राप्त हुआ है, जो प्राज्ञ है, जो परीषहो को जीतने वाला और सब जीवो को आत्म-तुल्य समझने वाला है, जो उपशान्त और किसी को भी अपमानित न करने वाला होता है—वह भिक्षु है।

असिप्पजीवी अगिहे अमित्ते
जिइन्दिए सव्वओ विप्पमुक्के।
अणुक्कसाई लहुअप्पभक्खी
चेच्चा गिह एगचरे स भिक्खू॥

जो शिल्प-जीवी नही होता, जिसके घर नही होता, जिसके मित्र नही होते, जो जितेन्द्रिय और सब प्रकार के परिग्रह से मुक्त होता है, जिसका कषाय मन्द होता है, जो थोडा और निस्सार भोजन करता है, जो घर को छोड अकेला (रागद्वेष से रहित हो) विचरता है—वह भिक्षु है।

(उत्तरज्झयणाणि, अ० १५/९-१६)

आचार्य प्रवचन*

अनासक्ति

आसक्ति और कर्म के आधार से पुरुष चार प्रकार के होते है —

१ कुछ पुरुष आसक्ति छोड देते है, पर कर्म को नही छोडते ।
२ कुछ पुरुष कर्म को छोड देते है, पर आसक्ति को नही छोडते ।
३ कुछ पुरुष आसक्ति और कर्म दोनो को छोड देते है ।
४ कुछ पुरुष न कर्म को छोडते है और न आसक्ति को ।

महान् व्यक्ति वह होता है, जो कर्म और आसक्ति दोनो से मुक्त हो जाता है। पर ऐसे व्यक्ति विरले ही होते है। सामान्य व्यक्ति दोनो को छोडने की क्षमता नही रखते। वे किसी एक से मुक्त होने का प्रयत्न करते है।

कार्य उतना ही करना चाहिए, जितनी क्षमता हो। क्षमता के बाहर किया गया कार्य या तो कार्य-सम्पूर्ति से पहले ही छोड दिया जाता है अथवा वह विघ्नोत्पादक बन जाता है। कोई भी कार्य क्यो न हो, प्रारम्भ करके पीछे हटना क्लीवता का सूचक है। किसी नीतिकार ने कहा है—

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचै,
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्या ।
विघ्नै पुन पुनरपि प्रतिहन्यमाना,
प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति ॥

कुछ व्यक्ति विघ्न के भय से किसी कार्य को प्रारम्भ ही नही करते। उन्हे प्रतिक्षण सन्देह बना रहता है कि कार्य प्रारम्भ किया और विघ्न उपस्थित हो गया, तो फिर क्या होगा ? मध्यम श्रेणी के व्यक्ति कार्य को प्रारम्भ तो कर देते है, पर ज्योही कुछ कठिनाइयाँ

*आचार्य श्री तुलसी के प्रवचन से ।

आती है, कार्य को बीच मे ही छोड देते है। तीसरी कोटि के व्यक्ति महान् व्यक्ति होते है। वे धीर, वीर और गम्भीर होते है। भले उनके सामने कितनी ही कठिनाइयाँ क्यो न आए, स्वीकृत मार्ग से वे एक इ च भी इधर-उधर नही होते। उनका विवेकी और पुरुषार्थी मानस कभी भी औचित्य का अतिवर्तन नही करता। जो विवेकपूर्वक आसक्ति और कर्म दोनो को छोडने की क्षमता रखता है, वस्तुत वह महान् होता है।

आत्म-साधना के क्षेत्र मे अनासक्ति का बहुत बडा महत्त्व है। मोक्ष-प्राप्ति म गृह-त्याग की भी कम महत्ता नही है, पर आसक्ति से मुक्त हुए बिना केवल गृहत्याग फलदायी नही होता।

भगवान् महावीर से पूछा गया—भन्ते ! क्या मोक्ष पाने के लिए गृहवास का त्याग करना और साधु-वेष धारण करना अनिवार्य है?

भगवान् ने कहा—वेष और गृहवास मोक्ष-प्राप्ति मे इतने बाधक नही, जितनी बाधक है आसक्ति। मुक्ति का सम्बन्ध अन्तर्वृत्तियो से है। अन्तर्वृत्तियाँ यदि अनासक्त नही है, तो वेष बदल लेने पर भी मुक्ति नही होती और आन्तरिक वृत्तियाँ अनासक्त है कषाय-मुक्त है, तो गृहवास से मुक्त हुए बिना भी मुक्ति हो जाती है।

कोई व्यक्ति यह आग्रह करे कि भगवान् ने गृहस्थ वेष मे भी मुक्त होना बताया है, इसलिए मै तो इसी वेष मे रहूगा, साधु-वेष स्वीकार नही करूगा, यह चिन्तन भूल भरा चिन्तन है। गृहस्थ वेष का आग्रह भी मेरी दृष्टि मे एक आसक्ति ही है। जब मनुष्य विरक्त बन गया, ससार-त्याग की ओर उन्मुख बन गया, फिर साधु-वेष धारण न करने का क्या प्रयोजन? हमारे सामने अपवाद रूप मे एक या दो उदाहरण ही ऐसे मिलते है, मरुदेवी माता व भरत चक्रवर्ती का, जिन्होने गृहस्थ वेष मे रहते हुए भी कैवल्य प्राप्त किया।

साधु-वेष एक पहचान है, पर यह विचारो को भी बहुत प्रभावित करता है। साधक का यह चिन्तन रहता है कि मैने साधु का वेष धारण किया है। मै यदि अनुचित कार्य करूगा, तो लोग मुझे क्या कहेगे? मेरी एक गलती से सारा सघ बदनाम होगा। यह मेरे लिए उचित नही है। वेष भी मनुष्य का त्राण बन जाता है और उसे पथच्युत होने से बचा लेता है, ऐसे अनेक उदाहरण पढे और सुने जाते है।

— ० —

युवाचार्य का मनोनयन : एक ऐतिहासिक घोषणा

आचार्य तुलसी

[तेरापन्थ धम-सघ के राजलदेसर मे आयोजित ११५वे मर्यादा महोत्सव (दि० ३ फरवरी, १९७९) के शुभावसर पर युग प्रधान आचार्य श्री तुलसी ने युग-निर्माण कारी घोषणा द्वारा चतुर्विध धर्म सघ को आत्मविभोर कर दिया। उन्होंने फरमाया—]

आज मुझे इस धर्म सघ का नेतृत्व और दायित्व निभाते ४३ वर्ष हो गए और मैंने अपने दायित्व को मनसा, वाचा, कर्मणा निभाया और निभाता रहूंगा। आज मेरी अवस्था ६५ वर्ष की हो गई है। आप देखते है कि हमारे धर्म-सघ के अब तक जितने आचार्य हुए है, एक को छोडकर सभी आचार्यों ने इस उम्र से पहले-पहल अपना दायित्व औरो को सौप दिया। मै भी आज एक घोषणा करना चाहता हू। (सारी सभा मे एक सन्नाटा)। एक नाम की घोषणा करना चाहता हू। (लोगो की उत्सुकता तीव्रतम हो गई)। कुछ लोगो मे बेचैनी है, क्या ? ६५ वर्ष की उम्र है, अब तक उत्तराधिकार की कोई चर्चा नही है, कही माणकगणी की तरह बरतारा न बीत जाए। कुछ लोगों को यह चिन्ता है कि आचार्य श्री परेशानी मे है। करना चाहते है, किन्तु कर नही सकते। कुछ लोग यह कहते है कि करें क्या, साधुओ मे बडा भारी विरोध है, न जाने कब क्या हो जाय। ऐसी बातें पागलपन की उपज है, निरर्थक है और असत्य है। आज तक मेरे मन मे इसके लिए कभी भी एक क्षण भी बेचैनी नही हुई है। इस बारे मे कभी मैंने निर्णय लिया ही नही। एक दो बार मेरे मन मे यह बात जरूर आई। आकस्मिक बीमारी आई। तब मैंने सोचा कि अकस्मात् कोई काम हो जावे तो क्या करना चाहिए। मैंने कोई चिन्तन भी किया और फिर उसे छोड दिया। मै ठीक कह रहा हूँ। धर्मसघ के सब साधु-साध्वी बैठे है। मैंने इस विषय मे कभी चिन्ता नही की। मुझे लगता है, आज भी मेरे लिए स० १९९३ वि० का साल है। मेरा उल्लास, मेरी प्रसन्नता मे कोई कमी नही है। लेकिन आज मै एक नाम घोषित करना चाहता हूं। लोग चिन्तन कर रहे होगे।

नाम पुराना है। भारतवर्ष मे ही है, बाहर नही है। (लोगो का धैर्य विचलित हो रहा था। सब आचार्य श्री की ओर टकटकी बाँधे हुए थे।) मेरी दृष्टि मे, मेरी आज्ञा मे, मेरे चिन्तन और इ गित पर चलने वाले साधु का नाम है। साधु सक्षम है मेरा दायित्व

निभाने को। अब किन-किन का नाम लू। मैं जिस किसी पर हाथ रख कर कहूँ कि तुम निभाओ, वही निभा सकता है। अब आप लोग आतुर हो रहे होगे। मेरे समूचे जीवन का सबसे बडा निर्णय है। यह निर्णय समूचे सघ का निर्णय है। किसी साधु को कल्पना नही है कि क्या होने वाला है आज ? यह पत्र (उत्तराधिकार) मेरे हाथ मे है। इस पत्र को मैंने आज ही दिन के साढे ग्यारह बजे लिखा है। अब मै अपने उत्तराधिकारी का नाम घोषित कर रहा हूँ।

आचार्य प्रवर ने आगे कहा, "**मैं आज तेरापन्थ धर्म सघ के ११५वें मर्यादा महोत्सव मे अपने उत्तराधिकारी के रूप मे महाप्रज्ञ मुनि नथमल को नियुक्त करता हू।**" बस, इतना सुनते ही आचार्य श्री तुलसी की जय जयकार से आकाश गुजित हो उठा। लोग थिरकने से लगे। खुशी का अपार समुद्र लहराने लगा।

आचार्य प्रवर ने आगे कहा—मै चाहता हूँ कि युवाचार्य महाप्रज्ञ एक क्षण के लिए मेरे आसन पर बैठे। ये सकोच कर रहे है। यह कोई नया काम नही है। जयाचार्य ने ऐसा किया था। जयाचार्य ने किसी विशिष्ट साधु को अपने पास बिठाया था। मैं तो युवाचार्य को बिठा रहा हूँ। किन्तु ये उपचार पसन्द नही करते है। मुझे लगता है कि इनका पट्ट पर बैठना बडा मुश्किल हो जायगा। मै यह बहुत अच्छा मानता हूँ। ऊपर बैठने मात्र से कोई बडा नही होता है, नीचे बैठने से कोई छोटा नही होता है। सब लोग अपने-अपने स्थान पर बैठे-बैठे इनका अभिवादन करे। (उपस्थित जन समुदाय हर्ष-विभोर होकर वन्दन करता है।)

मुझे बहुत प्रसन्नता है इस दायित्व को सौप कर। तथापि मै अपने को हल्का अनुभव नही कर रहा हूँ। दायित्व तो मैने सौप दिया, परन्तु मेरा भार तो मुझे वहन करना ही होगा। ये किसी दूसरे काम मे सलग्न है। मै बाधक बनना नही चाहता। मै इनको आश्वासन देता हूँ कि तुम निश्चिन्त रह कर अपनी साधना को चलाओ। बाकी सब काम मै सम्हालता रहूगा। अभी मैं स्वय सक्षम हू काम करने के लिए। हमारी साध्वी प्रमुखा ने कहा आप यह काम कर तो रहे हो, क्या आपको कार्य मे राहत मिलेगी ? मुझे राहत नही मिलेगी और न मैं यह चाहता हूँ। इतना सुन्दर वातावरण देख कर मै स्वय हर्ष-विभोर हो रहा हूँ। धर्मसघ के लिए एक अकल्पित काम हुआ है, जिससे धर्मसघ की शोभा बढेगी और इसका बहुमुखी विकास होगा। मैं अत्यन्त प्रसन्न मन से इनको आशीर्वाद देता हूँ कि इनके नेतृत्व मे धर्मसघ फूले-फले।

———

मेरे जीवन का करणीय कार्य सम्पन्न हुआ। काम करने के बाद इतनी प्रसन्नता हुई कि कल रात को नीद भी निश्चितता की आई। मैने अपना कार्य किया है। समूचा सघ प्रसन्न है।"

आचार्य तुलसी

उत्तराधिकार पत्र

अर्हम्

।। नमोत्थुण समणस्स भगवओ महावीरस्स ।।

।। श्री भिक्षु भारिमाल ऋषिराय जयजस मघवा माणक डालचन्द
कालु गुरुभ्यो नमो नम ।।

मै आज तेरापन्थ धर्म मघ के ११५वे मर्यादा महोत्सव समारोह मे अपने उत्तराधिकारी के रूप मे महाप्रज्ञ शिष्य मुनि नथमल को नियुक्त करता हूँ।

मुनि नथमल प्रारम्भ से ही मेरे प्रति समर्पित रहा है और अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति करता रहा है। मेरा विश्वास है मुनि नथमल अपने दायित्व का समग्रता से निर्वाह करते हुए हमारे धर्म मघ को उत्तरोत्तर विकासोन्मुख बनाता रहेगा।

आचार्य तुलसी
साक्ष्य **साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा**

वि० स० २०३५, माघ शुक्ला ७,
शनैश्चर, दिनमान ११॥ बजे
नाहर-भवन, राजलदेसर (राज०)
३।२।१९७९

आचार्य प्रवर का शुभाशीर्वाद*

नथमल नामग सीस, महापण्ण समप्पिय ।
आयरियो तुलसी ह, उत्तराहिगारमप्पेमि ।।१।।

मै आचार्य तुलसी अपने महाप्रज्ञ और समर्पित शिष्य मुनि नथमल को अपना उत्तराधिकार सौंपता हू।

णाणेण दसणेण य पेहाझाणेण सतय ।
विगास कुणमाणो सो, चिर अच्छउ सासणे ।।२।।

ज्ञान, दर्शन और प्रेक्षा-ध्यान के द्वारा सतत विकास करते हुए युवाचार्य महाप्रज्ञ धर्म-शासन मे दीर्घजीविता प्राप्त करे ।

सतो दतो सुई दक्खो, ओयसी सुपइट्ठिओ ।
गहीयनव्वदाइत्तो, चिर अच्छउ सासणे ।।३।।

शान्त, दान्त, शुचि, दक्ष, ओजस्वी और सुप्रतिष्ठित युवाचार्य महाप्रज्ञ अपने नए दायित्व को स्वीकार कर धर्म-शासन मे दीर्घ-जीविता प्राप्त करे ।

साहुणो साहुणीओ य, सावगा साविया तहा ।
सम्म आसासयतो सो, चिर अच्छउ सासणे ।।४।।

साधु-साध्वियो और श्रावक-श्राविकाओ को पूर्ण रूप से आश्वस्त करते हुए युवाचार्य महाप्रज्ञ धर्म-शासन मे दीर्घ-जीविता प्राप्त करे ।

संघे णवणवायामा, नवुम्मेसा णवक्कमा ।
णिच्च उग्घाडयतो सो चिर अच्छउ सासणे ।।५।।

धर्मसघ मे सदा नए-नए आयामो, उन्मेषो और अभिक्रमो का उद्घाटन करते हुए युवाचार्य महाप्रज्ञ धर्म-शासन मे दीर्घ-जीविता प्राप्त करे ।

---

*आचार्य श्री तुलसी द्वारा अपने उत्तराधिकारी युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ (पूर्वनाम-मुनि श्री नथमल) को पट्टाभिषेक के समय प्रदत्त आशीर्वाद ।

नयी कसौटी : नया दायित्व*

युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ

आचार्यवर ! आप बहुत शक्तिशाली है। आप मे असीम शक्ति है। आपको राहत लेने की भी जरूरत नही और आपको कोई राहत दे सके, यह भी एक चिन्तनीय प्रश्न है। किन्तु आज आप स्वय भारी है, गुरु है पर स्वय राहत लेना भी नही चाहते और दूसरे को भारी बना देना चाहते ह। यह दोनो बातें बहुत ही अजीब-सी है। मेरा सारा जीवन मेरे सामने चित्रपट की भाँति अकित है। मै जिस दिन दीक्षित होकर आया, पूज्य आचार्य कालूगणी जी ने कहा तुम मुनि तुलसी के पास जाओ। वही तुम्हारी शिक्षा-दीक्षा होगी। मैं चला गया। उनके पास रहा। कैसे रहा, यह आपको बताऊ तो शायद नही भी माने। जानने वाले जानते ह, जानने वाले भी बैठे है, जिन्होने हमारे बचपन को देखा है। साक्षी है, जो जानते है। मै आपको नही कह सकता कि आचार्य तुलसी के प्रति समर्पित हुआ, लोग कहते है ऐसा। किन्तु मै इस बात को नही मानता। जहाँ अद्वैत लगता हो, वहाँ समर्पण की बात ही कैसे हो सकती है ? मैंने देखा, अनुभव किया, कोई ऐसा अज्ञात सस्कार या, जिसे मै स्वय नही समझता। एक घटना मै आपको बताऊ।

पाली की बात है। पूज्य कालूगणी विराज रहे थे। किसी कारणवश मै कोई पाठ याद नही कर सका। मुनि तुलसी कुछ नाराज हो गये। यह मेरे लिए सबसे बडा दण्ड था। यह कभी मान्य नही था। बहुत कठिन समस्या थी। प्रतिक्रमण के बाद मैं गया और पैर पकडकर बैठ गया। इतने समय तक बैठा रहा कि लगभग पूरा पहर बीत गया। न ये बोले और न मै बोला। सोने का समय आया। उठकर चले। आप कल्पना कर सकते है कि यह समर्पण नही होता, यह कोई अद्वैत ही हो सकता है। आचार्यवर को लाडनू रहना पडा, किसी कारणवश। मै आ गया छापर पूज्य कालूगणी के साथ। मेरा तो मन नही लगता था, पर मुझे लगता था मन आचार्यवर का भी नही लगता था। कुछ साधु आए, सुखलाल जी स्वामी, अमोलकचन्द जी, प्रार्थना की। मुझे भेजा गया। मै वहाँ पहुचा। सब साधु गोचरी गये हुए थे। केवल मैं बैठा था, आपकी उपासना मे। आपने कहा—क्या तुम भी मेरे जैसे बनोगे ? मैने कहा—आप बनायेंगे तो बन जाऊगा। नही बनायेंगे तो नही बनूगा।

मैं मानता हूँ कि मेरे जैसा निश्चिन्त व्यक्ति बहुत कम हो। मैंने अपनी कोई चिन्ता नही की। कभी नही की और करने की मुझे जरूरत नही। जब मेरे इतने बडे चिन्ताकार

* युवाचार्य श्री द्वारा उत्तराधिकारी-पद-ग्रहण के पश्चात् प्रदत्त वक्तव्य।

का आशीर्वाद मेरे माथे पर है, तो मुझे करने की कोई जरूरत नही होगी। आप देखें, आज का साधु-साध्वी कोई कल्पना भी नही कर सकता होगा कि पछेवडी ओढनी है, कब ओढनी है और कब सिलवानी है साध्वियो से। मुझे कोई पता नही होता। बस यन्त्रवत् होता है तो काम हो जाता है और नही होता तो चलता रहता है। मुझे कभी चिन्ता नही होती। इतनी निश्चिन्तता का जीवन मैने जीया। जब कोई आचार्य बनता है, प्रसन्नता होती है। मैं यह सब कहता हू। आचार्य तुलसी जब आचार्य बने तो सबको बहुत प्रसन्नता हुई, पर मुझे बहुत प्रसन्नता नही हुई। इसलिए नही हुई कि मैने सोचा—जहाँ मैं रहता था, मेरे सारे जीवन का सम्बन्ध था, अब नही रहेगा। आचार्य श्री तुलसी पहले तो मेरे थे और अब सबके बन गये तो मै बहुत कट गया।

मै अपना सौभाग्य मानता हू। आचार्यवर ने मुझ पर एक नया दायित्व सौपा और कसौटियाँ तो मेरी बहुत होती रही हू। समय-समय पर अनेक परीक्षाए हुई है। पर आज सबसे बडी परीक्षा और कसौटी इन्होने करनी चाही है। आज तक आचार्यवर ने मुझे जो भी काम सौपा, मैं उसमे शत-प्रतिशत सफल हुआ हू। मै अपने आत्म-विश्वास के साथ आचार्यवर के चरणो मे यह प्रार्थना उपस्थित करता हूँ कि आपने जो काम सौपा है, आपके आशीर्वाद से यह भी शत-प्रतिशत सफल होगा, इसमे मुझे कोई सन्देह नही है।

परम पूज्य आचार्य भिक्षु और आचार्य भिक्षु की समूची परम्परा मे आचार्य कालूगणी तक सभी आचार्यों की जो एक महान् परम्परा और जिस परम्परा को आचार्यवर इतने लम्बे समय तक एक प्रगति के साथ जिस प्रकार अग्रसर कर रहे है, उसी कडी मे मुझे जोडकर और प्रगति का भागीदार मुझे बनाया है। मै कृतज्ञता जैसे छोटे शब्द का प्रयोग करना नही चाहता। आचार्यवर ने अनन्त उपकार से मुझे उपकृत बना दिया है कि मै उसके लिए शायद कोई नया शब्द गढू, यह बात बहुत छोटी है। मै अनुभव करता हू कि आचार्यवर का अनुशासन कठोर भी था और कोमल भी था। मेरे सभी सहपाठियो मुनि दुलीचन्द जी, मुनि बुधमल्ल जी, मुनि जवरीमल जी आदि-आदि सभी दोनो प्रकार के अनुशासन मे गुजरे है। इतने कठोर अनुशासन की परम्परा से हम लोग गुजरे है, शायद बहुत कम लोग गुजरते होगे। एक बार मै और मुनि बुधमल्ल जी पूज्य कालूगणी के पास गये। प्रार्थना की—गुरुदेव! मुनि तुलसी हमे पढाते है, सब कुछ करते है, पर बडा कठोर अनुशासन रखते है। हमने शिकायत की। उन्होने कहा—तुम्हे एक कहानी सुनाता हू। हम दोनो बैठ गये। पूज्य कालूगणी ने कहा काजी जी पढा रहे थे। बहुत सारे छात्र थे। बादशाह का लडका भी था। परीक्षा का समय आया। सब छात्र घर जा रहे थे। बाजार से गुजरे। काजी ने पाँच-दस सेर गेहूँ तुलवाये, एक पोटली बाँधी और बादशाह के शाहजादे के कन्धे पर रख दिये। परीक्षा हुई। परीक्षा मे शाहजादा उत्तीर्ण हुआ। काजी का यह व्यवहार बादशाह को अच्छा नही लगा, शाहजादे को भी अच्छा नही लगा। बादशाह बोला—यह आपने अच्छा नही किया। काजी ने कहा—मैंने बहुत सोच-समझकर किया है। यह बादशाह बनेगा। आपका उत्तराधिकारी होगा तो यह दूसरे को दण्ड देगा। पता चल जाए कि भार उठाने मे कितनी कठिनाई होती है। इसलिये मैने यह काम किया है। कालूगणी ने कहा—गुरु और

अध्यापक जब बादशाह के शाहजादे के कन्धे पर पोटली रख सकते है तो जाओ तुम्हारी सुनवाई नही होगी। हम दोनो फस गये। न तो कालूगणी ने सुनाई की और हमने सोचा कि बात मुनि तुलसी तक पहुच जायेगी तो और कठिनाई होगी। मै अनुभव करता हू कि आचार्यश्री ने जिस अनुशासन के साथ हमारे जीवन का निर्माण किया है, ऐसे अध्यापक भी शायद नही मिलेगे।

गुरुदेव! मै अब तक अपने साज मे था और मेरे पास कुछ सन्त थे। काम करता था। आज मै किसी विशेष का नही रहा। किसी व्यक्ति विशेष का नही रहा। न मेरा साज रहा, न मेरे पास रहने वाले साधु रहे, न कोई दूसरे रहे। मैं तो अब सबका हो गया हू। मे आशा करता हू कि साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका, सब मुझे मेरा काम करने मे पूरा-पूरा सहयोग देगे। मैं चाहूंगा कि आचार्यवर का यह आशीर्वाद, असीम करुणा मुझे निरन्तर उपलब्ध रहे। मैं अपने महान् आचार्यो की परम्परा को और उज्ज्वल बना सकू, तेरापथ धर्मसघ के गौरव को और बढा सकू, यही आशीर्वाद आचार्यवर से चाहता हू।

— ० —

'तुम निश्चिन्त रहो'

विक्रम् सवत २०२१ का मर्यादा महोत्सव बालोतरा था। आचार्य प्रवर ने महोत्सव के दिन साधु साध्वियो के लिए दो श्रेणियाँ नियुक्त की—१—भावियप्पा—भावितात्मा २—सेवट्ठी—सेवार्थी। दोनो श्रेणियो के लिए उसी समय साधु-साध्वियो के नाम मागे गये। कुछ साधु-साध्वियो ने अपने नाम भी दिये। मुझे युवाचार्य श्री महाप्रज्ञजी न सेवट्ठी श्रेणी के लिए नाम देने का सकेत दिया, मुझे हिचकिचाहट हुई। मेरे मे इतनी योग्यता कहाँ थी। लेकिन मै युवाचाय श्री के इगित को कैसे टाल सकता था। आखिर मैने अपना नाम दे दिया। उसके बाद कुछ सतो ने मुझसे कहा—अब तुम्हारा अध्ययन ठप्प हो जायगा, क्योकि तुमने सेवट्ठी श्रेणी मे अपना नाम दे दिया। अब आचार्य श्री तुम्हे जब कभी भी जहाँ जरूरत होगी भेज देगे। मैने युवाचार्य श्री को सतो का कथन निवेदन किया। तब युवाचार्य श्री ने फरमाया—तुम निश्चिन्त रहो।

युवाचार्य श्री के ये शब्द मेरे लिए आलबन बन गये और मैं निश्चिन्त हो गया।

—मुनि विमल कुमार

युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ :
उल्लेखनीय तिथियां

१ **जन्म**—वि० स० १९७७, आषाढ कृष्णा १३, टमकोर।
पिता—तोलाराम जी चोरडिया।
माता बालू जी।

२ **दीक्षा**—वि० स० १९८७, माघ शुक्ला १०, सरदार-शहर।

३ **अग्रगण्य**—वि० स० २००१।

४ **साझ**- वि० स० २००४, रतनगढ।

५ **निकायसचिव**—वि० स० २०२२, माघ शुक्ला ५, हिसार।

६ **बखशीश**—काम-काज तथा बोझभार, वि०स० २०२२, सरदारशहर।

७ **महाप्रज्ञ-उपाधि-अलकरण**—वि० स० २०३५, कार्तिक शुक्ला १३, गगाशहर।

८ **युवाचार्य पद-नियुक्ति** - वि० स० २०३५, माघ शुक्ला ७, राजलदेसर।

मै नये दायित्व के प्रति समर्पित रहूंगा*

युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ

भाग्यविधाता आचार्यप्रवर, महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा जी, श्रमण-श्रमणी परिवार एव अन्तरङ्ग परिषद् के सदस्य ! मै सबसे पहले अपने उस गुरु को नमस्कार करता हू, जिसने मेरी प्रज्ञा को प्रजागृत किया और चित्त को निर्मल किया, जो भिन्न नही है। गुरु कभी भिन्न नही होता है। गुरु हो और भिन्न हो तो मानना चाहिए कि गुरु नही है। गुरु गुरु ही होगा। यह नही हो सकता कि गुरु भी हो और आलोच्य भी हो। दोनो बाते कभी एक साथ नही होती। मेरा बचपन का एक सकल्प था कि जिसको गुरु मान लिया, उसे गुरु ही मानना है, उसको और कुछ नही मानना है। गुरु भी मानते चले जाए और सब कुछ भी करते चले जाए, इससे दुर्भाग्यपूर्ण विडम्बना जीवन मे और कुछ हो नही सकती। गुरु अभिन्न ही होगा, आत्मा से भिन्न नही होगा।

मै मानता हू, मेरे जीवन की सफलता का एक सूत्र था—मैने मुनि तुलसी और आचार्य तुलसी को गुरु रूप मे स्वीकार किया। मै वैसा कोई भी काम नही करूगा, जिससे मुनि तुलसी और आचार्य तुलसी अप्रसन्न हो। इस सूत्र ने मुझे हर बार उबारा और मेरा पथ प्रशस्त किया।

मै आज इस श्रमण-श्रमणी परिषद् मे आचार्यप्रवर के प्रति अपनी सारी श्रद्धा समर्पित करना चाहूगा और मानता हूँ कि यह पुनरावृत्ति ही कर रहा हू। सस्कारवश तो मैने जिस दिन दीक्षा ली थी, उस दिन श्रद्धा ही नही अपने आपको सर्वथा समर्पित कर चुका था। मेरे पास ऐसा कुछ बचा नही था, जिसे मैं अपना कहू। पर इस अवसर पर उस बात को पुन दुहराना भी जरूरी समझता हूँ और इसलिये समझता हूँ कि आचार्यप्रवर ने अपने विश्वास को दुहराया है। मुझ पर अपना भरोसा दुहराया है। मै मानता हूँ कि विश्वास मुझ पर हमेशा बना रहा है और उसका सबसे बडा साक्षी मै स्वय हू कि मुझ पर कितना विश्वास रहा। किन्तु उस विश्वास को आचार्यप्रवर ने समूचे सघ के समक्ष जिस प्रकार

---

*युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ द्वारा आचार्य श्री तुलसी के सान्निध्य मे दिनाङ्क ७-२-७६ को साधु-साध्वियो की एक अन्तरङ्ग गोष्ठी मे व्यक्त उद्गार।

दुहराया और मुझे उस विश्वास से जितना भारी बनाया, उस विश्वास की पुनरावृत्ति के साथ-साथ मैं भी अपनी श्रद्धा की पुनरावृत्ति करना चाहता हूँ। मेरे लिए सबसे बडा सबल आचार्यप्रवर का इ गित, निर्देश और आदेश ही होगा। उसी के अनुसार मेरे जीवन का समूचा क्रम चलेगा।

मै नन्हा-सा बालक था और छोटे-से गाँव मे जन्म हुआ था। भोला-भाला था। कुछ पढना-लिखना नही जानता था। किसने कल्पना की थी कि उसके प्रति हमारा समाज, भारतीय समाज, प्रबुद्ध समाज किन-किन सज्ञाओ से अपनी भावना प्रकट करेगा। कोई कल्पना ही नही कर सकता था। मै सारी बाते दोहराऊ तो लग सकता है कि गर्वोक्ति कर रहा हूँ। मैं नही चाहता कि गर्वोक्ति करू। किन्तु एक-दो बाते इसलिए कहना चाहता हू कि मैं मेरी गर्वोक्ति नही, मैं उस कलाकार की कुशल साधना, कार्य-पद्धति और कृति का एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहता हू कि यदि एक कुशल भाग्य-निर्माता मिलता है, तो वह किस प्रकार के व्यक्ति को भी कैसा बना सकता है। लोगो ने कहा कि आचार्य श्री आपने और भी बहुत कुछ दिया, किन्तु हमे एक विवेकानन्द दिया। पता नही, कौन विवेकानन्द है? किन्तु यह आचार्य श्री की कर्तृत्वशक्ति का ही एक प्रयोग है। मेरा अपना कुछ भी नही है। और भी न जाने कितनी बाते लोगो द्वारा कही गई और बराबर आचार्यवर के सामने दुहराई गई। ऐसे व्यक्तियो के द्वारा भी कही गई जो हमारे सघ से सर्वथा प्रतिकूल चलने वाले और विरोध रखने वाले थे। मै मानता हू कि यह सारा जो कुछ हो रहा है, उसमे आचार्य श्री का कर्तृत्व एव सृजनशीलता ही बोल रही है। मेरा अपना कुछ भी नही है।

जिस महान् निर्माता ने मेरे जीवन का निर्माण किया, जिस कुशलशिल्पी ने मेरे भाग्य की प्रतिमा को गढा, उसके प्रति मै अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करू, बहुत छोटा शब्द है। उस भार को यह 'कृतज्ञता' शब्द उठा नही सकता है। और कोई दूसरा शब्द खोजू तो शायद शब्दकोश मे मिलता नही है। सबसे अच्छा कोई शब्द हो सकता है तो यही हो सकता है कि गुरुदेव! मै सदा अभिन्न रहा। और इस अर्थ मे ही सौभाग्यशाली होऊगा। यह अभिन्नता सदैव बनी रहे। शाश्वत बनी रहे। कही भी भेद की रेखा सामने न आए।

एक बार भिवानी मे आचार्यप्रवर ने कहा था—इतने लम्बे जीवन मे एक साथ रहना और कभी मानसिक भेद न होना इसे मै बहुत बडी बात मानता हू। आचार्यप्रवर की सेवा मे रहते हुए चार दशको से भी अधिक समय बीत गया। मेरा सौभाग्य है कि मुझे ऐसा कभी नही लगा कि कही, कोई मन मे भेद-रेखा आई हो। मैं कुछ बाते सुनता रहा हूँ, जिन्हे आज दुहराना जरूरी समझता हू। बहुत लोग कहते है, मुनि नथमल को कहने का कोई अर्थ नही है। वे तो केवल आचार्य श्री की हाँ मे हाँ मिला देगे। उनको कहना या मत कहना कोई अर्थ नही। इससे भी कुछ कटु बाते मैं सुनता रहा—कुछ लोग कहते, इनको कहने का अर्थ क्या है? आचार्य श्री कहेगे कि शिला दो हाथ बढ गई, तो यह कहेगे कि हाँ। आचार्य श्री कहेगे कि शिला दो हाथ घट गई तो कहेगे, हाँ! मै वैसे ही नही कह

रहा हूँ, मैं बराबर ऐसी बाते सुनता रहा हूँ। पर मैंने कभी इन बातो की सफाई देने का प्रयत्न नही किया। मन मे भी नही आया कि क्या कहा जा रहा है ? क्योकि मैं अपने आप मे स्पष्ट था। मैं मानता था कि मेरा आचार्य कितना यथार्थवादी है कि कभी ऐसी बात मुझसे कहलाता ही नही। कल्पना करने वाले कल्पना करते रहे। यथार्थ कुछ और है। कल्पना कुछ और चलती रहे तो उस कल्पना के लिए हमे मफाई या साक्ष्य के लिए कोई जरूरत नही होती। हाँ, मै एक बात निश्चित कहता रहा कि कोई मेरा चाहे कितना ही निकट का क्यो न हो, मै सबसे पहले आचार्य श्री को प्रसन्न रखना चाहता हू, फिर कोई बाद मे दूसरा हो सकता है। मुझसे कोई यह आशा न करे कि मैं दूसरो की प्रसन्नता के लिए इस प्रसन्नता को तराजू पर रख दू। यह अगर आशा है तो सर्वथा निराशा होगी। यह एक सचाई है और सभी लोग इसे जानते है। जो व्यक्ति एक सिद्धान्त को लेकर चलता है, उसके सामने ऐमी कठिनाइयाँ आती है। किन्तु कभी मेरी धृति ने मुझे धोखा नही दिया। मेरे धैर्य ने मुझे धोखा नही दिया। मै जिम सकल्प को लेकर चला था, चल रहा हू और पूर्ण विश्वाम है कि भविष्य मे इसी प्रकार चलता रहूँगा।

जिस महान् गुरु ने मेरे जीवन का निर्माण किया, मुझे अपना विश्वास दिया और विश्वास तथा श्रद्धा ली और उस विश्वास को अब चरम बिन्दु पर सब लोगो के सामने प्रस्तुत कर दिया, उमके प्रति कुछ भी समर्पित करू, बहुत तुच्छ बात होगी। उदयपुर चातुर्मास के बाद एक दिन आत्मा (मेवाड का एक छोटा-सा गाँव) मे आचार्यप्रवर ने मुझे अपना कुछ अन्तरङ्ग काम सौपा। आपने कहा—२७ वर्षों के बाद आज मै अपना कुछ अन्तरङ्ग काम पहली बार तुम्हे सौप रहा हूँ। इस बार आचार्यप्रवर ने मुझे वह सब कुछ सौप दिया, जो कुछ सौपा जा सकता है।

मै सोचता हू कि मैने कभी कुछ नही माँगा। मेरे लिए मैने कभी कोई माँग नही रखी। कभी नही रखी। इस बात की सचाई स्वय आचार्य श्री जानते है और भी जानने वाले जानते हे कि कभी मेरी कोई माँग नही थी। आप ज्ञान, दर्शन चारित्र की बात छोड दीजिए। मै उसकी बात नही कह रहा हू। वह तो जीवन की शाश्वत माँग है, किन्तु किसी वस्तु की कभी कोई माँग नही की। केवल एक ही माँग थी कि मुझे आचार्य श्री तुलसी मिलता रहे। मुझे उपलब्ध रहे। बस इतनी माग थी। वह मेरी माँग पूरी हुई। आचार्य श्री तुलसी मुझे उपलब्ध थे, उपलब्ध और हो गये। जब आचार्य तुलसी मुझे स्वय उपलब्ध हो गये तो उनका जो कुछ था, वह मुझे स्वय उपलब्ध हो गया। यह मेरी कोई माँग नही थी।

इस अवसर पर मै क्या कहूँ ? तीन-चार दिनो से पता नही मेरी स्थिति क्या बन गई है ? शायद कुछ बोल नही पाता। बोलता हू तो भाव-विभोर हो उठता हूँ। आचार्य-प्रवर के चरणो मे व्यवहारत, वास्तव मे तो उनकी आत्मा मे, किन्तु व्यवहार की भाषा मे कहूँ तो उनके चरणो मे फिर अपने सर्वस्व को समर्पित करता हूँ और यह आशीर्वाद चाहता हूँ कि गुरुदेव! आपका आशीर्वाद मुझे निरन्तर उपलब्ध होता रहे। आपने जिस प्रकार मेरे भाग्य का निर्माण किया, उसकी पूरी सफलता सार-सभाल सब कुछ आपके कर-कमलो द्वारा निरन्तर होती रहे।

आचार्यप्रवर ने मुझ पर असीम विश्वास किया है। एक छोटे-से बालक को जिसे एक दिन अपने हाथो मे लिया था, आज उसी को अपने बराबर बिठा दिया। मेरे जैसा छोटा बच्चा और इतने महान् आचार्य ! मै तो इनके सदा चरणो मे रहने वाला था और उन्होने हाथ पकडकर अपने बराबर बैठा दिया। मैने प्रार्थना की – आप और कुछ कहे, किन्तु बराबर बैठने के लिए न कहे, पर आखिर निर्देश निर्देश होता है, आदेश आदेश होता है। न चाहते हुए भी मुझे वैसा करना पडा। यह आचार्यवर का गौरव, उनकी गुरुता, महानता और विशालता है कि जिस अबोध बालक को उन्होने अपने हाथो मे लिया और एक दिन उसी बच्चे को अपने बराबर बना दिया और बैठा दिया। इस महानता के प्रति मैं कोई भावना व्यक्त करू, मेरे पास कोई शब्द नही है। आचार्यप्रवर ने जो विश्वास किया, जो अनुग्रह किया, जो आशीर्वाद दिया, उसे समूचे श्रमण-श्रमणी सघ ने जिस प्रकार झेला और मुझे आदर दिया, मेरे प्रति श्रद्धा, निष्ठा और भावना की, उसके लिए मैं बहुत कृतज्ञ हूँ और सबके प्रति आभार प्रदर्शित करता हू। प्रथम क्षण मे ही आप लोगो ने मेरे प्रति जो सद्‌भावना प्रकट की है, वह भाग्य से ही मिल सकती है या गुरु के आशीर्वाद से ही मिल सकती है। मै अपने आप को सौभाग्यशाली मानता हू कि मेरे गुरु का आशीर्वाद और आप सब लोगो की सद्‌भावना, दोनो मुझे एक साथ उपलब्ध है। मै सचमुच गौरवशाली हू, भाग्यशाली हूँ।

मैं अपने भाग्य की क्या प्रशसा करू और आप सबके प्रति गौरव की क्या बात क; ? मै केवल अपने कर्तव्य को प्रकट कर देना चाहता हू कि आचार्यवर ने जो सेवा का कार्य मुझे सौपा है, सघ के प्रति मुझे जो सेवा का उत्तरदायित्व सौपा है, उस कार्य के निर्वाह के लिए मै अपने आपको समर्पित करता हूँ। आचायवर के निर्देशो के अनुसार सघ की प्रगति के लिए, सघ के विकास के लिए मै अपनी सारी प्रज्ञा को समर्पित करता हूँ।

अब आचार्यवर ने मुझे नामातीत बना दिया है। मेरा नाम भी समाप्त कर दिया। महाप्रज्ञ कोई नाम नही होता, यह तो स्वय मे एक पद है या कुछ है। कोई नाम तो नही होता। विशेषण है। आचार्यवर ने मुझे बिल्कुल अकिंचन बना दिया है। कम से कम व्यक्ति का नाम तो अपना होता है। उस पर अपना अधिकार तो होता है, और किसी पर हो या न हो। वह भी मेरा छीन लिया। जिस नाम को बीस-तीस वर्षों के कर्तृत्व से अर्जित किया, लोग जानने पहचानने लगे, वह भी समाप्त हो गया। जब नामातीत हो गया हू तो सम्बन्धातीत भी हो गया हूँ। कोई सम्बन्ध नही रहा। किसी के साथ सम्बन्ध नही रहा, और जब किसी के साथ नही होता है तो सहज ही सबके साथ हो जाता है। क्योकि जब मुनि-अवस्था मे था, तब सम्बन्ध रखना भी जरूरी होता है और अपेक्षा भी होती है, किन्तु जब आचार्यवर ने मुझे यह कार्य सौप दिया, तो किसी के साथ कोई सम्बन्ध नही रहा। अतीत की कोई रेखा भी मेरे मन मे नही हो सकती कि किस व्यक्ति ने मेरे साथ कैसा व्यवहार किया। कितना अच्छा किया था। कितना अप्रिय भी किसी ने किया होगा। किसी ने मेरे साथ अप्रिय व्यवहार नही किया, यह मैं जानता हू। मैं इस अर्थ मे भाग्यशाली रहा हूँ, किन्तु

फिर भी कुछ हो भी सकता है। किन्तु जब सारे सम्बन्ध समाप्त हैं और यह कांच वैसा ही निर्मल हो गया, जिसमे कोई भी रेखा नही रही। सम्बन्ध कार्यों का भी होता है, पारिवारिक भी होता है और जन्मजात भी होता है। मेरी स्वर्गीया माता जी बालू जी आज नही हैं, अन्यथा वे भी दीक्षा मे थी। बहिन भी दीक्षा मे है। कई बहिने है। भानजियाँ भी हैं। कम से कम एक परिवार के हम सात लोग दीक्षित हुए। मेरे ससारपक्षीय पिताजी चार भाई थे और चारो के हम दीक्षित है। सम्बन्ध का अपना व्यावहारिक पक्ष होता है। किन्तु जहाँ सघ का सम्बन्ध है, वहाँ और सारे सम्बन्ध गौण हो जाते है। वहाँ सम्बन्ध कभी मुख्य नही होता। वहाँ सघ मुख्य होता है और सब बाते गौण हो जाती है। सघ के कार्य मे किसी भी सम्बन्ध को या किसी भी निजी या निकट के व्यक्ति को कभी मुख्यता नही दी जा सकती है। और जब गौण बातें मुख्य बन जाती है तथा मुख्य बाते गौण बन जाती है, वहाँ बडी कठिनाइयाँ और समस्याए पैदा हो जाती है। तो मैं अपनी ओर से स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि कोई भी यह अनुभव न करे कि हम तो सम्बन्धी है और हम सम्बन्धी नही हैं। मेरे लिए सम्बन्ध की कोई भेद-रेखा नही है। मेरे लिए सब उतने ही निजी और मेरे अपने है, जो आचार्यवर की, सघ की मर्यादा एव अनुशासन मे दक्ष हैं।

अब मैं उन लोगो की स्मृति कर लेना चाहता हूँ जिनका मेरे जीवन मे योगदान रहा है। सर्वप्रथम पूज्य कालूगणी के चरणो मे अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा एव भक्ति समर्पित करता हू, जिनका वरद हस्त मेरे सिर पर टिका और भाग्य का सूर्योदय हुआ। उनके प्रति नत होना यह कोई मेरा ही व्रत नही है, मेरे गुरु का भी यही व्रत है। आचार्य श्री के सामने भी जब कोई स्थिति होती है, तब वही व्रत होता है। महामुनि मत्री मुनि की स्मृति भी करना चाहता हू। उनके शिक्षा-पदो ने मुझे बहुत अवकाश दिया सभलने का। मैं एक घटना का उल्लेख कर देना चाहता हूं।

लाडनू मे प्रतिक्रमण करने के बाद उनके पास वदना करने के लिए गया। मत्री मुनि बोले—देखो ! तुम ग्रथ पढ रहे हो, अध्ययन कर रहे हो, पर एक बात का ध्यान रखना, कभी अहकार नही आना चाहिए। हम साधु बन गये है। रोटी के लिए हाथ पसारते है तो फिर अहकार किस बात का, अभिमान किस बात का। इन बातो ने मेरे बालक मन पर बडा असर किया। उन्होने आचार्य प्रवर से भी निवेदन किया—महाराजाधिराज! नत्थू बहुत ग्रथ पढ रहा है पर मूल तो ठीक है ? आचार्य श्री ने कहा—ठीक है। चिन्ता की कोई बात नही है। उनका समय-समय पर जो दिशा-निर्देश मिला, वह मेरे जीवन के लिए बहुत सम्बल बना।

स्वर्गीय भाईजी महाराज चम्पालाल जी स्वामी को मैं नही भूल सकता। उन्होने बचपन से ही हमारे साथ सारणा-वारणा का प्रयोग किया और इन वर्षों मे तो उनका इतना अटूट स्नेह मुझे मिला कि जिसकी शायद पहले कल्पना भी नही थी। वे बहुत बार कहते—यह पाँचवाँ आरा है, अगर चौथा होता तो केवली हो जाते। न जाने कितनी बार इस बात को दोहराते।

स्वर्गीया माता जी बालूजी ने आचार्य श्री के प्रति समर्पित रहने मे पूरा योग दिया। वे हमेशा यही कहती कि आचार्य श्री की दृष्टि हमेशा ध्यान मे रखना। गुरुदेव की दृष्टि के प्रतिकूल कभी कोई कार्य मत करना। यह उनका एक सूत्र था।

अब मै अपनी अन्तिम बात करना चाहता हू। सघ की प्रगति और विकास के लिए हमे क्या करना है ? हमारे सघ की प्रगति और विकास का सबसे बडा सूत्र है अनुशासन। आचार्य श्री मे अनुशासन की शक्ति है, कर्तृत्व की शक्ति है, वे कर सकते है। इसलिए हम सभावना करते है कि आचार्य श्री के द्वारा सघ का बहुत वडा विकास हो सकेगा। भारतीय चिन्तन का विकास हो सकेगा। जैन धर्म का विकास हो सकेगा। तो सबसे पहली हमारी शक्ति है अनुशासन। इसे हम कभी गौण नही करे। तेरापथ की आज जो कर्मजा शक्ति सारे विश्व के सामने प्रस्तुत हो रही है और आज बडे-बडे समाज आचार्य श्री तुलसी का लोहा मान रहे है, उसका आधार क्या है ? यही अनुशासन है। एक अनुशासन मे इतने योग्य ओर क्षमता-शील साधु-साध्वियो का होना, मै बडे सौभाग्य की बात मानता हू। डेढ हजार वर्ष के इतिहास मे ऐसा कोई उदाहरण नही मिलता कि एक आचार्य के नेतृत्व मे ऐसे सशक्त साधु-साध्वियाँ हो और इतने कार्यशील साधु-साध्वियाँ हो। किसी आचार्य के पास पाँच-दस हो सकते है, किन्तु जहाँ पचासो-पचासो साधु-साध्वियाँ सक्षम हो, यह किसी बिरल, भाग्यशाली आचार्य को ही उपलब्ध हो सकता है। यह हमारा गौरव है। इसका मूल आधार है अनुशासन। आचार्य प्रवर ने समय-समय पर जो निर्देश दिये और साधु-साध्वियो ने तत्परता से उनका पालन किया, परिणामत आज हमारा धर्म-सघ बहुत शक्ति-शाली बन गया।

दूसरी बात, विकास के लिए बहुत जरूरी है शिक्षा की। अनुशासन हो और बौद्धिक विकास न हो, शिक्षा न हो तो काम बहुत आगे नही बढ सकता। हम एक साथ रह सकते है, अच्छे ढग से रह सकते है, पर दूसरो को जो देना चाहते है, वह नही दे सकते। समाज के प्रति और एक विशाल समाज के प्रति हमारा कोई अनुदान नही हो सकता। वह तब हो सकता है जब हमारा बौद्धिक विकास हो। हमारे सघ ने आचार्य श्री के नेतृत्व मे शिक्षा के क्षेत्र मे बहुत प्रगति की है, पर एक बात साथ-साथ यह भी कहना चाहता हू, जो प्रगति हो रही थी, उसमे थोडा-थोडा अवरोध भी आया है। प्रगति का युग वह था, जब मुनि तुलसी हमे पढाते थे और हम पढते थे। वह क्रम बराबर चलता तो आज सघ का रूप ही कुछ दूसरा होता। किन्तु क्या कहू, वैसा नही हो सका। मुनि तुलसी मुनि नही रह सके और मुनि नथमल, मुनि बुधमल विद्यार्थी नही रह सके। सब कुछ बदल गया। हम लोग शिक्षा के क्षेत्र मे एक कार्यक्रम बनाए और जो कीर्तिमान हमारे धर्मसघ ने स्थापित किया है, उस कीर्तिमान को स्थायी रखें तथा उसे आगे बढाने का प्रयास करे।

अनुशासन भी हो, शिक्षा भी हो और बौद्धिकता भी हो, किन्तु अध्यात्म की साधना न हो तो बौद्धिकता लडाने वाली हो सकती है। आप इस बात को कभी न भूले। तर्क आदमी को लडाना भी है, यह हमे ध्यान रखना चाहिए। अध्यात्म की साधना हमारे

लिए बहुत जरूरी है। शिक्षा अनुशासन और अध्यात्म, इन तीनो दिशाओ में हमे प्रगति करना है।

हम कठिनाइयो की ओर भी थोडा ध्यान दें। सबसे बडी कठिनाई है स्वास्थ्य की। यह बहुत चिन्त का प्रश्न आज हमारे सामने है। साधुओ मे और विशेषकर साध्वियो मे यह स्वास्थ्य का प्रश्न कुछ जटिल बनता जा रहा है। इससे बहुत बडी बाधाए आती हैं। पहली बाधा तो स्वय के जीवन मे आती है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र की जो आराधना होनी चाहिए, वह स्वास्थ्य के अभाव मे नही हो पाती। दूसरी बाधा आती है सघीय प्रगति मे। आचार्य श्री जहाँ भेजना चाहते हैं, वहाँ नही पहु च पाते। जो कार्य करवाना चाहते है, वह नही हो पाता। यह बहुत बडा प्रश्न है। इस पर सबको विचार करना है। मैं प्रार्थना करता हूँ आचार्यप्रवर से कि इस पर भी ध्यान दें और कुछ ऐसे रास्ते खोजें जिससे साधु-साध्वी-समुदाय का स्वास्थ्य ठीक हो सके। मानसिक स्वास्थ्य काफी अच्छा है। आचार्य प्रवर ने प्राय सभी साधुओ को अपने पास बुलाया और उनके स्वास्थ्य आदि के बारे मे पूरी जानकारी प्राप्त की। मैने देखा कि साधु बहुत उल्लिसित थे। इस बार मानसिक स्वास्थ्य का आचार्य श्री ने बहुत सुन्दर प्रयोग किया।

मैं एक बार पुन आचार्य श्री के चरणो मे एक प्रार्थना प्रस्तुत करता हू—पूज्य गुरुदेव ! यह आत्मा का अद्वैत सदा बना रहे और आपका मार्ग-दर्शन मुझे मिलता रहे। मैं अपने जीवन के इस दृढ सकल्प को फिर दोहराता हूँ कि आपका जो भी इ गित होगा, वह मेरे लिए बडे से बडा व्रत होगा और उस व्रत मे सदा मैं अपने जीवन को खपाता रहूगा।"

अलौकिक चमत्कार

युवाचार्य के नाम की घोषणा के तत्काल बाद ही एक चमत्कार घटा। मच पर लगे शामियानो को छोडकर सारे पण्डाल के शामियाने बीच मे से गुब्बारे की भाति ऊपर उठे। बल्लिया ऊपर उठी। बल्लियो को थामने वाले ऊपर उठे। पण्डाल के बाहर न तूफान न हवा। सारा वातावरण शान्त, सौम्य और सुखद। जिस प्रकार वह ऊपर उठा उसी प्रकार धीरे-धीरे वह नीचे आकर यथास्थान जम गया। यह क्यो हुआ ? क्या था ? ये प्रश्न अनुत्तरित ही रहे। कुछ लोगो ने इसे दैविक चमत्कार माना।

इस पल का भी अभिनन्दन*

महाश्रमणी साध्वी प्रमुखा कनकप्रभा

आज मुदित है सघ-चतुष्टय, कण-कण मे छाया उल्लास ।
मनोनयन शुभ युवाचार्य का, नए सृजन का वह इतिहास ॥१॥

गणमाली ने निज हाथो से जिस पौधे को सीचा है ।
उसने भी ऊपर से नीचे तक पूरा रस खीचा है ॥२॥

ज्योतिपुञ्ज आचार्यप्रवर से, ऊर्जा मिलती है पल-पल ।
युवाचार्य की ऊर्जाधारा, हुई प्रवाहित अब कल-कल ॥३॥

कलाकार के कुशल करो ने, जिस प्रतिमा को उत्केरा ।
आज उसी की अर्चा करने, उत्कठित है मन मेरा ॥४॥

युवाचार्य आचार्यप्रवर का, युगल रहे युग-युग अविचल ।
जयघोषो से रहे निनादित, धारा और पूरा नभतल ॥५॥

सविनय साध्वी-सघ समूचा, करता हार्दिक अभिवन्दन ।
हर सकेत तुम्हारा प्राणो मे भर दे अभिनव स्पन्दन ॥६॥

अभिनन्दन आचार्यप्रवर का, युवाचार्य का अभिनन्दन ।
धमसघ का अभिनन्दन है, इस पल का भी अभिनन्दन ॥७॥

---

*युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ के अभिनन्दन मे साध्वीप्रमुखा श्री कनकप्रभा जी द्वारा पठित अभिनन्दन गीतिका ।

श्रमण परिवार द्वारा समर्पित

अभिनन्दन पत्र*

महामहिम युवाचार्य !

तेरापथ धर्मसघ के क्रान्तद्रष्टा युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी द्वारा अपने उत्तराधिकारी के रूप मे आप श्री का चयन समग्र धर्म-सघ के लिए गौरव का सूचक है आप जैसा प्रज्ञा-शाली युवाचार्य को पाकर हम सब गौरवान्वित हुए है।

महान् दार्शनिक !

आपके दार्शनिक स्वरूप ने सत्य के अनेक कोणो का उद्घाटन कर विश्व के वैचारिक क्षेत्र मे एक नई सभावना को जन्म दिया है। आपके अध्यात्म-अनुस्यूत दर्शन एव साहित्य की कृतियो ने धर्म-सघ को विश्व मच पर आरूढ होने का अवसर प्रदान किया है।

प्रेक्षा-ध्यान के पुरस्कर्ता !

अध्यात्म जगत के ज्योतिपुञ्ज भगवान् महावीर की ध्यान-परम्परा के विलुप्त रहस्यो का अन्वेषण कर आपने अध्यात्म परपरा को नव जीवन देते हुए प्रेक्षाध्यान की वैज्ञानिक पद्धति को प्रस्तुत किया। इससे जैन समाज ही नही, अपितु समग्र विश्व आशा-आप्लावित हुआ है।

आगम-वारिधि !

युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी के वाचना-प्रमुखत्व मे आपने आगम-मंथन के महान् कार्य का जिस कौशल से वहन किया वह आगम इतिहास की एक नई देन बन गया है। जैन धर्म के रहस्यो का अन्वेषण करने वाले विश्व के मनीषी नि शसय इससे लाभान्वित होगे।

आशाओं के दीप !

ज्योति पुञ्ज आचार्य श्री तुलसी आपको युवाचार्य बनाकर तेरापथ धर्म-सघ की गौरवशाली परपरा की जो अग्रिम कडी जोडी है उसने हमारी आशाओ और उल्लासो के दीप प्रज्ज्वलित कर दिए है। आप श्री उनमे निरन्तर स्नेह-दान करते रहेगे, यही मगल आशसा है।

महाप्रज्ञ !

आपका जीवन शिशु-सा सुन्दर,
जल-सा पवित्र,
भावक्रिया से उद्भासित चैतन्य का चित्र,
महकते हुये गुलाब के फूलो-सा।
यह समर्पित है सघ द्वारा
अभिनन्दन पत्र।

२०३५ माघ शुक्ला ८
राजलदेसर

आपका विनयावनत
तेरापथ श्रमण सघ

*[यह अभिनन्दन पत्र श्रमण वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए मुनि श्री बुद्धमल ने युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ को समर्पित किया।]

श्रमणी परिवार द्वारा समर्पित

अभिनन्दन पत्र*

विश्वदीप !

तुमने एक ऐसी निष्कम्प दीप-शिखा को प्रज्वलित किया है जो हमारी गौरवशाली परंपरा के आर और पार को सदियो, सहस्राब्दियो तक उद्भासित करती रहेगी। इसलिए हम तुम्हारा अभिनदन करती है।

तुमने एक ऐसे ऊर्जा-पुञ्ज को जन्म दिया है जो मनुष्य के अन्तस् मे छिपी लक्ष-लक्ष जीवनी शक्तियो को युग-युग तक उद्घाटित करता रहेगा। इसलिए हम तुम्हारा अभिनन्दन करती हैं।

आर्षप्राज्ञ !

तुम ने एक ऐसी विभूति को जन्म दिया है जिसका आधार है रचनात्मक प्रतिभा। अमूर्त्त सत्य के अन्वेषण की प्रतीक वह प्रतिभा युग-युग से आवृत सत्यो का अनावरण करेगी।

उस पारदर्शी प्रतिभा की एक-एक रश्मि से प्रस्फुरित होगा तुम्हारा व्यक्तित्व तुम्हारा कर्तृत्व और तुम्हारा नेतृत्व। इसलिए हम तुम्हारा अभिनदन करती है।

कुशल अनुशास्ता !

तुम ने तेरापथ धर्मसघ के एक सौ पन्द्रहवे मर्यादा महोत्सव के पुनीत अवसर पर अपने सुयोग्य उत्तराधिकारी का निर्वाचन कर सघ को कृतार्थ किया है, जिसमे सन्निहित है अतीत का गौरव, वर्तमान का समाधान और भविष्य की उज्ज्वल सम्भावनाए, इसलिए हम तुम्हारा अभिनदन करती है।

अन्त करण की समस्त सुकोमल भावनाए समर्पित करती हैं आचार्य चरण मे, युवाचार्य चरण मे।

अप्रतिम कलाकार, तुम्हें नमस्कार

तुम्हारी कृति को नमस्कार, जिसमे तुम स्वय साकार।
पा तुम दोनो का आधार। दृढ दृढतर, दृढ़तम बन जाएगा॥
गण उपवन का प्राकार।
तुम्हारे निर्णय का चमत्कार,
तुम्हारी शक्ति, तुम्हारी युक्ति, तुम्हारी नियुक्ति मे
सौ-सौ बार बधाई देगा समूचा ससार।
तुम्हे नमस्कार, तुम्हारी कृति को नमस्कार,
अनुकृति को नमस्कार
करता शत-शत श्रमणा परिवार।

---

*यह अभिनन्दन पत्र आचार्य श्री को सबोधित कर लिखा गया है अत साध्वी प्रमुखा महाश्रमणी श्री कनकप्रभा जी ने इसे आचार्य श्री के हाथो मे समर्पित किया। आचार्य श्री ने इसे युवाचार्य श्री को दिया।

मैं तो आपकी कृति हूं*

—युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ

आचार्यवर ! मैं अपने आप से नही जाना जाता। मैं तो आपकी कृति हू। मेरा अपना कुछ भी नही है। एक दिन मे इतना सबका प्यार पाकर मैं गद्‌गद् हो रहा हू। श्रमण-सघ ने अभिनन्दन किया। मुनि बुद्धमल जी ने उसे भेट किया और उन्होंने आज की घटना भी बताई। साथी-साथी ही रहेगा। जो पचास वर्षों से साथी रहे है। दस वर्ष की अवस्था से साथी है। हमारे धर्म-संघ मे आज जो शक्ति है, वह सौभाग्य से ही मिलती है। मुझे गर्व है कि तेरापथ धर्म-सघ मे इतने युवक साधु और साध्वियाँ प्रबुद्ध है। एक आचार्य को इतने योग्य शिष्य और शिष्याए भाग्य से ही मिलते है। आचार्य तुलसी धन्य हैं, जिन्हे ऐसे योग्य साधु-साध्वियाँ मिले है।

मै आज आचार्य श्री का नेतृत्व पाकर गौरवान्वित हू, महान् धर्म-सघ का उत्तराधिकार पाकर गौरवान्वित हूँ, महान् आचार्य का उत्तराधिकार पाकर गौरवान्वित हूं। एक बार फिर आचार्यवर को वन्दन करता हुआ आशीर्वाद चाहता हूँ कि आप शक्ति प्रदान करे, ऊर्जा प्रदान करे ताकि जो सौंपा है, उसे निभाने मे सफल हो सकू।

आचार्य प्रवर ने कहा—तथास्तु।

*युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ द्वारा अभिनन्दन के उत्तर मे प्रस्तुत वक्तव्य।

'अकारण वत्सल'

विक्रम् सवत २०१८ का मर्यादा महोत्सव गगाशहर था। आचार्य प्रवर ने मेरे साथ दीक्षित दो मुनियो को बहिर्विहारी सतो के साथ भेज दिया। मुझे भी भेजने की बात चल रही थी। लेकिन युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ जी ने निवेदन किया—इन्हे मत भेजिये। आचार्य श्री युवाचार्य श्री की बात पर विशेष ध्यान देते थे। उन्होने उनकी बात मान ली। और मुझे अपने पास ही रखा तथा युवाचार्य श्री का सान्निध्य दिया। इसे मैं अपना बडा सौभाग्य मानता हू कि युवाचार्य श्री मेरे लिए अकारण वत्सल बने और मुझे प्रगति का अवसर दिया।

—मुनि विमल कुमार

दायित्व-निर्वाह के उदग्र आकांक्षी : युवाचार्य महाप्रज्ञ

महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

माघ शुक्ला सप्तमी का उजला मध्याह्न । मर्यादा महोत्सव की भव्य सुषमा । मच पर सैकडो साधु-साध्वियो की अमल धवल परिषद् । सामने हजारो-हजारो श्रावको का विशाल समुदाय । मध्य मे ऊ चे पट्ट पर आसीन तेरापथ धर्मसघ के नवम अधिशास्ता आचार्यश्री तुलसी । मर्यादागीत (वार्षिक मर्यादोत्सव आया, खुशियो की झोली भर लाया ।) का सगान, मर्यादा-पत्र का वाचन और उसके बाद एक महत्त्वपूर्ण निर्णय की अप्रत्याशित घोषणा । उपस्थित जनसमूह विस्मय-विमुग्ध हो गया । क्या होगा ? यह प्रश्नचिन्ह खडा हो गया सबकी आखो के सामने । श्रोताओ की प्रश्नायित आखो की उत्सुकता को अधिक न बढाकर गुरुदेव ने कहा मैं आज अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति करू गा । उत्सुकता घटी नही, प्रत्युत सहस्रगुनी बढ गई । नियुक्ति होगी । किसकी ? कौन व्यक्ति इस गरिमामय उत्तराधिकार की अर्हता के लिए उचित रहेगा ? मस्तिष्क मे हलचल शुरू हो गई । आचार्यवर ने अपने निर्णय को अभिव्यक्ति के बिन्दु पर पहु चाने के स्थान पर अधिक सगोपित कर लिया और कहा वह व्यक्ति हिन्दुस्तान के किसी भी कोने मे हो सकता है । कुछ श्रोता प्रतीक्षा की आकुलता को अपने भीतर समेट कर उत्कर्ण हो गए और कुछ श्रोताओ के मन की गति तीव्र हो गई । वे अपने मन से पूरे भारत मे भ्रमण कर आए, किन्तु उनके नयनो मे कोई एक व्यक्तित्व बिम्बित नही हो सका । जिज्ञासा और सन्देह के तटो के मध्य बहती हुई अनिश्चय की वाहिनी का कल्पना की नाजुक भुजाओ से पार पा लेना सभव नही था । इसलिए सबकी दृष्टि लगी थी गुरुदेव की शब्दमयी नौका पर, जिसके सहारे वह मचलती स्रोतस्विनी सहजता से तीर्ण हो सकती थी ।

उत्सुकता का उभार

आचार्यश्री ने उपस्थित जन-समूह को विचारो की नि श्रेणी पर आरोह-अवरोह करते देखा और उस पर एक मन्द मुस्कान बिखेर दी । आखिर जब अन्त करण की उफनती हुई उत्सुकता तट तोडकर आगे बढने लगी तो एक दिव्यध्वनि वायुमण्डल मे मुखर हो गई— मन की यह निर्लक्ष्य यात्रा आपको समाधि नही दे सकेगी । इस दौडधूप को छोड आप सब एकाग्र हो जाएगे, तभी रहस्य का अनावरण हो सकेगा । निर्देश मात्र की देर थी, सबके मन

लौट आए उस मर्यादा-महोत्सव-पण्डाल मे और आचार्यवर ने ऊचे स्वर से उद्घोषणा की—खड़े हो जाओ मुनि नथमल जी।

हजारो-हजारो श्रोताओ के नयन-युगलो से निसृत होने वाली रश्मियां अब दो ही व्यक्तियो पर टिकी थी। वे व्यक्तित्व है—युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी और महाप्रज्ञ मुनिश्री नथमल जी। आचार्यवर ने अपना उत्तराधिकार लिखित और मौखिक दोनो प्रकार से मुनि-श्री नथमल जी को सौंपकर उन्हें युवाचार्य के रूप में प्रस्तुत किया। इस प्रस्तुति का नयना-भिराम दृश्य दर्शको के प्राणो को ठेठ तक छू गया। युवाचार्य के गौरवमय पद से अभिषिक्त होते ही मुनिश्री नथमल जी *'युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ'* की अभिधा मे रूपान्तरित हो गए। एक अठावन वर्षीय प्रौढ व्यक्तित्व की सशक्त भुजाओ पर धर्मसघ का समग्र दायित्व नियोजित कर आचार्यश्री तुलसी ने अष्टमाचार्यश्री कालूगणी की भाति चौंका देने वाला इतिहास भले ही न दोहराया हो, पर एक दूरदर्शितापूर्ण सूझबूझ का परिचय देकर भारतीय लोक-मानस की अध्यात्म-चेतना को ऊर्ध्वारोहित होने का विरल अवसर प्रदान किया है।

परिचय परिवार का

युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ का शैशव एक छोटे से कस्बे (टमकोर) मे बीता। आपका जन्म वि० स० १९७७ आषाढ कृष्णा त्रयोदशी (१४ जून १९२०) को हुआ। आपके पिताश्री का नाम तोलाराम जी चोरडिया और माता का नाम बालूजी (साध्वी) था। आप अपनी दो बहिनो के इकलौते भाई थे। पिता का साया बचपन मे ही आपके सिर से उठ गया। मा के सहज धार्मिक सस्कारो से अनुप्राणित आपकी चेतना सतो के सपर्क से उद्बुद्ध हो गई। वि० स० १९८७ माघ शुक्ला दसमी के दिन आपने सरदारशहर मे पूज्य गुरुदेव कालूगणी के कर कमलो से दीक्षा स्वीकार की। आपकी मा (साध्वी बालूजी, अब दिवगत) भी आपके साथ साध्वी-जीवन मे दीक्षित हो गई। कालान्तर मे आपकी एक सहोदरी (साध्वी मालूजी) ने भी आपके पथ का अनुसरण किया।

शभू से महाप्रज्ञ

दस साल का वह मासूम बच्चा यथार्थ के धरातल पर खडा होकर कठोर साधना के प्रति समर्पित हुआ या अपने धर्माचार्य के वात्सल्य को पाकर अभिभूत हुआ? कहा नही जा सकता। किन्तु जिस दिन से उसने धर्मसघ मे प्रवेश पाया, स्वर्गीय आचार्य कालूगणी की असीम कृपा से वह आप्लावित हो गया। कालूगणी ने शैक्ष मुनि को शिक्षित और सस्कारित करने की पूरी जिम्मेवारी सौप दी मुनि तुलसी को। सोलह वर्षीय मुनि तुलसी ने केवल मुनि नथमल जी को ही नही उनके समवयस्क कई बाल मुनियो की पतवार अपने हाथ मे ली और अत्यन्त कुशलता से उनकी जीवन-नौका खेनी शुरू कर दी। कठोर अनुशासन और कोमल वात्सल्य ने बाल मुनि की प्रसुप्त प्रज्ञा के केन्द्र मे अप्रत्याशित विस्फोट किया। उस विस्फोट का ही परिणाम है कि बगू, हाबू और शभू नामो से पहचाने जाने वाले मुनि नथमल जी ने युवाचार्य महाप्रज्ञ की ऊचाई का स्पर्श कर लिया।

मुनि तुलसी बाईस वर्ष की उदीयमान युवावस्था मे तेरापथ संघ के एक मात्र आचार्य बन गए। मुनि नथमल जी को कुछ अटपटा सा लगा। उन्होने अनुभव किया कि उनके विद्या-गुरु उनसे छीन लिए गए है। किन्तु शीघ्र ही उनको सभाल लिया गया। धर्म-सघ का सपूर्ण दायित्व पूरी कुशलता से निभाहते हुए भी आचार्यश्री तुलसी बाल मुनियो की बौद्धिक चेतना का जागरण करने के लिए भी सतत जागरूक थे। उन्होने इस दिशा मे नए-नए सपने संजोए। उन सपनो को साकार करने वालो मे एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले हैं हमारे युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ। युवाचार्य आचार्यश्री के प्रति जितने समर्पित रहे हं, कोई विरल बौद्धिक व्यक्ति ही रह सकता है।

सफल भाष्यकार

तेरापथ के चतुर्थ आचार्य श्रीमज्जयाचार्य आचार्यश्री भिक्षु के सफल भाष्यकार रहे है। इसी शृखला मे यह तथ्य उभर कर सामने आता है कि युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ भी आचार्यश्री तुलसी के सक्षम भाष्यकार हैं। आचार्यश्री द्वारा सूत्र-रूप मे प्राप्त तथ्यो को आपने जिस विस्तार से विश्लेषित किया है, उसने आपकी मेधा को नया निखार दे दिया। केवल तेरापंथ या जैन समाज ही नही समग्र भारतीय समाज पर आपकी प्रत्युत्पन्न मेधा और गभीर दार्श-निकता का प्रभाव है। साहित्य के क्षेत्र मे आपने मौलिक सृजन की दिशा मे जो कीर्तिमान स्थापित किया है, वह इस युग के साहित्यकारो की चेतना को झकझोरने वाला है। लेखक की सबसे जीवन्त रचना वही होती है, जिसे पढ़ने से ऐसा प्रतीत हो कि लेखक का जीवन इसमे बोल रहा है। युवाचार्यश्री ने अपनी सृजन-चेतना मे जीवन की चेतना का सप्रेषण कर साहित्य-जगत को उपकृत किया है।

अभ्युदय की यात्रा

साधना, शिक्षा और साहित्य की त्रिवेणी मे सतत अवगाहन कर युवाचार्यश्री ने अपने व्यक्तित्व का अन्तर्मुखी निर्माण किया। आपकी सन्निधि से अन्य व्यक्ति भी लाभान्वित हो, इस दृष्टि से वि० स० २००४ रतनगढ मे आपको साझ (आचार्यश्री के साथ रहने वाले मुनियो के समूह) का अग्रगण्य नियुक्त किया गया। इसी क्रम मे वि० स० २०२२ माघ शुक्ला सप्तमी (हिसार) को आप निकाय-सचिव के गरिमामय सम्मान से सम्मानित हुए। ज्ञातव्य है कि इससे एक साल पूर्व आचार्यश्री ने निकाय-व्यवस्था का एक प्रयोग अपने धर्म-सघ मे किया था। प्रबन्धनिकाय, व्यवस्थानिकाय, शिक्षानिकाय और साधना-निकाय—इस चतुर्निकाय-व्यवस्था के मुख्य सचिव का दायित्व आपको मिला और आपने कुशलता के साथ उसका निर्वहन किया। वि० स० २०२६, माघ शुक्ला सप्तमी (हैदराबाद) के दिन आपने निकायपद का विसर्जन किया। जिसे अपनी स्वीकृति देकर आचार्यश्री ने उस सामयिक निकाय-व्यवस्था को स्थगित कर दिया। वि० स० २०३५ के गगाशहर चातुर्मास मे कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी को आप 'महाप्रज्ञ' की विशिष्ट उपाधि से अलकृत हुए और इसी वर्ष मर्यादा-महोत्सव के भव्य समारोह मे युवाचार्य महाप्रज्ञ बन गए। यह है आपके अभ्युदय की छोटी-सी यात्रा, जिसमे झाक रही है अबोध शिशु सी निश्छलता, स्त्री-सुलभ समर्पण, ज्ञान और

साधना की तीव्र अभीप्सा तथा दायित्व-वहन की उदग्र आकाक्षा। इन सब विशेषताओं के धनी हमारे युवाचार्य महाप्रज्ञ आचार्यश्री तुलसी की सुखद सन्निधि मे अपनी चेतना के विशिष्ट केन्द्रों मे विस्फोट कर धर्मसघ मे नई ऊर्जा को सचरणशील करते रहेगे, ऐसा विश्वास है।

युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ अपनी साधना, बौद्धिकता और दार्शनिकता के द्वारा देश के क्षितिज पर उभर कर सामने आए हुए है। आपके जाने-पहचाने व्यक्तित्व के सम्बन्ध में मैं कुछ लिखू, इसकी अपेक्षा अधिक अच्छा यह होगा कि इस सर्वोच्च पद पर अभिषिक्त होने के बाद उनकी प्रतिक्रिया, मन स्थिति और भावी कार्यक्रम के सम्बन्ध मे सही जानकारी प्रस्तुत करू।

पहली प्रतिक्रिया

इस प्रस्तुति के लिए मैं १५ फरवरी को मध्याह्न मे युवाचार्यश्री के पास पहुची। यद्यपि वह समय उनके विश्राम का था, फिर भी उन्होने अत्यन्त प्रसन्नता के साथ मेरी जिज्ञासाओ को समाहित करने की स्वीकृति दे दी। वहा जाने से पहले मन मे थोडा सकोच और भय था, पर युवाचार्यश्री की सहज और मधुर आत्मीयता ने मेरी झिझक समाप्त कर दी। मैंने सारी औपचारिकताओ को छोडकर अपना पहला प्रश्न किया—आचार्यश्री ने आपको तेरापथ धर्मसघ के सर्वोच्च पद पर अप्रत्याशित रूप से प्रतिष्ठित कर दिया। सभव है, उस समय आप स्तब्ध रह गए हो। किन्तु जब आपको इस सम्बन्ध मे एकान्त क्षणो मे कुछ सोचने का अवकाश मिला, इस घटना की आपके मन पर पहली प्रतिक्रिया क्या हुई?

मेरे इस प्रश्न ने एक क्षण के लिए युवाचार्यश्री को गभीर बना दिया। अपनी गभीरता को सहजता मे रूपायित कर आप बोले इस नियुक्ति के बाद मेरे मन मे यह आया कि आचार्यश्री ने मुझे समाज के उस स्थान पर प्रतिष्ठित किया है, जहा व्यक्ति व्यक्ति नही रहकर स्वय समाज बन जाता है। उसे पूरे समाज को आत्मसात् करना होता है। उसके लिए न केवल समाज को साथ लेकर ही चलने की अपेक्षा है, अपितु उसके साथ तादात्म्य स्थापित कर चलना जरूरी है। मै अकेलेपन की स्थिति मे अधिक रस लेता था, पर यह न नियति को इष्ट था और न स्वय आचार्यश्री को ही। इसलिए मैं एक व्यक्ति से समाज मे रूपान्तरित हो गया। इस भूमिका पर आरूढ होने के बाद आचार्य प्रवर ने जो गुरुतर दायित्व मुझे सौपा है, उसके समुचित निर्वाह हेतु मै अधिक शक्तिस्रोतो की आवश्यकता अनुभव करता हूँ। आचार्यवर के आशीर्वाद, अपनी अध्यात्म-साधना और समग्र समाज की सद्भावना, इस त्रयी के योग से मैं उन शक्तिस्रोतो को उद्घाटित करू, यह मेरी पहली प्रतिक्रिया है।

युवाचार्यश्री की यह प्रतिक्रिया मुझे स्वाभाविक नही लगी। इसलिए मैंने इसी विषय को आगे बढाते हुए पूछा—यह दस-बारह दिनो का समय आपको कैसा लगा? क्या आप अपने भीतर कोई परिवर्तन अनुभव कर रहे है?

युवाचार्यश्री ने सहजभाव से उत्तर दिया जहा तक मेरे अन्त करण या भीतरी व्यक्तित्व का प्रश्न है, वहाँ तक मुझे अस्वाभाविक जैसा कुछ भी नही लगता, क्योंकि मेरा मन

साधना से इतना भावित है कि उस पर किसी प्रकार के भार का अनुभव होता ही नहीं। दूसरी बात—मुझे आचार्यवर का साक्षात् सान्निध्य उपलब्ध है, इसलिए भी मैं अपने आप मे बहुत हल्का हू।

"बाह्य व्यक्तित्व के सन्दर्भ मे मैं अपने आप मे भी और वातावरण मे भी एक परिवर्तन देख रहा हू। इन दिनो मुझे एक चिन्तन बार-बार आन्दोलित कर रहा है कि आचार्यवर ने मुझे इतना बडा दायित्व सौपा और समूचे सघ ने उसके प्रति इतना उल्लास व आनन्द प्रदर्शित किया। केवल तेरापथ समाज ही नही, व्यापक रूप से मेरे प्रति जो आकांक्षाए सजोई जा रही हैं, उससे मेरा दायित्व और अधिक व्यापक हो जाता है। उन सब आकाक्षाओ की पूर्ति मैं कैसे करू, यही विचार मुझे बार-बार उत्प्रेरित करता रहता है।"

अगले प्रश्न मे मैंने युवाचार्यश्री की साधना और साहित्य-लेखन मे अवरोध की बात उपस्थित की तो आपने फरमाया - यह निर्णय यदि पाच-दस साल पहले होता तो मेरी साधना और लेखन दोनो मे अन्तर आता। किन्तु यह काम एक अवधि के बाद हुआ, इसलिए मेरे सामने कठिनाई या अवरोध जैसी कोई स्थिति नही है। क्योकि साधना की एक सीमा मैं अतिक्रान्त कर चुका हू और लेखन को भी अब वक्तृत्व मे बदल चुका हू।

प्रशासन भी मेरी रुचि

आपकी रुचि प्रशासन है या ध्यान ? इस प्रश्न को उत्तरित करते हुए युवाचार्यश्री ने कहा – मेरी काम करने की पद्धति यह रही है कि या तो मै कोई काम करू नही, करू तो पूरी रुचि के साथ करू। अस्वीकार या पूरी तन्मयता इन दोनो मार्गों मे से एक मार्ग का निर्धारण कर मै चलता हू। अत प्रशासन को भी अपनी रुचि का अग बनाकर ही चलूगा। रुचि-निर्माण के स्थान पर रुचि के अनुरूप काम हाथ मे लेने का प्रश्न आता तो मैं इस सम्बन्ध मे कुछ निवेदन भी करता, पर ऐसा अवकाश ही मुझे नही मिला। दूसरी बात यह है कि दूसरो के सामने किसी भी काम के स्वीकार या अस्वीकार मे मैं पूरी स्वतत्रता का उपयोग करता हू, किन्तु आचार्यवर का जो आदेश मिल जाता है, उसके सवथा अस्वीकार की बात मेरे लिए बहुत कठिन हो जाती है। जिस समय आचार्यश्री ने मुझे अपने सामने खडा होने का निर्देश दिया, मैं एक बारगी स्तब्ध रह गया। मुझे लगा—मैं कोई स्वप्न देख रहा हू या यथार्थ के धरातल पर खडा हू।

नियति का निर्माण

आपने अपने बारे मे कभी ऐसी कल्पना की थी क्या ? अपने भविष्य के सम्बन्ध मे आपका क्या चिन्तन था ? मेरी इस जिज्ञासा के समाधान मे आपने कुछ ज्योतिर्विदो के और कुछ अपने प्रातिभ ज्ञान-सम्बन्धी नए रहस्यो का उद्घाटन किया। फिर चिन्तन के स्तर पर कुछ बिन्दुओ को स्पष्ट करते हुए कहा मैं तेरापथ सघ की सेवा का कुछ विनम्र प्रयत्न कर चुका हू। अब मेरी इच्छा थी अध्यात्म के व्यापक क्षेत्र मे समग्र मानव जाति की सेवा। इस चाह ने मुझे चिन्तन का नया परिवेश दिया। उस परिवेश मे मेरी कल्पना थी मैं अपने

धर्मसंघ में साधना की विशिष्ट भूमिका में रहू और उसी माध्यम से मानव जाति की सेवा करता हुआ अपने लक्ष्य की दिशा मे आगे बढ़ू। संघ का दायित्व आचार्यवर किसी को भी सौंपें, उसमे न मेरा कोई हस्तक्षेप होगा और न मैं किसी व्यवस्था में भाग ही लूगा। मैं केवल अध्यात्म की दिशा मे, अध्यात्म-चेतना का जागरण करने के लिए चलता रहूगा, चलता रहूगा इस सम्बन्ध मे मैंने कई बार आचार्यश्री से प्रार्थनाए भी की। एक बार लिखित निवेदन भी किया ध्यान की विशेष भूमिका पर आरूढ होने के लिए, किन्तु वैसा नहीं हो सका। अब मैं सोचता हू कि मेरी नियति यही थी या आचार्यवर ने मेरी नियति का निर्माण इसी क्रम से गुजरने के लिए किया है, इसलिए मैं कल्पना, सभावना आदि सब स्थितियो मे न उलझ अपने दायित्व का निर्वहन करने की दिशा में आगे बढ़ू।

एक रहस्योद्घाटन

मैं अपने कुछ प्रश्न लेकर जिस समय युवाचार्यश्री के पास पहुची तो आपने कहा—तुम मेरा समय लोगी या आचार्य प्रवर का भी? मैंने निवेदन किया—जब आपके ही बारे मे मुझे लिखना है तो आचार्यवर का समय लेकर क्या करूगी? उस समय तक मेरे मन मे नही था कि मैं आचार्यश्री से भी कुछ पूछू, किन्तु जब ऐसी बात सामने आ ही गई तब मैंने झिझकते हुए एक प्रश्न गुरुदेव से भी पूछ लिया। मेरे प्रश्न का आशय था आपने अप्रत्याशित रूप से अपने उत्तराधिकारी के मनोनयन का निर्णय लिया। इस निर्णय के पीछे कोई ठोस आधार था? यह आपका दीर्घकालीन निर्णय था? या किसी परिस्थिति की प्रेरणा से आपने तात्कालिक निर्णय लिया?

आचार्यवर मेरी बात सुन दो क्षण मुस्कराए, फिर एक अज्ञात रहस्य का उद्घाटन करते हुए कहा दो वर्ष पहले (वि० स० २०३३) मे सुजानगढ मे था, उस समय डीडवाना-निवासी श्रावक जयसिंह मुणोत उपपात मे बैठा था। वह पामिस्ट तो था ही, विशिष्ट ज्योतिर्विद भी था। उसने मेरे हाथ की रेखाए देखी। मैंने कहा—कोई विशेष बात ध्यान मे आए तो बताना। वह कुछ गभीरता से रेखाओ पर दृष्टि टिकाकर बोला—गुरुदेव! मैं दो महत्वपूर्ण बाते निवेदन करूगा (१) आप अपनी आयु के ६५वे वर्ष मे अपना उत्तराधिकारी घोषित करेंगे। (२) आप जिसे अपना उत्तराधिकारी बनाएगे, उसका पहला अक्षर 'म' होगा।

ये दोनो बाते नोट कर ली गई। उस समय मेरा न कोई चिन्तन था और न किसी तात्कालिक निर्णय का प्रश्न था। किन्तु फिर भी मैंने मकारादि मुनियो पर दृष्टिपात किया। मेरी नजर चारो ओर घूमी, किन्तु वह कही भी स्थिर नही हुई। उसके बाद मैं एक प्रकार से उस बात को भूल-सा गया। वि० स० २०३५ का मेरा चातुर्मास गगाशहर था। वहा मैंने मुनि नथमल जी को महाप्रज्ञ की उपाधि से अलकृत किया। किन्तु इस अभिक्रम मे मेरा कोई विशेष लक्ष्य नही था। क्योकि अब तक मैंने कभी निर्णायक रूप से कोई चिन्तन ही नही किया था। उस उपाधि की अभिधारूप मे परिणति अनायास ही हुई या उस ज्योतिर्विद की भविष्यवाणी को सत्यापित करने के लिए हुई, कहा नही जा सकता। पर मेरे मन मे ऐसा कुछ भी नही था। यह सब कुछ घटित हो जाने पर एक दिन मेरे मस्तिष्क मे सुजानगढ

वाली स्मृति उभर आई और मैंने अनुभव किया कि किस प्रकार सहजभाव से किया गया कार्य भी किसी घटना के साथ जुड जाता है।

"मर्यादा-महोत्सव के अवसर पर अपने निर्णय को उद्घोषित करके मैं स्वयं एक निश्चिन्तता का अनुभव कर रहा हू। इस सन्दर्भ मे इतना अवश्य ज्ञातव्य है कि मेरे सामने न तो किसी परिस्थिति की विवशता थी और न ही कोई दूसरी समस्या। मैंने अपने तटस्थ चिन्तन के आधार पर जैसा उचित समझा, वैसा किया। अपने धर्मसघ की शालीन और गौरवमयी परपरा के अनुसार साधु-साध्वियो, श्रावक-श्राविकाओ तथा अन्य प्रबुद्ध लोगो ने मेरे निर्णय का स्वागत किया, इसकी मुझे प्रसन्नता है। मैं अब भी अपनी कार्य-क्षमता मे किसी प्रकार की कमी का अनुभव नही करता हू, इस दृष्टि से मैं चाहता हू युवाचार्य महाप्रज्ञ अपनी साधना के चालू क्रम को निर्विघ्न रूप से आगे बढ़ाए। साधना के तेज से अपने बहु-आयामी व्यक्तित्व को निखार कर वे विनम्र भाव से धर्मसघ को सेवाए देते रहे। तनाव तथा सत्रास से आक्रान्त सपूर्ण मानव-जाति को मानसिक शान्ति की दिशा मे अग्रसर करते रहे।"

भावी योजना

आचार्यश्री द्वारा किए गए रहस्योद्घाटन से पाठको को परिचित करा मैं पुन युवाचार्यश्री के चिन्तन की यात्रा कराने ले जा रहो हू। पिछले प्रश्नो की श्रृखला को आगे बढाते हुए मैंने पूछा—आप अपने नेतृत्व मे धर्मसघ को कौन-सा नया मोड देना चाहेगे? प्रश्न की गभीरता के अनुरूप गभीर आकृति से गभीर तथ्य प्रकट करते हुए युवाचार्यश्री ने अपने भावी कार्यक्रम की सभावना को अभिव्यक्त करते हुए कहा—हमारे सामने दो बाते है अध्यात्म और समाज। समा शक्तिशाली तब बनता है, जब वह अध्यात्म से अनुप्राणित हो, जब उसमे सास लेने वाला हर व्यक्ति सशक्त हो। आचार्यवर ने जब मुझे समाज मे काम करने का अवसर दिया है, तो मै चाहूगा कि मेरा दर्शन समाज मे क्रियान्वित हो। सुकरात का नाम सुना होगा तुमने। उसका यह सिद्धान्त था कि शास्ता किसी दार्शनिक को होना चाहिए। दार्शनिक शास्ता अपनी जनता को जीवन-दर्शन की गहराई से परिचित करा सकता है और उसे तदनुरूप व्यवहार भी दे सकता है।

मेरी आकाक्षा यह है कि सबसे पहले व्यक्ति अपने जीवन का निर्माण करे। वह व्यक्तिगत निर्माण की बात को प्राथमिकता दे और सघ-सेवा का काम उसके अनन्तर क्रिया-न्वित करे। जीवन-निर्माण का यह दर्शन मुझे **आचारांग** से उपलब्ध हुआ है। वहा एक सूक्त है—**आवीलए, पवीलए निव्वीलए**—इस एक सन्दर्भ मे मुनि के समग्र जीवन का स्पष्ट निदर्शन है। दीक्षित होने के बाद मुनि सबसे पहले अध्ययन और साधना मे अपना जीवन लगाए, यह आपीडन है। उसके बाद वह सघ से जो सेवा ली है, उसका ऋण चुकाए, यह प्रपीडन है, और ऋण-मुक्त होने के बाद समाधिमरण की तैयारी करे, यह निष्पीडन है, मैं चाहता हू, मेरा यह दर्शन हमारे धर्मसघ मे क्रियान्वित हो।

व्यक्ति-निर्माण की बात मेरे मन को बहुत भाई। मैं स्वय भी ऐसा ही कुछ सोच रही थी, पर उसकी कोई प्रक्रिया मेरे सामने स्पष्ट नही थी। युवाचार्यश्री के द्वारा जब यह तथ्य मैंने सुना तो अपनी जिज्ञासा को रोक नहीं पाई और छूटते ही पूछ बैठी—आपका यह दर्शन और उसकी क्रियान्वति बहुत अच्छी बात है, किन्तु इसका तरीका क्या होगा ?

"तरीका तो कुछ निर्धारित करना ही होगा ? वैसे हर कार्य की निष्पत्ति के लिए कुछ विशिष्ट परिस्थितियो का निर्माण जरूरी होता है। जीवन-निर्माण के दर्शन की क्रियान्वति का श्रीगणेश व्यक्तिगत साधना के लिए कम से कम एक घण्टा समय लगाने के सकल्प से शुरू हो ही गया है। इसकी निष्पन्नता के आसार मै आगामी दशक मे देख रहा हू। इतनी बडी योजना के क्रियान्वयन मे दस वर्ष का समय कोई अधिक नही है। मुझे विश्वास है कि आचार्यवर का सफल मार्ग-दर्शन उपलब्ध होने पर यह काम और अधिक सरल हो जाएगा।"

युवाचार्यश्री के इस अभिमत से सहमत होने पर भी मेरे मन का एक और सन्देह उभर कर सामने आया। उससे प्रेरित होकर मैंने पूछ ही लिया —साधना में एक घण्टा समय लगाने का सकल्प कई साधु-साध्वियो ने लिया है, पर क्या समय लगाने मात्र से हमारा लक्ष्य पूरा हो जाएगा ? मुझे तो ऐसा लगता है कि जब तक वृत्तियो का रूपान्तरण नही होगा, व्यक्ति-निर्माण का स्वप्न भी मात्र स्वप्न बनकर रह जाएगा। इस सम्बन्ध मे आपकी क्या राय है ?

"केवल समय लगाने मात्र से वृत्ति परिवर्तन की बात से मै भी सहमत नही हू। एक-दो घण्टे के समय मे स्वय को प्रशिक्षित करने की विधि हस्तगत हो जाए, यह जरूरी है। इसके लिए मै सोचता हू कि साधु-साध्वियो को प्रशिक्षण के लिए व्यवस्था और अवकाश दिया जाए, तो हमारा स्वप्न स्वप्न न रहकर यथार्थ बन जाएगा। इस स्वप्न को फलीभूत देख मुझे जो प्रसन्नता होगी, वह भी अनिर्वचनीय ही होगी।

युवाचार्य के सपनों का साध्वीसमाज

मै केवल दो-चार बात पूछने के लिए गई थी, पर युवाचार्य श्री के उत्तरो ने मेरे मन मे जिज्ञासा का ज्वार ला दिया। समय काफी हो चुका था। फिर भी मेरे प्रश्नो की बौछार जोर पकडती जा रही थी। आखिर आचार्यवर ने आगम-काय के लिए युवाचार्यश्री को याद किया, तो मै बोली – एक प्रश्न और पूछ लू ? आपकी स्वीकृति पाकर मैंने पूछा—आपका साध्वी-समाज सख्या की दृष्टि से बहुत बडा है। सख्या के अनुपात से गुणात्मकता भी बढे, इस दृष्टि से आप साध्वीसमाज से क्या अपेक्षाए रखते है तथा क्या विशेष निर्देश देना चाहते है ?

दो क्षण आज्ञा-चक्र पर मन को केन्द्रित कर हाथ के हल्के से स्पर्श से उसे परिस्पन्दित कर आप बोले हमारा साध्वी-समाज निश्चित ही एक बडा समाज है। उसमे नई जिज्ञासाओ की स्फुरणा है। वह कुछ होने या बनने की चाह भी रखता है, पर इसके लिए उसे विशिष्ट सकल्पशक्ति का सचय करना होगा तथा तदनुरूप अपने आपको ढालना होगा।

इस दृष्टि से सबसे पहली बात है स्वार्थ का विसर्जन। कोई भी व्यक्ति या समाज तब तक विशिष्ट नहीं बन सकता, जब तक उसमे स्वार्थ-चेतना से मुक्त होने का सकल्प दृढ नही हो जाता। व्यक्ति की स्वार्थ-चेतना उसे खानपान जैसी छोटी बातो में उलझा देती है तो कभी किसी बडी बात को लेकर उत्पात मच जाता है। साध्वियो से मेरी दूसरी अपेक्षा है—दीर्घ-कालीन चिन्तन की क्षमता का विकास। तत्काल जो कुछ प्राप्त होता है, उस पर तात्कालिक प्रतिक्रिया दीर्घकालीन हितो के पक्ष मे नही होती। इसलिए तत्कालीन प्रतिक्रिया को सुरक्षित रखते हुए समय पर ही उस सम्बन्ध मे निर्णय लेना उचित है। तीसरी बात है शिक्षा का गहरा अभ्यास। अध्ययन का धरातल ठोस न हो तो पल्लवग्राही विद्वता से व्यक्ति न अपने आपको उपलब्ध कर सकता है और न ही शिक्षा के क्षेत्र मे नए आयामो का उद्घाटन कर पाता है।

"सबसे अधिक महत्वपूर्ण और आवश्यक बात है अनुप्रेक्षा और ध्यान का अभ्यास, वह भी वृत्तियो को रूपान्तरित करने के उद्देश्य से। इन सब बातो के प्रति साध्वी-समाज जागरूक रहा तो वह वर्तमान की अपेक्षा अधिक प्रबुद्ध और गतिशील हो सकता है।"

साध्वियो के सम्बन्ध मे मेरी कुछ और भी जिज्ञासाए थी, पर एक साथ सब कुछ जानने की अभीप्सा भी तो परिपूर्ण जानकारी मे बाधा बन जाती है। जीवन को पूरी तरह जीने के लिए दीर्घकालीन धृति की अपेक्षा होती है, वैसे ही किसी भी विषय को समग्रता से समझने के लिए भी पर्याप्त समय की अपेक्षा रहती है। वैसे युवाचार्यश्री का व्यक्तित्व जाना-पहचाना है। हजारो-हजारो लोगो की सहज श्रद्धा आपको प्राप्त है। आचार्यवर का मार्ग-दर्शन युवाचार्यश्री के लिए प्रकाशदीप का काम करे तथा युवाचार्यश्री का भविष्य धर्मसघ तथा सपूर्ण मानव-जाति के उज्ज्वल भविष्य का दर्पण बनकर प्रस्तुत हो, इसी विश्वास के साथ मैं अपने अन्त करण की समस्त कोमल भावनाओ मे आचार्यवर और युवाचार्यश्री की मगलमय दीर्घजीविता की कामना करती हू।

— o —

आचार्यश्री तुलसी के उत्तराधिकारी : युवाचार्य का अभिनन्दन

प्रो० दलसुख भाई मालवणिया

मुनि श्री नथमल जी का मेरा परिचय बहुत पुराना है । हमने वाद-विवाद भी किया है । इन प्रसगो मे आपका वर्ताव विद्वान्-जनोचित और अद्वितीय था । मैंने आपको मदा प्रसन्न ही देखा है । विनम्रता और गुरु के प्रति समर्पण भाव—ये दो आपकी उत्कृष्ट विशेषताए है। आपको गुरु भी ऐसे उपलब्ध हुए हैं, जिन्होने आपको स्व-चिन्ता मुक्त किया है । यदि गुरु सारी चिन्ताओ का भार ढोने की स्वीकृति दे देते हैं, तो भला कोई क्यो अपनी चिन्ता करेगा ? ऐसी परिस्थिति मे आपने जो विकास साधा है, वह अपूर्व है, ऐसा कहा जा सकता है । गुरु ने क्या किया और मैंने क्या किया, इस भेद की अनुभूति आपको कभी नही हुई । गुरु-शिष्य की ऐसी अभेद भूमिका आज के आधुनिक युग मे विरल है । यदि इस अभेद भूमिका का साक्षात्कार करना हो, तो वह आचार्य तुलसी और उनके शिष्य मुनि श्री नथमल जी मे किया जा सकता है । विद्वत्ता के साथ विनम्रता का योग भाग्य से ही प्राप्त हो सकता है । विद्वत्ता और विनम्रता की पराकाष्ठा मुनि नथमल जी मे है, यदि मैं यह कहू तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी ।

जैन सघ मे सयम की साधना विविध प्रकार से होती है । किन्तु इस साधना मे जो ध्यान-साधना की कमी थी और जो प्राय विस्मृत हो चुकी थी, उसका पुनरुत्थान मुनि श्री नथमल जी ने किया है । मैंने स्वय देखा है कि इस साधना के कारण अनेक जैन और अजैन युवको को धर्माभिमुख करने का श्रेय भी आपने प्राप्त किया है । आपने प्रेक्षा-ध्यान की पद्धति को विकसित किया है । आपने योग मे स्वय निष्णातता प्राप्त की और योग की समग्र भारतीय पद्धतियो से परिचित हो कर प्रेक्षा-ध्यान-पद्धति का प्रसार किया है । इसमे समग्र भारतीय योग-साधना के तत्वो का समन्वय करने का प्रयत्न किया गया है । परम्परा से सर्वथा अलग-अलग पड कर नही, किन्तु परम्परा मे आवश्यक परिवर्तन कर आपने जो ध्यान-पद्धति का निरूपण और प्रयोग किया है, यह नई होने पर भी परम्परा से सर्वथा मुक्त नही है— यह आपकी ध्यान-पद्धति की मुख्य विशेषता है और यह विशेषता आपकी उत्कृष्ट विद्वत्ता और साधना के कारण है, ऐसा मानना चाहिए ।

अनेक वर्षों की आपकी ज्ञानाराधना और उसके परिणामस्वरूप आपने जो साहित्य-साधना की है, वह मात्र जैन समाज की ही नही, समग्र भारतीय साहित्य के साहित्य-सेवी होने का स्थान सहज ही प्राप्त करा देती है। संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी भाषा मे आपने जो साहित्य रचा है, वह आपकी नवीन शैली के कारण बहुत ही आकर्षक है। आपके अनेक ग्रन्थो का अग्रेजी मे अनुवाद भी हुआ है। मौलिक साहित्य के निर्माण के साथ-साथ आपने अपने सम्प्रदाय के साहित्य-भडार को भरने का भी प्रयत्न किया है। जैन आगमों का उद्धार भी आपने पूर्ण विद्वत्ता के साथ किया है। आप आचार्य तुलसी के भाष्यकार है, इतना कहना मात्र पर्याप्त नही है। आप भारतीय सस्कार-परम्परा के भाष्यकार है, यह कहना आवश्यक है। तेरापथ समाज के वैचारिक उन्नयन मे आपकी जो देन है, वह चिरस्मरणीय रहेगी। इसी के आधार पर गत वर्ष (कार्तिक शुक्ला १३, गगाशहर मे) आचार्य तुलसी ने आपको 'महाप्रज्ञ' की उपाधि से विभूषित किया, यह उचित ही था और इस नये वर्ष के प्रारम्भ मे आचार्य श्री तुलसी ने आपको अपने उत्तराधिकारी के लिए योग्य माना है, इस विषय मे सहर्ष यही कहा जा सकता है कि आचार्य श्री तुलसी ने योग्य व्यक्ति को योग्य पद दिया है।

आचार्य श्री तुलसी ने जैन समाज को जो दिया है, उससे भी अधिक केवल जैन समाज को ही नही किन्तु समग्र भारतीय समाज को, ये मुनि नथमल जी, आचार्य बनकर देंगे, इसमे कोई सन्देह नही है।

[६-२-७६ के **दैनिक 'सन्देश' से साभार उद्धृत गुजराती का हिन्दी अनुवाद**]

इतनी दूर क्यों भेजा ?

विक्रम् सवत् २००१ की घटना है। युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ जी का चातुर्मास देहली था। हम सात सत उनके साथ थे। उस समय मेरे नकसीर की शिकायत रहती थी। अत गर्मी का ध्यान रखना पडता था। एक बार सतो ने मुझे किसी कारणवश गोचरी (भिक्षा) के लिए पहाडगज भेजा। मैं गोचरी करने के लिए चला गया। पीछे से युवाचार्य श्री को मालूम पडा कि मुझे इतनी दूर गोचरी के लिए भेजा गया है तब उन्होने सतो से कहा—विमलकुमार जी को इतनी दूर क्यो भेजा ?

बात छोटी थी। लेकिन उसमे प्रकट होता था युवाचार्य श्री का वात्सल्य और पर दुख द्रवत्व। जो व्यक्ति पर पीडा को स्वपीडा-तुल्य समझता है, वही दूसरे का प्रिय बन सकता है।

—मुनि विमल कुमार

युवाचार्य महाप्रज्ञ : एक गंभीर चिन्तक

अगरचन्द नाहटा

जैन धर्म में स्वाध्याय और ध्यान को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। उत्तराध्ययन सूत्र के समाचारी नामक अध्ययन मे साधु-साध्वी की समाचारी मे तो यहा तक कह दिया गया है कि प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय, द्वितीय प्रहर में ध्यान, तृतीय प्रहर मे गोचरी आदि शारीरिक क्रियाए, चतुर्थ प्रहर मे फिर स्वाध्याय। इसी तरह रात्रि में एक प्रहर की निद्रा बाकी प्रहरो मे स्वाध्याय और ध्यान का क्रम चालू रखने का विधान है। अर्थात् दिन और रात के आठ प्रहरों मे साधु-साध्वी चार प्रहर का स्वाध्याय, दो प्रहर का ध्यान, एक प्रहर गोचरी आदि और रात्रि का एक प्रहर निद्रा, यह मुनिचर्या है। पर देश और काल की स्थिति मे इतना अन्तर आया कि आज उस क्रिया का पालन बहुत कठिन हो गया है। मध्यकाल मे ध्यान की पद्धति साधारणतया लुप्त-सी हो गई थी। अत मेरे मन मे यह बार-बार आता रहता था कि ध्यान की पद्धति साधु-साध्वियो मे फिर से चालू हो। यद्यपि बीच-बीच मे कुछ ऐसे जैन मुनि हुए है, जिन्होंने लम्बे समय तक ध्यान की साधना की है।

जब आचार्य श्री तुलसी का कलकत्ते मे चातुर्मास था, तो एक दिन रात को जब उनसे मिलने गया, तब अपना मनोभाव व्यक्त किया कि आपने साधु-साध्वियों मे पढ़ाई तो बहुत अच्छी चालू कर दी है। थोडे वर्षों मे ही काफी विद्वान्, लेखक, लेखिकाए तैयार कर दी, पर आगमोक्त ध्यान की परम्परा चालू करने की बडी कमी नजर आती है, तो आचार्य श्री ने कहा कि आपकी बात बहुत ठीक है, हम भी चाहते है, आपकी जानकारी मे कोई ध्यानयोगी या साधक जैनो मे हो, तो उसका तथा जैन योग-सबधी ग्रन्थो का नाम बतलाइये। तो मैंने अपने पूज्य गुरु सहजानन्द जी का नाम बतलाया, जो वर्तमान मे बहुत अच्छे ध्यान योगी है साथ ही कुछ ध्यान सबधी ग्रन्थों की भी सूचना दी।

मुझे यह देखकर और जानकर बहुत ही प्रसन्नता होती है कि आचार्य श्री तुलसी जी, मुनि श्री नथमल जी, मुनि श्री किशनलाल जी आदि के प्रयत्न से तेरापथी साधु-साध्वियो मे ध्यान की अच्छी प्रगति हुई है। मुनि श्री नथमल जी के गभीर और ठोस चिन्तन ने ध्यान की जैन पद्धति, जिसे प्रेक्षा-ध्यान नाम दिया गया है, सबके लिए सुलभ कर दी है। सैकडों श्रावक-श्राविकाए ही नही, जैनेतर भी इससे लाभ उठा रहे हैं। इस युग की मैं इसे बहुत बडी उपलब्धि मानता हू।

दार्शनिक और विचारक के रूप मे मुनि श्री नथमल जी बहुत समय से प्रसिद्ध रहे हैं, उन्होने अपने चिन्तन को और आगे बढ़ाया। अध्ययन भी बहुत अच्छा किया। इन दोनों विशिष्टताओं के कारण प्राचीन जैन-आगमो के सम्पादन-अनुवाद और टिप्पणिया लिखने मे बहुत अच्छी सफलता मिली है। इधर चिन्तन की गहराई से ध्यान मे भी बहुत अच्छी प्रगति हो सकी और उनकी मौलिक चिन्तन पद्धति से अनुभव के द्वार खुले।

मुनि श्री नथमल जी ने **"मैंने कहा"** नामक पुस्तक की प्रस्तुति मे स्वय लिखा है कि मैंने दर्शन की भाषा को समझा, पर कहानी की भाषा को नही समझा था। मैं दर्शन की सच्चाई को दर्शन की भाषा मे ही प्रस्तुत करता, तब मेरे श्रोता मेरी बात सुनने से पहले ही आशका से भर जाते, भयभीत हो जाते। उनकी आशका इस निर्णय तक पहुच जाती कि मुनि नथमल बोल रहे हैं, अब कुछ समझ मे आने वाला नही है, वे सुनने की मुद्रा मे ही नही रहते, इसलिए सचमुच उनकी समझ मे नही आता और उनकी आशका धारणा मे बदल जाती। लगभग दो दशक तक यह क्रम चलता रहा। मैंने नयी यात्रा शुरू की। आचार्य श्री तुलसी ने एक दिन कहा—"तुम दर्शन की भाषा को कुछ सरसता मे बदलो जिससे जनता उसे समझ सके।" मेरी नयी यात्रा शुरू हुई। मैंने दर्शन की भाषा के साथ कहानी की भाषा को जोड दिया। केवल कहानी की भाषा को ही नही जोडा, किन्तु दर्शन की भाषा को भी कहानी की भाषा में कहना शुरू कर दिया। थोडे समय बाद ही कुछ ऐसा हुआ कि लोग मुझे सुनने की ही मुद्रा मे बैठते हैं और दर्शन की गभीर चर्चा प्रस्तुत करता हू तो उसे भी कहानी के रूप मे सुन लेते है।

वास्तव मे उनके जीवन मे नये नये उन्मेष खेलते रहे है, पहले वे साधारण थे, बढते-बढते असाधारण बन गये। पहले वे कुछ ही लोगो के समझने योग्य थे, अब सबके लिए उपयोगी बन गये। पहले साम्प्रदायिक दृष्टि मे आबद्ध थे, अब उससे ऊपर उठ गये। हर व्यक्ति को उनके अनुभव-ज्ञान से कुछ न कुछ नयी जानकारी और प्रेरणा मिलती है। आगमो का कार्य और ध्यान-पद्धति का विस्तार विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके साथ रहने और काम करने वाले कई मुनि भी काफी कार्यक्षम और योग्य बन सके है।

यह भी बहुत महत्त्व की बात है कि उनके भाषण टेप कर लिये जाते है, जिससे सहज ही मे अनेको ग्रन्थ तैयार होकर प्रकाशित भी हो गये। सहयोगी मुनि श्री दुलहराज जी आदि ने उनके अनेक ग्रन्थो का सम्पादन कर दिया, अन्यथा वे इतने जल्दी प्रकाश मे नही आ पाते।

जैन मुनियो मे वे अपने ढग के एक ही है। आचार्य तुलसी के साथ लम्बे समय तक रहने से उनकी प्रसिद्धि और योग्यता भी इतनी अधिक बढ सकी। गुरू के प्रति समर्पण भाव, श्रद्धा, निष्ठा और विनय उनकी योग्यता के विकास मे बहुत बडे कारण हैं। जिस शिष्य पर गुरु प्रसन्न हो जाये और गुरु का अन्तर हृदय से आशीर्वाद मिले, उसकी महिमा का क्या कहना। एक तो स्वय ही योग्य एव प्रतिभासम्पन्न, दूसरा अनुकूल वातावरण एव सहयोग। फिर तो दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति होते देर नही लगती। आचार्य तुलसी ने पहले 'महाप्रज्ञ' का पद दिया और अब युवाचार्य का। वास्तव मे यह सर्वथा उपयुक्त और सूझ-बूझ वाला निर्णय है। वे जैन शासन की खूब सेवा एव प्रभावना करे, तथा आत्मोन्नति के चरम शिखर पर पहुचेंगे। यही शुभ-कामना है।

समन्वयशील सन्त : युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ

श्री जमनालाल जैन

श्वेताम्बर तेरापंथ सम्प्रदाय के अनुशास्ता युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी जी ने अपने लब्ध-प्रतिष्ठ अन्तेवासी महाप्रज्ञ मुनि श्री नथमल जी महाराज को युवाचार्य के पद पर प्रतिष्ठित करके न केवल तेरापथ सम्प्रदाय की, अपितु समग्र श्री जैन सघ की महान् सेवा की है।

मुनि श्री नथमल जी सच्चे अर्थों मे तपस्वी एव ज्ञानी सन्त हैं। उनकी कृशकाया मे विराट आत्मा विराजमान है। **'समणसुत्त'** ग्रथ के प्रसग पर दिल्ली मे सभी सम्प्रदायो के सन्तो एव श्रावको की जो सगीति आयोजित हुई थी उसमे आपकी प्रखर तर्क-शक्ति, समन्वय-शील-वृत्ति तथा दूसरो के प्रति सम्पूर्ण समादर-भावना का दर्शन करके मन मुग्ध हो उठा था। उनके सान्निध्य मे एक साधारण-से मनुष्य को भी ऐसा लगता है मानो गगा के घाट पर बैठकर स्नान किया जा रहा हो। वात्सल्य, स्नेह-सौजन्य तो उनकी आँखो से मानो निरतर झरता है।

मुनि श्री के प्राजल एव ज्ञान सम्पन्न व्यक्तित्व का वह साक्षात्कार तो मैं कभी भूल नही सकता, जब **समणसुत्त**' की सगीति के तत्काल बाद स्व० साहू शांतिप्रसाद जी जैन तथा भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से ब्र० जिनेन्द्रवर्णी जी का सम्मान किया गया। यह सम्मान-समारोह मुनि श्री नथमल जी के सान्निध्य मे ही किया गया था। तब मैंने मन ही मन अनुभव किया कि आज भले ही ये तेरापथ-सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व करते हो, किन्तु इनकी आत्मा इतनी उन्नत एव व्यापक है कि वह किसी भी प्रकार के चौखट या दायरे मे आबद्ध नही रह सकती। एक दिन आयेगा जब वह सूर्य व्यापक क्षितिज पर प्रकट होगा और इनका चिन्तन सम्पूर्ण मानव-समाज के अभ्युत्थान के लिए उन्मुक्त रूप से उपलब्ध होगा।

मुनि श्री दृढनिश्चय के धनी है। आप मे आत्म-नियत्रण एव सघ-नियत्रण की सहज क्षमता है। जैन विश्व भारती के गठन, विकास एव विस्तार मे, उसकी प्रगति मे आपका योगदान अपूर्व रहा है। अत्यल्प अवधि मे जैन विश्वभारती को जो समादर का स्थान प्राप्त हुआ है, वह आपके ही सत्प्रयास का परिणाम है।

आपने जैन आगम साहित्य का जैसा सुरुचिपूर्ण, परिशुद्ध एव वैज्ञानिक सम्पादन किया है, वह एक आदर्श है। इसी प्रकार **जैन दर्शन' मनन और मीमांसा, श्रमण महावीर, सत्य की खोज मन के जीते जीत** आदि आपकी कृतियाँ तरुण पीढ़ी के लिए प्रेरणादायी हैं। सरल-सुबोध शैली मे, छोटे-छोटे वाक्यो के द्वारा मुनि श्री अपनी बात सहज ही गले उतार देते हैं। धर्म एव दर्शन की गुत्थियो को वैज्ञानिक निकष पर कस कर अपने अनुभव को व्यक्त करने की अपूर्व क्षमता मुनि श्री की विशेषता है।

तेरापथ समाज के लिए तो यह गौरव की बात है ही कि आचार्य तुलसी ने मुनि श्री को युवाचार्य अर्थात् अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया है। सम्पूर्ण जैन श्री संघ के लिए, सभी सम्प्रदायो के लिए भी यह प्रसन्नता का अवसर है। मुनि श्री की असाम्प्रदायिक एव व्यापक समन्वयशील प्रज्ञा का लाभ उठाने का दायित्व समाज पर सहज ही आ गया है। विविध घेरो मे आबद्ध शक्ति को सगठित करके समाज यदि प्रयास करे तो मुनि श्री की मनीषा मे से आणविक ऊर्जा जैसी एकता उत्पन्न हो सकती है।

आचार्य श्री तुलसी जी ने अपने आचार्य-काल मे तेरापथ-समाज को अनेक नये मोड दिये हैं, क्रांति का सूत्रपात किया है। बीसवी शताब्दी मे जैन-ससार मे होने वाले परिवर्तनो की शृखला मे आचार्य श्री तुलसी के योगदान का उल्लेख स्वर्णाक्षरो मे अकित रहेगा। मुनि श्री नथमल जी आचार्य श्री तुलसी जी के निकटतम एव प्रिय अन्तेवासी रहे है, जैसे कि भगवान् महावीर के इन्द्रभूति गौतम थे। समस्त परिवर्तन-प्रक्रियाओ के आप साक्षी रहे हैं—सारे मोडो और घटना-चक्र को समर्पण एव निरहकार भाव से आत्मसात् किया है। ग्रथो के बीच भी आप निर्ग्रन्थ रहे हैं। ग्रथो के पारगामी एव रचयिता होने पर भी ग्रथो से ऊपर रहे है। जो भी अपने गुरु से पाया है, उसे पचाया है और तभी कहा है जब वह अनु-भव मे उतर चुका है। फिर भी एक बात कहने को मन करता है कि इस समर्पित व्यक्तित्व के भीतर भी एक क्रांतिकारी सूर्य आकार लेता रहा है। युग की अनेक चुनौतियाँ आपके समक्ष उपस्थित होने वाली है। इसमे सन्देह नही कि मुनि श्री अपने हाथो आचार्य श्री तुलसी जी के आशीर्वाद से उनसे भी आगे बढकर समाज को एक नई दिशा दे सकेंगे। इससे आचार्य श्री का आचार्यत्व-गुरुत्व सौ गुना गौरवान्वित होगा, धर्म और दर्शन धन्य होगा, तरुण पीढी का कल्याण होगा।

सबसे पहले मैंने मुनि श्री के दर्शन निकट से बबई मे, सन् १९६८ मे किये थे। उनकी तत्परता, विद्वानो के प्रति आत्मीयता, छोटो के प्रति मातृवत् वात्सल्य देखने लायक था। उनकी यह हार्दिक आकाक्षा है कि जैन धर्म और दर्शन का वैज्ञानिक प्रयोगशाला की भाँति विश्लेषण-प्रयोग हो—उसकी निर्मम शल्यक्रिया आवश्यक हो तो वह भी की जाय। गतानुगतिकता, पारम्परिकता को वे समाज के लिए घातक मानते हैं। भौतिकता की चरम उपलब्धियो की सम्भावना के बीच भी वे निर्लिप्त रहते हैं। भौतिक सुविधाओ के उपभोग अथवा ग्रहण की तनिक भी लालसा आपके व्यवहार से नही टपकती। यही कारण है कि सभी सम्प्रदाय वालो के मन मे आपके प्रति अविरोधमूलक समादर का भाव है। समय-चक्र तेजी से घूम रहा है। वह किसी का इन्तजार नही करता। हम देखे-देखें तब तक तो

गंगा का विपुल जल बह जायेगा। इसलिए सम्पूर्ण समाज के लिए आचार्य श्री तुलसी जी ने एक अमूल्य अवसर उपस्थित कर दिया है कि जितना वे अपने आचार्यत्व-काल में नहीं कर पाये, वह इस मनीषी सन्त से करवा लिया जाय। समाज साम्प्रदायिक नींद से या उन्माद से जाग सके और मुनि श्री जगा दें, तो देखते-देखते नव निर्माण की सम्पूर्ण क्रांति घटित हो सकती है।

व्यक्ति यहाँ गौण है। जो व्यक्तित्व समष्टिगत हो जाता है, विराट क्षितिज जिसको अपना लेता है, उससे निरा व्यक्ति क्या अपेक्षा करे ? आकांक्षा यही है कि उनके स्नेह-वात्सल्य पूर्ण ज्ञानकणों का हलका-सा स्पर्श भी परमसुख देने वाला बने !

अपनी आन्तरिक वन्दना के ये दो शब्द उनके चरणो मे अर्पित करने का सौभाग्य मुझे मिला, यह परम आह्लाद का विषय है।

— —

विदेह के साधक

विक्रम् संवत २०२२ की घटना है। युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ जी हर मंगल-वार को मौन किया करते थे। एक दिन आपके मंगलवार का मौन था और उस दिन लंबा विहार भी। आपके पैर में पीडा हो गई। लेकिन आपने उस दिन किसी को संकेत तक नही किया। दूसरे दिन प्रसंगवश बात चलने पर आपने दर्द का जिक्र किया तब मैंने निवेदन किया—आप थोडा संकेत कर देते तो मैं पाँव दबा देता। मेरा कथन सुन आप मुस्करा गये। यह थी आपकी विदेह की साधना।

विदेह का साधक शरीर और आत्मा की भिन्नता का अनुभव करता हुआ शरीर पर आने वाले हर कष्ट को समभाव से सहन करता है और आत्मानन्द का अनुभव करता है।

—मुनि विमल कुमार

अद्वैत भी, द्वैत भी, एकादश रूप भी !

गोपीचंद चोपड़ा

वह ऐतिहासिक दिवस

प्रतिदिन नानाविध घटनाए घटित होती रहती है, किन्तु महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाए कई दशकों या शताब्दियो के अन्तराल मे ही हुआ करती है। ऐसी ही एक विशेष महत्त्वपूर्ण घटना दिनाक ३-२-७९ के दिन घटित हुई, जो तेरापथ के इतिहास मे स्वर्णाक्षरो में लिखित रहेगी।

माघ महोत्सव (माघ शुक्ला सप्तमी स० २०३५ वि०) का पावन दिवस राजलदेसर मे गुरुदेव के सान्निध्य मे कई चरणो मे मनाया जा रहा था। दूसरे चरण के प्रारभ मे प्रसन्नवन्दन श्रद्धेय आचार्य प्रवर ने परम आह्लाद एव परमानन्दानुभूति के साथ जलद-गर्भ र स्वर मे महाप्रज्ञ मुनि श्री नथमल जी को तेरापथ सघ के युवाचार्य और अपने उत्तराधिकारी बनाने की घोषणा की। इस घोषणा ने चतुर्विध सघ को सहसा आनन्द विभोर कर दिया। प्रकृति ने भी इसका पूर्णरूपेण समर्थन किया। मुनि श्री नथमल जी अनासक्त, निरभिमानी, वीतरागता के साधक, साधना व ध्यान के पथ-प्रदर्शक तथा ज्ञान-ज्योति के उपासक तो हैं ही, किन्तु उनकी सर्वाधिक योग्यता आचार्य-चरणो के प्रति समर्पण भावना है। गुरुदेव ने मुनि श्री की समर्पण भावना की भूरि-भूरि प्रशसा की। समग्र समाज आकुल था गुरुवर एव युवाचार्य महाराज का अभिनन्दन करने के लिए, किन्तु सभी को मौका मिलना सभव नही था, अत मैंने तो मूक श्रद्धाजलि अर्पण कर ही सतोष किया।

यथा गुरु, तथा शिष्य

हमने आचार्य प्रवर को एक बार नही अनेक बार देखा है कि वे यथा अवसर "**वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि**" रह कर शासन की "सारणा-वारणा" करते आ रहे हैं। युवाचार्य जी महाराज मे मृदुता का गुण अपेक्षाकृत अधिक है।

श्रद्धेय मत्री मुनिराज (मुनि श्री मगनलाल जी महाराज) के महाप्रयाण के बाद सेवाभावी मुनि श्री चम्पालाल जी (भाईजी महाराज) उनके रिक्त स्थान की पूर्ति यथासभव

करते आ रहे थे। और सर्वप्रिय माईजी महाराज के दिवंगत होने के पश्चात् मुनि श्री नथमल जी अधिकतर गुरुकुल मे ही रहने के कारण उनकी पूर्ति बहुलाश मे करते रहे हैं। मुनि श्री नथमल जी परमाराध्य आचार्य देव के भाष्यकार होने के साथ-साथ उनके एक Friend, Philosopher and Guide (मित्र, परामर्शक एव दार्शनिक) के रूप मे प्रस्तुत रहे हैं। गुरुदेव ने "प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्" के सनातन नीति वाक्य के अनुसार शिष्य-स्थानीय पुत्र को मित्रवत् सदा ही अपने हृदय मे स्थान दिया, जो कि पितृतुल्य गुरु के अनुरूप ही था। किन्तु हमने मुनि श्री को सदैव ही गुरुदेव को श्रद्धास्पद पितृरूप मे देखते हुए पाया। उन्होंने गुरुदेव को कभी भी मित्ररूप मे नही समझा। उनके समक्ष वे सदा ही भोले बालक की तरह रहे। यह उनकी गुरुदेव के प्रति परम श्रद्धा एव समर्पण भावना का द्योतक है।

अर्हत, ईश, एकादश (अनन्त)

इस अवसर पर गुरुदेव ने मुनि श्री नथमल जी का नाम भी सदा के लिए बदल कर "**महाप्रज्ञ**" कर दिया और इस प्रकार गुण और गुणी मे अभेद की स्थापना कर दी। यह भी एक असामान्य घटना है।

जब भी अवसर आया मुनि श्री यह भावना व्यक्त करते रहे हैं कि गुरुदेव मे और उनमे कोई भेद नही है। वे दोनो अद्वैत हैं—दोनो मिलकर एक इकाई हैं। उनका कहना अनेकान्त की दृष्टि से हम सही मान सकते है। १ × १ एक ही होता है, किन्तु बीच-बीच मे जी चाहता है कि हम इन दोनो विराट पुरुषो को क्यो न १ + १ = २ के रूप मे देखे। क्या ये एक दूसरे के पूरक रहकर शासन और समाज की गौरव-वृद्धि मे द्विगुणित काम करते नही आए हैं? और अब तो यह जी चाहता है कि गणित के इन गुणा व योग के चिह्नो (× तथा +) को उपाधियो को मिटाकर हम इन महान् आत्माओ को एक और एक ग्यारह के रूप मे अर्थात् अनन्त ही के रूप मे क्यो न देखे। हमारी भावना है कि ये दोनो महान् पौरुष एव व्यक्तित्व के धारक "एक" या "दो" न रह कर ग्यारह गुणी ही नही अनन्त गुणी सेवा समाज और शासन को युग-युग तक देते रहे।

वह अनमोल पारस आचार्य श्री

श्रीमज्जयाचार्य जी ने अपनी एक गीतिका मे भगवान् पार्श्वनाथ की स्तुति इन शब्दो मे की है कि—'**पारस, तू प्रभु सांचो पारस, आप समों कर देवे हो**"। हम सभी यह सुनते आये हैं कि "पारस" लोहे को सोना बनाता है। पारस को किसी ने प्रत्यक्ष देखा है, ज्ञात नही, और, उसमे लोहे को सोना बनाने की शक्ति कहाँ तक सही है, यह भी हम निश्चयत नही बता सकते। किन्तु हम यह जानते हैं कि हमारे आचार्यों मे ऐसी अद्‌भुत शक्ति रही है। उन्होने अनेक लौह-खण्डो को सोना बनाया है और विशिष्ट गुण-सम्पन्न लौह-खण्ड को महान् कृपावश अपने ही तरह का पारस बना दिया। इसी श्रृखला मे हम पा रहे हैं अपने युगप्रधान महान् आचार्य प्रवर को। हम आभारी हैं उनके इन लोकोत्तर कृतियो के कारण। ऐसे कलाकार है हमारे श्रद्धेय आचार्य श्री, उन्होंने अपनी घोषणा से न केवल चतुर्विध सघ को आश्वस्त किया है, किन्तु हर्षित भी किया है समग्र आस्थाशील मानव समाज को और गुरुदेव स्वय भी उऋण होकर अवश्य ही अपने को बहुत हल्का महसूस कर रहे हैं। उनकी

यह महान् सम्पदा चिरस्थायी हो। यह हमारी हार्दिक कामना है।

साहित्य का अजस्र एवं अक्षुण्ण स्रोत

युवाचार्य महाप्रज्ञ जी की लगभग १०० कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। और अनेक अप्रकाशित कृतियाँ भी है। इनका विद्वत्समाज में पूरा मूल्याकन हुआ है। मैंने उनकी सब पुस्तकें तो नहीं, बहुत थोडी ही पुस्तकें पढी हैं। किन्तु मैं यह कह सकता हूं कि जिस पुस्तक के जिस भाग को भी मैंनें पढ़ा, उसी से मैं प्रभावित हुआ। उनकी **सम्बोधि, महावीर की साधना का रहस्य, श्रमण महावीर, सत्य की खोज अनेकान्त के आलोक में, जैनदर्शन के मौलिक तत्त्व, विजय यात्रा, तुम अनन्त शक्ति के स्रोत हो, चेतना का ऊर्ध्वारोहण, जैन योग, चित्त विचार दर्शन** आदि पुस्तके तो अतीव प्रेरणादायक है। हमने कई पुस्तको का तो कई बार परायण भी किया है। इनका पठन मानसिक पुष्टिकर आहार का काम करता है। आज आवश्यक है कि उनकी पुस्तको का सस्ता सस्करण प्रकाशित हो ताकि साधारण मध्यमवर्ग के व्यक्ति भी सहज ही उनसे लाभान्वित हो सके। आगम ग्रथो का सम्पादन कार्य तो उनके विशाल अध्यवसाय व अगाध ज्ञान का परिचायक है।

मोक्ष-मार्ग के मुख्य साधन 'ध्यान' की लुप्तप्राय जाह्नवी-धारा को उन्होने जिस अध्ययन एव अध्यवसाय के आधार पर भागीरथ की भाँति उद्धार किया है, उसके लिए मानव समाज उनका सदा ऋणी रहेगा। जैन साधना व ध्यान-पद्धति को शताब्दियो के बाद उजागर करना आपका अतीव महत्त्वपूर्ण अनुदान है।

व्यवहार नय : निश्चय नय

युवाचार्य महाराज बहुधा यह भावना व्यक्त करते रहते हैं कि हमारा "व्यवहार पक्ष" अधिक व्यापक बनता जा रहा है क्योकि यह पक्ष आकर्षक है। वास्तव मे ही आज निश्चय नय(अध्यात्म) का पलडा ऊपर उठा लगता है। हम आशा करते हैं कि आचार्य देव के आशीर्वाद से युवाचार्य महोदय का ऐसा उपक्रम रहेगा कि अचिर भविष्य मे अध्यात्म का पलडा जो कि निश्चयनय पर आधारित है, बहुशाखी, बहुफलवान् वृक्ष की तरह नीचे झुकता दिखाई देगा।

इस अवसर पर हम यह भी बताना चाहेगे कि युवाचार्य श्री जी महाराज के अतीत में कई प्रसगो पर सुष्ठु मतान्तर रहा है, किन्तु उनके हमारे प्रति स्नेह मे कभी किसी प्रसग पर कमी नही रही है, यह उनके वात्सल्य एव उदार मानस का परिचायक है। वास्तव मे स्वस्थ मतभेदो का होना विचारशीलता एव जीवन्तता का परिचायक है।

जैन विश्व भारती के आशाकेन्द्र

हम, विश्व की इन दोनो महान् विभूतियो से "देहि देहि" की रटन लगाकर कोई और अन्य माँग नही करना चाहते है। शिक्षा, शोध, साधना, सेवा, सस्कृति की जीवन्त प्रतीक जैन विश्व भारती के एक सेवक के रूप मे हम आपके प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि व समर्पण-भावना व्यक्त करते हुए आपके प्रति यह कामना करते हैं कि आप पूर्ण स्वस्थ एव दीर्घायु हो और आपका सात्त्विक मार्ग-दर्शन सदैव हमें मिलता रहे तथा जैन समाज की यह सस्था अपने महान् उद्देश्यों की सम्पूर्ति मे निरन्तर जागरूक एव अप्रमत्त रहे।

युवाचार्य की नियुक्ति : आचार्य श्री का महान् दायित्व

जबरमल भडारी

पच परमेष्ठी मे आचार्य का पद मध्य मे है। पच परमेष्ठी के अतिम दो पदो मे से आचार्य निर्वाचित होते हैं। आचार्य स्वय तो सयम पालते ही हैं, साथ-साथ अन्यो को संयम पालने मे सहायक बनते हैं। जैन शासन के आचार्य शृगार होते हैं और चतुर्विध सघ की सारणा-वारणा करते हैं। जैनो मे जैन श्वेताम्बर तेरापथी एक बहुत बडा सघ है। इस सघ के सभी आचार्य उत्तरोत्तर प्रभावशाली हुए हैं। इस सघ के वर्तमान आचार्य श्री तुलसी गणी हैं। उन पर चतुर्विध सघ की विशेष जिम्मेवारी है। साधु-साध्वी समुदाय बहुत बडा है, फिर भी सब सघ के सदस्यो को परोटने की महान् दक्षता आचार्य श्री मे है। युग बराबर पलटता जा रहा है। पलटते युग मे जो युग की माग के अनुसार अपने को नही पलटता वह पिछड जाता है।

आचार्य श्री तुलसी ने युग की परिवर्तन-शीलता को भली प्रकार समझा है और भविष्य मे युग क्या करवट लेगा उसको वे पहले से ही भली प्रकार जान लेते है, इसलिए उनका कदम सयम की साधना करते हुए समयानुकूल आगे बढता जा रहा है।

तेरापथ शासन की हमेशा से यह मर्यादा रही है कि वर्तमान आचार्य अपने शासन-काल मे युवराज की नियुक्ति करते है, जो चतुर्विध सघ को मान्य होती है। इस नियुक्ति मे किसी का हस्तक्षेप नही होता। नियुक्ति की पूरी जिम्मेवारी वर्तमान आचार्य की ही रहती है। अत आचार्य श्री का यह गुरुत्तर दायित्व होता है कि वे अपने पीछे होने वाले आचार्य का नाम घोषित करे। आचार्य तुलसी आगम दृष्टि के महान् धनी हैं। माघ शुक्ला सप्तमी को मर्यादा-महोत्सव के अवसर पर आचार्यप्रवर ने अपनी जिम्मेवारी को ध्यान मे रखते हुए मुनि श्री नथमलजी को युवाचार्य घोषित कर तेरापथ सघ को ही नही अन्य धर्मावलम्बियो एव भारत के चिंतको तथा बुद्धिजीवियो को एक महान् देन दी है। इस घोषणा से चारो ओर उल्लास ही उल्लास है। युवाचार्य महाराज सबके जाने पहचाने हैं। शायद कई व्यक्तियो ने उनका साक्षात्कार नही भी किया हो, परन्तु उनके कर्तृत्व से सभी परिचित हैं। मुनि श्री की दीक्षा स्वर्गीय प्रातःस्मरणीय पूज्य कालूगणीजी के द्वारा हुई थी। परन्तु मुनि श्री दीक्षा के बाद से निरन्तर आचार्य श्री तुलसी (जब वे सामान्य साधु थे) के सान्निध्य मे रहे हैं। अत मुनि श्री ने जो भी विकास किया है, वह सब आचार्य श्री तुलसी की देन है।

मुनि श्री नथमलजी पूज्य आचार्य श्री के इगित-आकारो को समझते है। मैं यह कहू तो अत्युक्ति नही होगी कि मुनि श्री आचार्य श्री तुलसी के भावो के भाष्यकार हैं। मुनि श्री एक महान् दार्शनिक विद्वान् सत हैं, जो आगमो की गुत्थियो को सुलझाने मे दक्ष हैं। इसी कारण पूज्य गुरुदेव ने कुछ समय पूर्व उन्हे "महाप्रज्ञ" की उपाधि से विभूषित किया था।

मैं बीमार होने के कारण राजलदेसर मर्यादा महोत्सव पर जा नही सका। श्रीमान् राणमलजी जीरावाला का तार आया कि मुनि श्री नथमलजी युवाचार्य घोषित किये गये हैं। हृदय प्रसन्नता से गद्‌गद हो गया। उस समय की हृदय विभोरता शब्दो मे नही बाधी जा सकती। मैंने इस शुभ समाचार को समाज के महानुभावो के पास भेजा और मेरे पास बहुत से लोग प्रसन्नता प्रकट करने के लिए आये। मैने हर्ष एव अह्लाद का लम्बा तार राजलदेसर देने के लिए लिखा, उसमे पूज्य गुरुदेव से सविनय अर्ज भी की कि युवाचार्य महाराज का नाम पलट देवे। तार लिख चुका था, लोगो ने देखा तो कहा कि तार बहुत लम्बा है और नाम पलटने की अर्ज करना श्रावको के लिए उचित नही। तब मैने केवल हर्ष एव प्रसन्नता का तार दिया। उसके कुछ समय बाद लाडनू से आए यात्रियो द्वारा मालूम हुआ कि युवा-चार्य जी महाराज का नाम पलट दिया गया है। अब से युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ के नाम से सम्बोधित होगे। मुझे इस बात की अत्यन्त खुशी हुई। खासकर कि पूज्य गुरुदेव ने दूर होते हुए भी मेरे हृदय के भाव जान लिये।

युवाचार्य श्री एक महान् ज्ञानवान् दार्शनिक सत है। गुरु ने क्या किया, शिष्य ने क्या किया, यह विचार मुनि श्री (वर्तमान युवाचार्य) के मन मे कभी नही आया। जो भेद रेखा थी आचार्य और शिष्य को, युवाचार्य होने के बाद वह भेद रेखा भी नही रही। दोनो अभेद रूप हो गये।

जब पूज्य गुरुदेव का ध्यान आगम कार्य की ओर गया तो युवाचार्य महाराज इस कार्य मे ऐसी निष्ठा के साथ जुडे कि थोडे समय मे कई आगमो के सम्पादन का श्रम-साध्य कार्य निष्पक्षता से किया और आगे भी कर रहे हैं। जब आचार्य श्री का ध्यान, ध्यान की ओर गया तो युवाचार्य श्री महाप्रज्ञजी ने सर्वप्रथम ध्यान के प्रयोग स्वय पर किए और जब उनमे निष्णात हुए तो जैन पद्धति का शास्त्रोचित्त "प्रेक्षा ध्यान" का विकास किया। जैन-जैनेतरो को उस ध्यान की ओर आर्कषित ही नही किया अपितु ध्यान की सही परिपाटी बतलाई। युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ एक कुशल सलाहकार है। वे समय-समय पर पूज्य गुरुदेव को आवश्यक सलाह देते रहते है।

युवाचार्य महाप्रज्ञ जैन दर्शन के महान् उद्‌भट विद्वान् है। जिस विषय पर उनकी कलम चल पडी उस विषय को उन्होने बडी कुशलता से पाठको के सामने रखा है। वे सस्कृत प्राकृत एव हिन्दी के महान् विद्वान् हैं। साथ-साथ अग्रेजी मे भी गति की है। आपने प्राकृत, सस्कृत एव हिन्दी मे अनेक पुस्तकें लिखी हैं जो साहित्यिक एव आध्यात्मिक जगत् के लिए एक अमूल्य देन है। युवाचार्य श्री की कई पुस्तको का अग्रेजी अनुवाद भी हो चुका है।

भगवान् महावीर एव गौतम गणधर के समान पूज्य आचार्य श्री तुलसी एव युवा-चार्य श्री महाप्रज्ञ की जोडी है। मैं आचार्य देव का एव युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ का हार्दिक अभिनन्दन करता हुआ यह कामना करता हू कि यह जोडी नित्य बनी रहे और सघ ही नही समस्त जन मानस को उत्तरोत्तर विकासोन्मुख बनाते रहे और ससार का पथ-प्रदर्शन करते रहें।

मुनिश्री नथमलजी की बहुमुखी योग्यता का समुचित बहुमान

रतिलाल भाई

जो व्यक्ति सत्य की खोज कर जीवन को सत्यमय, धर्ममय बनाने के लिए उतावला हो जाता है, जिसको यह रग चढ जाता है, उसको दुनिया के सभी राग-रग फीके लगते है और वह अपने आत्मभाव के रग को और अधिक गहरा बनाने के लिए वैराग्य की शरण मे जाता है। ऐसी स्थिति मे वह तप, त्याग, सयम और तितिक्षा को अपना जीवन-साथी बनाने के लिए नही हिचकता। जब ऐसा भाग्योदय जागृत हो जाता है, तब उसको ससार के दु ख न दु खरूप और न तीव्र ही लगते हैं। इसके विपरीत सासारिक सुखोपभोग और आनन्द उसे उपाधिरूप और विघ्नकारक प्रतीत होते है। ऐसी कष्टप्रद जीवन-साधना को आनन्दमय बनाने के लिए वह दिव्य रसायन का आलबन लेता है। वह रसायन है सत्य के विविध पक्षो के स्वरूप की सही जानकारी करने की उत्कट अभीप्सा। ऐसा साधक अपने मूलस्वरूप को, जगत् के स्वरूप को और परम तत्त्वरूप परमात्मा के स्वरूप को प्राप्त करने और जीवन को विमल बनाने के लिए उत्कट अभीप्सा को जागृत करता है।

तेरापथ धर्मसघ के मुनि नथमलजी (अब युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ) शील और प्रज्ञा अर्थात् ज्ञान और क्रिया के समान प्रकर्ष से सुशोभित है। वे सत्य की खोज द्वारा आत्मा की गवेषणा करने वाले एक श्रमण-सत हैं। उन्होने श्रमण-धर्म की अन्तर्मुख और आत्मलक्षी — मोक्षलक्षी अप्रमत्त साधना के द्वारा जो बहुमुखी योग्यता प्राप्त की है, उससे प्रेरित और प्रभावित होकर तेरापथ के नौवे आचार्य श्री तुलसी जी ने गत नवम्बर मास मे उनको 'महाप्रज्ञ' की उपाधि से सम्मानित किया। अभी-अभी (३-२-१९७९) आपने अपने उत्तराधिकारी के रूप मे मुनि श्री नथमलजी का मनोनयन कर उनकी योग्यता का सघ मे जो सन्मान-बहुमान किया है, वह एक सुयोग्य, ज्ञानी और गुणवान व्यक्ति के व्यक्तित्व के अनुरूप बहुमान के रूप मे स्मृति-पटल पर अकित रहने योग्य हैं। तेरापथ धर्मसघ तथा आचार्य श्री तुलसी से ऐसे विरल सम्मान को प्राप्त कर मुनि श्री नथमलजी अत्यधिक धन्यवाद और अभिनन्दन के पात्र बने हैं।

किसी व्यक्ति को कोई उपाधि या पद प्राप्त हो और उसके विषय मे कुछ लिखा

जाए—ऐसी प्रेरणा भाग्य से ही प्राप्त होती है। मुनि श्री नथमलजी की अपनी एक विशेषता है। वे प्रत्येक विचार को अपने मौलिक और स्वतत्र चिन्तन की कसौटी पर कसते हैं और नवनीत रूप उसके निष्कर्ष को स्वीकार करने के लिए तत्पर रहते हैं। उनमे यह गुणग्राहक-वृत्ति और सत्य को सौम्य सुन्दर रूप मे अभिव्यक्त करने की अद्‌भुत कला है। उनकी यह क्षमता सैकड़ों सहृदय गुणवान् व्यक्तियो द्वारा प्रशंसनीय है। मैं भी इसी से प्रेरित होकर कुछ लिखने के लिए तत्पर हुआ हू और यह उचित भी है।

जिस व्यक्ति को सत्य और गुणो का शोधक अर्थात् अनेकान्तवाद का जीवन्त उपासक बनना हो उसको सबसे पहले अपनी ज्ञान-साधना की सीमा को विशाल ही नही करना होता है, किन्तु पूर्वाग्रहो तथा सभी प्रकार के अन्य बधनो से सर्वथा मुक्त कर देना होता है। ऐसी ज्ञान-साधना के प्रकाश मे जो ज्ञेय (जानने योग्य), जो हेय (त्यागने योग्य) और जो उपादेय (स्वीकार करने योग्य) होता है, उसको जीवन मे उतारने के लिए तैयार रहना चाहिए। यदि ऐसा होता है, तभी 'ज्ञानक्रियाभ्या मोक्ष'- इस सूत्र की जीवन मे सार्थकता मानी जा सकती है। इसी विधि से मोक्ष प्राप्ति के साधन रूप समता की साधना हो सकती है।

मैंने तेरापंथ के युवाचार्य श्री नथमल जी द्वारा सपादित तथा स्वतत्र रूप से लिखित छोटे-बडे पचास से अधिक ग्रन्थो का सूक्ष्मदृष्टि से निरीक्षण किया है। कितना व्यापक और विशाल है आपका अध्ययन तथा कितना गहन और समभाव युक्त होता है आपका मनन-चिन्तन, यह ग्रन्थो के अवलोकन से ज्ञात हुए बिगर नहीं रहता। युवाचार्य श्री अपनी आत्म-साधना तथा जीवन-शोधन के लिए कितने अप्रमत्त जागृत रहते हैं, यह तथ्य भी आपकी साहित्य-साधना तथा सयम-वैराग्य की साधना से ज्ञात हो जाता है। यह कहना चाहिए कि जैन तत्त्वज्ञान और जैन आचार अर्थात् जैन दर्शन और जैन धर्म को अपने जीवन मे समान-रूप से प्रतिष्ठित कर आपने अपने श्रमण धर्म की साधना को चरितार्थ और उन्नत किया है।

सत्य की खोज और आत्म-खोज के लिए परोक्षज्ञान से आगे बढकर प्रत्यक्षज्ञान प्राप्त करने की आपकी अभिलाषा कितनी तीव्र है, इसका उल्लेख आपने 'महाप्रज्ञ' की उपाधि स्वीकारते समय अपने वक्तव्य मे किया था। आपने अपने भाषण मे कहा — मेरे मन का एक स्वप्न था, बहुत पुराना स्वप्न। मैंने आचार्यवर श्री तुलसी से बहुत पहले प्रार्थना की थी— मैं अभी सघ की सेवा मे सलग्न हू। मैं जब ४५ वर्ष का हो जाऊ तब मुझे सभी प्रकार की जिम्मेदारियो से मुक्त कर दिया जाए। मैं केवल प्रज्ञा की साधना करना चाहता हू तथा आत्म-साक्षात्कार के लिए समर्पित होना चाहता हू। हम सब केवल परोक्षज्ञानी बने रहे और यही रटन लगाते रहे कि शास्त्रो मे यह लिखा है, वह लिखा है, यह मै नही चाहता। किन्तु आज ऐसा ही हो रहा है। हम प्रत्यक्ष ज्ञान की उपेक्षा कर रहे है। अब हम स्वय जागृत हो और यह कहने की स्थिति उत्पन्न करें कि मैंने स्वय इस तथ्य का प्रत्यक्ष अनुभव किया है और मैं अपने अनुभव के आधार पर यह बात कह रहा हू। केवल परोक्ष की दुहाई न दी जाए, केवल शास्त्र की रटन ही न होती रहे, हम स्वय अनुभव करें और जिन-जिन साधको ने अनुभव किया है, उनके साथ साक्षात् सपर्क करें।"

इस वक्तव्य मे कहे अनुसार मुनि श्री सघ को सभालने के उत्तरदायित्व से तो मुक्त नहीं हो सके, किन्तु उनका कथन इस बात का साक्षी है कि वे कितने लम्बे समय से शास्त्र-

योग से आगे बढ़कर सामर्थ्ययोग को सिद्ध करने के लिए कितने उत्सुक थे। अन्तर्मुख या आत्माभिमुख व्यक्ति ही कीर्ति, नाम और कामनाओं से अलिप्त रहकर ऐसी उत्सुकता रख सकता है। मुझे यह भी प्रतीत होता है कि भले ही आपने अपनी सारी शक्ति या सारा समय इस प्रत्यक्षज्ञान को प्राप्त करने के लिए न लगाया हो, फिर भी आपने अतीन्द्रियज्ञान की दिशा मे उल्लेखनीय प्रगति की है।

युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ के ग्रन्थ तथा लेख आज अत्यन्त लोकप्रिय हो रहे हैं। इसका कारण है आपकी सुगम और सरस भाषा तथा मधुर और सरल शैली। इसके साथ-साथ आपकी निरूपण की विशदता भी अपने आप मे महत्त्वपूर्ण है। इन सब विशेषताओ से भी अति महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि आपके साहित्य मे प्रत्यक्ष अनुभव, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और स्वतत्र चिन्तन की प्रकाश-रेखाए पग-पग पर परिलक्षित होती हैं। ऐसे प्रकाशपुज साधक के ज्ञान और क्रिया से सबधित अथवा अन्यान्य विषय-संबधी प्राचीन और दुर्गम शास्त्रीय तथ्य भी जिज्ञासु व्यक्ति ऐसी सहजता से समझ सकता है कि वह उन तथ्यों के रहस्यो को सहज-रूप से आत्मसात् कर लेता है। जैन साहित्य की ऐसी उत्तम और आकर्षक पुस्तको का सर्जन करना मुनि श्री की अनोखी विशेषता है। इससे जैन श्रमण सघ और जैन साहित्य का गौरव बढा है, इसे स्वीकार कर लेना चाहिए।

मुनि नथमल जी ने दस वर्ष की छोटी अवस्था मे दीक्षा ली और अभी आपकी अवस्था है ५८ वर्ष की। आपको दीक्षित हुए लगभग ४८ वर्ष हो चुके हैं। आपने अपना यह पूरा समय समर्पण भाव से गुरु की सेवा और आज्ञापालन करने मे बिताया है और साथ-साथ ज्ञान-ध्यान पूर्वक सयम की आराधना भी करते रहे है। इसकी सबसे बडी निष्पत्ति यह हुई कि आप अपने से भिन्न या विरोधी विचार रखने वाले व्यक्ति को शान्ति पूर्वक सुन सकते है, समझ सकते हैं और अपनी बात दूसरो को समझाने का धैर्य पूर्वक प्रयत्न करते है। इससे आपकी सत्यनिष्ठा और समता की साधना की कीर्तिगाथा बनी रह सकती है।

पन्द्रह या कुछ अधिक वर्ष पूर्व एक जापानी विद्वान् भारत आए थे। वे आचार्य श्री तुलसी से मिले। जापान मे बौद्ध धर्म का प्रभुत्व है और उसकी साधना मे ध्यान का भी महत्त्व है। उसे 'झेन बुद्धिज्म' कहा जाता है। वे जापानी विद्वान् स्वय बौद्ध धर्मावलम्बी थे। उन्होंने आचार्य श्री तुलसी से पूछा—ध्यान-साधना भारत की बपौती है, फिर भी आज भारत मे उसकी उपेक्षा क्यो हो रही है? आचार्य श्री ने कहा—आपकी बात सत्य है। किन्तु अब हम इस ओर विशेष ध्यान दे रहे हैं। उसके बाद ही तेरापथ मे ध्यान-साधना की दिशा मे सजीव और निष्ठायुक्त प्रयत्न होने लगे। इन प्रयत्नो मे युवाचार्य श्री का देय बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इतना ही नही, स्वय आपने इस दिशा मे उल्लेखनीय प्रगति की है।

ऐसे सत्य, समता और सहिष्णुता के समर्थ उपासक मुनिवर अपने कधो पर आए हुए उत्तरदायित्व के नए भार का भलीभाति निर्वाह करते हुए अत्यधिक यशस्वी होगें, इसमे शका नही है।

*साप्ताहिक 'जैन' (गुजराती) से साभार

युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ : आचार्य तुलसी के दर्पण में

प्रस्तोता : मुनि किशनलाल

श्रद्धास्पद आचार्य प्रवर ! नमन है आपके कर्तृत्व को। समर्पित है सारा सघ आपके विलक्षण व्यक्तित्व पर। मेरे मानस मे कुछ प्रश्न उभर रहे है, जिसका समाधान आपके श्री-मुख से पाना चाहता हू।

प्रश्न—आपने अपने महान् उत्तरदायित्व की घोषणा आकस्मिक क्यो पसन्द की ? जबकि लाखो-लाखो लोग इस ऐतिहासिक क्षण के दर्शन के लिए लालायित थे।

उत्तर यह आचार्य का व्यक्तिगत मामला है। इसका सपूर्ण दायित्व आचार्य पर होता है कि वह इस महत्वपूर्ण कार्य को किस प्रकार सपन्न करे। यह उसके मन की बात होती है। हमारे पूर्वाचार्यों ने भी कभी इस कार्य को प्रच्छन्न रूप मे करना पसन्द किया, तो कभी पहले से सूचित कर दिया। कभी पहले सूचित किया, तो कभी ऐसा नही किया। मैंने सोचा कि इस कार्य को करना अवश्य है। किन्तु पहले सूचित कर देने से कार्य का उतना आकर्षण नही रह जाता है। आकस्मिक किया गया काम कई दृष्टियो से लाभप्रद होता है और उल्लास का वातावरण भी जितना आकस्मिक का होता है, उतना पहले से घोषित किए गए कार्य का शायद नही होता।

एक कठिनाई और है। इस कार्य के लिए पहले से घोषणा कर दी जाती, तो इतनी जनता उपस्थित हो जाती कि उसे व्यावहारिक दृष्टि से सभालना कठिन होता। मर्यादा-महोत्सव के अवसर पर वैसे ही बीस-पचीस हजार आदमी इकट्ठे हो जाते है और यदि इसकी पहले से घोषणा कर देता, तो लाखो लोग इकट्ठे हो सकते थे। यदि एक लाख आदमी अनायास उपस्थित हो जाए तो उन सबकी व्यवस्था कितनी कठिन हो सकती है, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। फिर यह शीतकाल का समय है। इस समय मे व्यवस्था और कठिन होती है। इन्ही सब दृष्टियो से मैंने आकस्मिक घोषणा करनेका निर्णय लिया।

प्रश्न—लाखो लोग इस ऐतिहासिक दृश्य को देखने मे वचित रह गए। वे लोग उपालंभ की भाषा मे निवेदन करते हैं कि आचार्यवर को हमे इस महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम से वचित नही करना था ?

उत्तर - मैंने इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए कितना महत्त्वपूर्ण अवसर ढूढा। यह उन लोगो को सोचना चाहिए, जो नही पहुच पाए। मर्यादा-महोत्सव का ऐसा अवसर है, जिस

पर जहा तक सभव हो सके, सभी को उपस्थित रहना चाहिए। जो उपस्थित नहीं हो सके, यह उनकी त्रुटि है। मैं इसमे क्या कर सकता हूं ? यदि मैं गुपचुप करता, तो कोई ऐसा कह सकता था। जबकि मैंने इस कार्य के लिए मर्यादा-महोत्सव का अवसर चुना। इस अवसर पर भी जो लोग अपनी नींद न उड़ाए, उनके लिए मैं क्या कर सकता हू ? जो लोग इस महत्त्वपूर्ण अवसर पर नही पहुचे हैं, वे जीवन भर महसूस करेंगे कि एक सुन्दर अवसर से वचित रह गए।

दूसरी बात यह है कि यदि मैं पहले से भी घोषणा कर देता, तो भी लाखो लोग वचित रह जाते। सभी लोग कैसे पहुच सकते थे ? जो आ गए सो आ गए, जो रह गए सो रह गए।

प्रश्न—युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ के निर्वाचन के लिए उनकी कौन-कौन सी विशेषताए आपको आकृष्ट कर सकी ?

उत्तर—उनकी अपनी अलग-अलग विशेषताएं हैं। मैं उन सबको कैसे बतला सकता हू ? मेरे साथ इनका सदा से ही अद्वैत रहा है। मैं नही समझता कि कौन-सी विशेषता का अकन करू और कौन-सी विशेषता को छोड़ू ? किन्तु कुछ बाते रख देना आवश्यक समझता हू।

पहली बात तो यह है कि उनका मेरे प्रति जो समर्पण भाव दीक्षा लेने के बाद हुआ और आज तक है, वह विलक्षण है। मैं स्वय इसे बहुत कठिन बात मानता हू। यह बहुत कठिन चीज है। बचपन मे समर्पण होना एक बात है, किन्तु बौद्धिक बनने के बाद, शिक्षित होने के बाद और बहुत बडी प्रतिष्ठा प्राप्त करने के बाद ऐसा समर्पण भाव कठिन होता है। युवाचार्य तो अब बने है। किन्तु उससे पहले भी समाज मे इनकी प्रतिष्ठा कम नही थी। अपने समाज मे ही नही, सारे समाजो मे भी इनकी प्रतिष्ठा थी। ऐसी स्थिति मे भी इनका समर्पण भाव सदैव एक समान रहा। इनके इस समर्पण भाव ने मुझे बहुत आकृष्ट किया।

दूसरी बात यह है कि जिन-जिन क्षेत्रो मे इन्होने ज्यो-ज्यो विकास किया, फूल के साथ काटा आता है, मेघ के साथ आधी आती है और प्रकाश के साथ कज्जल आता है, किन्तु विकास के साथ इनमे किसी भी प्रकार का अहकार नही देखा। यह कोई कम महत्त्व-पूर्ण विशेषता नही है। ये जितने निरहकारी बचपन मे थे, उतने ही विकास के समय रहे। मैं यह भी कह सकता हू कि ये जैसे-जैसे विकास करते गए, वैसे-वैसे और अधिक विनम्र बनते गए।

तीसरी सबसे बडी विशेषता है चरित्र की। इस पद के लिए, इस गरिमापूर्ण पद के लिए जिस सर्वाधिक विशेषता का अकन किया जाता है, वह है चरित्र-सपन्नता। मैंने इनमे अक्षुण्ण चरित्र-सपदा को पाया। शिक्षा, साहित्य, लेखन, वक्तृत्व आदि-आदि जितनी भी कलाएं हैं, जितने भी गुण हैं, वे सब साधु के लिए एक तरफ है, चरित्र-संपन्नता सबसे बडी चीज है। मैं इसे बहुत महत्त्व देता हू।

चौथी विशेषता यह है कि जब ये किसी गुरुतर दायित्व पर नही थे, तो भी सघ की

बहुत-सी गतिविधियो की आर्ल-गवेषणा करते रहते थे। सघ में किन चीजों का, किस प्रकार विकास होना चाहिए, इस पर ये बराबर चिन्तन करते रहते थे और अपनी भावना मेरे सामने रखते थे। इससे भी यह अंकन करने का अवसर मिला कि जो व्यक्ति पहले से ही संघ-विकास के लिए इतना चिंतन करता है, वह दायित्व देने के बाद, उस दिशा मे और अधिक प्रयत्न करेगा। इन सब विशेषताओं को देखकर मैंने इन्हें अपना दायित्व सौंपा। मै ऐसा सोचता हू कि मैंने यह निर्णय करके सघ का बहुत बडा हित किया है।

प्रश्न—लोग आपके इस निर्वाचन से बहुत प्रसन्न हैं। आपने जो पद प्रदान किया है, उससे भी अधिक लोग युवाचार्य श्री का मूल्याकन करते हैं। किन्तु अवस्था को लेकर लोगो के मन मे विचार आ सकता है। किसी युवक को अगर इस पद पर लाते, तो युवा-जगत धर्म की ओर आकर्षित होता। इस सम्बन्ध मे आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर—युवकत्व और वार्धक्य मात्र उम्र सोचना एकांगी बात है। साठ वर्ष की अवस्था मे एक ऐसा युवक हो सकता है, जो लाखो व्यक्तियो मे पचीस-तीस वर्ष की अवस्था मे भी नही हो सकते। युवकत्व का सबध अवस्था से उतना नही है, जितना कार्य से है, विचारो से है और क्षमता से है। मैं तो इन्हें इन सब चीजो की दृष्टि से वृद्ध नही मानता हू। इस अवस्था मे भी आज ये जितना युवा-पीढी को आकृष्ट कर रहे है, शायद हजारो युवक नही कर सकते हैं। जब मैं स्वय अपने को युवक मानता हू, तो मेरे से सात वर्ष ये छोटे हैं, बूढा कैसे मानू ? सभी दृष्टियो से मैं इन्हे किसी युवक से कम नही मानता हू।

प्रश्न—आपके प्रवचनो से लगा कि आपने बहुत थोडे समय मे ही यह निर्णय लिया और आकस्मिक रूप मे ही घोषणा की। इस सम्बन्ध मे आपके क्या विचार है ?

उत्तर—निर्णय करना एक बात है और क्या करना है, इसका चिन्तन करना दूसरी बात है। निर्णय मैंने बहुत पहले नही लिया, किन्तु मस्तिष्क मे चिन्तन तो मेरा था ही। मेरे सघ मे जितने साधु है, वे एक-एक मेरे से अज्ञात नही हैं, अपरिचित नही हैं। मै सबको भली-भाति जानता हू और तुलनात्मक दृष्टि से भी सबको देखता हू। निर्णय मैंने आकस्मिक रूप से घोषित किया, किन्तु मेरे चिन्तन मे, मेरे दिमाग मे बहुत पहले से था। मैंने अपने प्रवचन मे भी कहा था कि एकाधिक साधु मेरे सामने है। बल्कि मुझे कहना चाहिए कि साध्विया भी ऐसी हैं, अगर मैं उनको मेरा सपूर्ण दायित्व सौंप दू, तो बहुत अच्छे ढग से आचार्य-पद का दायित्व सभाल सकती है। यह हमारे धर्मसघ के लिए गौरव की बात है। फिर भी उन सबकी तुलना मे मैंने देखा तो सर्वाधिक योग्य इन्हे पाया। इसलिए मैंने इनका निर्वाचन किया।

प्रश्न—युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ के माध्यम से आप विश्व को किस ओर गतिशील देखना चाहते हैं ?

उत्तर—मैं विश्व से पहले आत्मा की बात करना चाहता हू। मैं युवाचार्य को समग्रतया आत्मस्थ देखना चाहता हू और ठियप्पा - स्थितप्रज्ञ के रूप मे देखना चाहता हू। इसके लिए इनको कुछ करना नही पडेगा। आज इनके भीतर से जो ऊर्जा निकल रही है, उससे हजार गुना अधिक निकलेगी और वह विश्व के लिए बहुत हितकारी बनेगी। अपने

आपको छोड़कर विश्व की बात करना बेकार है। सबसे पहले व्यक्ति को स्वयं आत्मस्थ बनना चाहिए और उसके बाद विश्व की बात करनी चाहिए। फिर भी जो एक तनावपूर्ण वातावरण है, एक बेचैनी और अशान्ति संसार में फैली हुई है, उसे मिटाने में भी इनके द्वारा बहुत बड़ा सहारा मिलेगा। इनके माध्यम से मुझे काम करने का अवसर मिलेगा और मेरे माध्यम से इन्हें काम करने का मौका मिलेगा। मैं चाहता हू कि विश्व मे एक ऐसा वातावरण बने, आज जो अध्यात्म थोड़ा धूमिल हो रहा है, वह अध्यात्म विकास मे आए और दूसरी बातें गौण हो जाए। यह बात मैं इनके माध्यम से कराना चाहता हू। प्रेक्षा का एक ऐसा सक्षम माध्यम मिल गया है, जिसके द्वारा भी ससार के प्रबुद्ध मानस को शान्त और उन्नत देखना चाहता हू।

प्रश्न—अपना उत्तरदायित्व सौंपने के बाद क्या आप ध्यान और योग की विशेष साधना मे लगना चाहेगे?

उत्तर—मैं ध्यान-योग की साधना से अपने को अब भी अलग नहीं मानता हू। वर्तमान मे भी मैं ध्यान और योग की साधना मे हू और अगर मुझे विशेष अवकाश मिलेगा, तो और भी अधिक लगाना चाहूगा। वर्तमान मे इनकी जो साधना चल रही है, मैं उसमें और अधिक गति देखना चाहता हू। मै अपने आपको अपने दायित्व से सलग्न रखकर इनको और अधिक अग्रसर करना चाहता हू। वर्तमान मे भी मै योग-साधना से उपेक्षित नही हू, किन्तु इस विषय मे इन्होने जो एक अच्छी प्रक्रिया अपनाई है, मैं अपने आपको गौण करके भी उस दिशा मे इन्हे और अधिक गतिशील देखना चाहता हू।

प्रश्न—युवाचार्य श्री की घोषणा का धर्मसघ ने जिस उल्लास से स्वागत किया है, उसका आपके मानस पर क्या प्रतिबिम्ब है?

उत्तर—हमारे धर्मसघ ने जिस हर्ष और उल्लास से स्वागत किया है, वह मेरे लिए कोई नई बात नही है। यह बात मेरे चिन्तन से परे की नही है। मैं ऐसा सोचता ही था, ऐसा समझता ही था। जैसे मैंने सोचा था, वैसा ही हुआ है। इतना जरूर है कि हर कार्य मे कुछ किन्तु-परन्तु रहती है। सौ मे से एक व्यक्ति मिल ही जाता है, जो अच्छे से अच्छे कार्य के बारे मे कह सकता है कि ऐसा होता तो और ठीक होता। किन्तु मेरी इस घोषणा को, इस निर्वाचन को लेकर मैंने किन्तु-परन्तु भी नही सुनी। यह हमारे धर्मसघ का सौभाग्य है। अपने धर्मसघ के प्रति लोगो मे जो अटूट निष्ठा है, उसे मैं बहुत बडी बात मानता हू। मेरी इस घोषणा से धर्मसघ की आयु बहुत बढ़ गई है और धर्मसघ की नीव पाताल मे चली गई है, ऐसा लगता है। मेरा धर्मसघ प्रसन्न है, इसलिए मे भी बहुत प्रसन्न हू।

प्रश्न—आप एकतन्त्र एव जनतन्त्र, इन दोनो प्रणालियो मे किसे राष्ट्र के हित मे मानते है?

उत्तर—एकतंत्र और जनतन्त्र की अपनी-अपनी अच्छाइया और बुराइयां होती हैं। किन्तु मेरा विश्वास आत्मतन्त्र मे है। हमारे यहा एकतंत्र एव जनतन्त्र नही, अध्यात्मतंत्र है। जब तक आत्मतंत्र का विकास नही होता है, तब तक एकतन्त्र एव जनतंत्र दोनो खतरनाक बन सकते हैं।

———

युवाचार्य महाप्रज्ञ से एक भेंट

प्रस्तोता—मुनि किशनलाल

प्रश्न—युवाचार्य पद के निर्वाचन के लिये आपको शतश बधाई। हम सब सौभाग्यशाली हैं कि आप जैसे युवाचार्य हमे आचार्यश्री द्वारा उपलब्ध हुए है। मर्यादा महोत्सव के दिन प्रवचन पण्डाल मे आचार्यश्री द्वारा प्रवचन मे यह कहने पर कि "मैं अपने उत्तराधिकारी की घोषणा करूगा।" आपके मन मे उस क्षण क्या प्रतिक्रिया हुई, घोषणा के पूर्व क्षण तक क्या आपको एहसास था कि मेरे नाम की घोषणा होगी?

उत्तर—आचार्यश्री ने जब यह घोषणा की उस समय सब सुन रहे थे, मै भी उनकी पक्ति मे शामिल था, मैं भी सुन रहा था और बडे कुतूहल के साथ सुन रहा था। मुझे पता कैसे चले? आचार्यश्री ने कभी मुझसे पूछा नही और न कभी मुझे बताया। कोई सकेत भी नही दिया, इ गित भी नही किया। अगर मुझसे बात करते, कोई परामर्श करते, मुझे थोडा-सा सकेत देते, तो मैं भी मेरी समस्याए सामने प्रस्तुत करता, किन्तु मेरे सामने कोई प्रश्न ही नही आया, तो जिस प्रकार आप सब लोग सुनने वाले थे उसी पक्ति मे मैं था, उससे अतिरिक्त कुछ नही।

प्रश्न – आप जैसे चिन्तनशील व्यक्ति के मन मे बहुत से प्रश्न हो सकते है। उस समय क्या प्रतिक्रिया हुई? हम तो श्रोता हो सकते है, आप तो चिन्तक और द्रष्टा हैं?

उत्तर—चिंतनशील होना और द्रष्टा होना एक बात है और तात्कालिक बात पर एक प्रतिक्रिया करना दूसरी बात है। आचार्यवर ने इतना अवसर ही नही दिया कि मैं लम्बे समय तक सोच सकू या प्रतिक्रिया कर सकू। घोषणा के कुछ क्षणो बाद मुझे उपस्थित ही कर दिया तो फिर सोचने का अवकाश ही कहाँ रहा? यह मैं मानता हू कि आचार्यवर का कोई निर्णय होगा, वह सब दृष्टियो से सतुलित, उचित होगा। इसमे मुझे कभी सदेह नही था, किंतु मैं अपने लिये सोचू, इसके लिये मुझे कोई जरूरत भी नही थी। उस क्षण इतना भावनापूर्ण वातावरण था कि चिंतन, भावना से दब गया। कोई भी व्यक्ति चिंतन की स्थिति मे नहीं था। आचार्यवर ने इस प्रकार एक भावनात्मक ढग मे सारे वातावरण को भावना से प्रभावित कर दिया कि सब लोग भावित हो गए थे। जब भावित हो जाते हैं, तब वहाँ

चिंतन के क्षण नहीं होते हैं। वहाँ प्रतिक्षण उत्सुकता होती है कि अगले क्षण क्या होता है।

प्रश्न— निर्वाचन की घोषणा के साथ ही आपके अंतरमानस में क्या प्रतिक्रिया हुई?

उत्तर—जब आचार्यवर ने मुझे इस पद के लिये उपस्थित किया, वह क्षण मेरे लिये बहुत विचित्र था और एक साथ इतनी बातें मस्तिष्क मे घूम गई कि उसका विश्लेषण करना भी मेरे लिये कठिन है। जिस दिन दीक्षित हुआ उस दिन से लेकर आज तक का समूचा जीवन चित्र पटल पर दृश्य की तरह आ गया। हमारा सम्बन्ध, तादात्म्य और आचार्यवर से मिली सारी प्रेरणाए, उसके परिणाम और भविष्य की कल्पना वृत्त के रूप मे एक साथ घूम गयी। उस एक क्षण का विश्लेषण करू तो उसके लिए हजारो क्षण मुझे चाहिये, किंतु अज्ञात रूप मे सारी बाते जैसे एक साथ चित्र-पटल पर उतर आयी। मुझे यही लगा कि अगर पहले अवकाश आचार्यवर मुझे देते तब तो मैं अपने मन की बातें भी और कठिनाइया भी सामने प्रस्तुत करता। गुरुदेव ने बिना अवकाश दिये सीधा निर्देश और आदेश ही दे दिया। मेरे जीवन का व्रत है कि जो आदेश आचार्यवर से मिल जाता है उसे शिरोधार्य करना। उसे स्वीकृत करने के सिवाय मेरे सामने कोई उपाय नही था।

प्रश्न—विशाल संघ का महान् उत्तरदायित्व आपश्री द्वारा किये गये एकान्त साधना के सकल्प मे बाधक नही बनेगा?

उत्तर—हमारा धर्म-सघ स्वय साधना का स्थल है। यह सघ किसी दूसरी प्रवृत्ति का होता, तो निश्चित ही यह बाधा मेरे सामने आती, किन्तु मैं जो साधना कर रहा हू वह समूचे धर्मसघ मे प्रतिबिम्बित होने की बात है। तब मै इसे बाधा कैसे मानू? यह धर्मसंघ साधना का और आराधना का है। जैन विश्वभारती, लाडनू मे पिछले वर्ष मैंने प्रयोग शुरू किया, तो आचार्यवर ने अपना सन्देश दिया। उसमे उन्होंने कहा कि "यह तुम्हारा प्रयोग केवल तुम्हारा नही है, यह मेरा प्रयोग है, समूचे सघ का प्रयोग है।" जब मेरे प्रयोग को आचार्यवर समूचे सघ का प्रयोग मानते हैं, तो उस स्थिति मे समूचे सघ की साधना के निमित्त मैं सेवा करू, तो उसमे कोई बाधा नही मानता, किन्तु मानता हू कि जो मैं कर रहा हू, उसका व्यापक प्रतिबिम्ब होगा। साधना को अधिक बल मिलेगा। मै स्वतत्र चिंतन कर रहा हू, फिर भी यह मानता हू कि साधना का विकास होना चाहिये। इसकी परम्परा भी होनी चाहिये, अकेला व्यक्ति कुछ करे अपने लिये तो बहुत मूल्यवान् है, किंतु वह समाज व्यापी बने यह और अधिक मूल्यवान् है। मैंने कभी केवली बनने की बात नही सोची, तीर्थंकर-चरणो का अनुसरण करने की बात सोची। केवली हर कोई व्यक्ति हो सकता है। केवली और तीर्थंकर मे यही अन्तर है कि केवली अपने लिये होता है। तीर्थंकर वह होता है, जो दूसरो का भी भला कर सके, कल्याण कर सके। केवली के पदचिह्नो का अनुसरण मैंने कम किया। तीर्थंकरो के पदचिह्नो पर चलने का जो मेरा प्रयोग था, अनुसरण की प्रवृत्ति थी, उसे देखते हुए मैं कह सकता हू कि इसमें मुझे कोई बाधा प्रतीत नहीं होती।

प्रश्न— आपके मानस में तेरापंथ धर्मसघ के विकास के लिए क्या परिकल्पना है ?

उत्तर—बचपन से ही मेरा एक चितन रहा कि जिस धर्मसघ मे हम हैं, वह धर्मसंघ शक्तिशाली बने । दुर्बल धर्मसघ मे रहना हमे पसंद नहीं है, मुझे बिलकुल पसद नहीं है । जो व्यक्ति स्वय शक्तिशाली होना चाहता है और सघ को शक्तिशाली देखना चाहता है, वह कभी दुर्बलता को पसद नही करता । तो सबसे पहले मेरे मन मे कल्पना थी कि हमारा धर्मसघ शक्तिशाली बने और शक्ति के जितने स्रोत हैं, वे सारे उद्घाटित हो । मैं मानता हू कि धर्मसघ मे शक्ति का सबसे बडा स्रोत है अध्यात्म-चेतना का जागरण । अध्यात्म-चेतना जागृत होती है, तो सघ बहुत शक्तिशाली बनता है । मै कुण्ड को या खड्डे को पसद नही करता, कुए को पसद करता हू । जिसमे पानी बाहर से डाला जाये । बहुत सीमित बात होती है । कुए मे स्रोत फूटता है, जिससे कुए का पानी असीम होता है । कुण्ड मे पानी डाला हुआ ससीम होता है, ये बात मुझे पसद नही । मुझे यह बात पसद है कि ऐसा स्रोत फूटे जिससे अनन्त जल निकलता ही चला जाए । मैं मानता हू कि अध्यात्म-चेतना का जागरण एक ऐसे कुए को खोदना है, जिसमे शक्ति का स्रोत फूट जाए और शक्ति का अनत प्रवाह उसमें निकलता रहे । मैं मेरे धर्मसघ को उस शक्ति से सम्पन्न देखना चाहता हू, जिसमे शक्ति का स्रोत फूट जाए । मुझे विश्वास है कि आचार्यवर के नेतृत्व मे ऐसा सभव हो सकेगा । मैं चाहता हू कि आचार्यवर हमे दीर्घकाल तक अपनी छत्रछाया दें और वे देखे कि उनका एक शिष्य अपने सघ को अतीन्द्रिय चेतना-जागरण के लक्ष्य तक पहुचाने मे निमित्त बना ।

प्रश्न— समाज, राष्ट्र और विश्व की समस्याओ के समाधान मे आपका धर्मसघ किस प्रकार उपयोगी बन सकता है ?

उत्तर—ससार की मूलभूत समस्या क्या है, जो सारी समस्याओ को जन्म दे रही है ? मुझे लगता है—अपने आपकी विस्मृति । व्यक्ति अपने आपको भूल रहा है और दूसरो को सुधारना चाहता है । दूसरो का भला करने से पूर्व व्यक्ति अपने जीवन का निर्माण करे । यदि व्यक्ति के जीवन का निर्माण होगा तो विश्व को सुधरने मे कोई समय नही लगेगा । ससार मे विचित्र चल रहा है कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे की चिंता से चिंतित है, किंतु अपनी चिता किसी को नही है । आध्यात्मिक चेतना के जागरण का सबसे पहला सूत्र होगा व्यक्ति चौबीस घण्टो मे कम से कम एक घण्टा अपने लिये निकाले, उसमे दूसरो की कोई चिन्ता न करे । वह अपने को देखे, सवारे, निर्मित करे । यदि ऐसा होता है तो हम विश्व की समस्या का समाधान देने मे मूल बात को पकड पायेंगे । जिसको पकडे बिना सुलझाई जाने वाली समस्याए उलझन बन जाती हैं ।

प्रश्न— साम्यवादी देश का नागरिक जैसे पोपपाल प्रतिष्ठित पद पर निर्वाचित हुए । उन्होने जिन नीतियो की घोषणा की उनका स्वागत हुआ । एकतन्त्रीय सघ-प्रणाली से आप भी निर्वाचित हुए है । आप दोनो को अलग-अलग धर्म-परम्परा का नेतृत्व मिला । आपकी और उनकी किन-किन प्रणालियो मे समानता की कल्पना की जा सकती है ?

उत्तर—ईसाई धर्म का क्षेत्र बहुत व्यापक है, बहुत बड़ा है और पोपपाल ने जो घोषणा की है वह वर्तमान युग के सन्दर्भ में बहुत महत्त्वपूर्ण है। कुछ परम्पराओ से हटकर और नयी चेतना, नये दृष्टिकोण को अपनाने की बात जो सामने आई है, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। मैं मानता हू कि सौभाग्य से मुझे वह कार्य पहले से ही उपलब्ध हो गया। मेरे आचार्य ने पहले से ही कुछ ऐसे उदार व्यापक और विशाल दृष्टिकोण अपनाये हैं, जिनसे मैं स्वयं बहुत लाभान्वित हुआ हू और हमारा संघ लाभान्वित हुआ है। आज ईसाई भी अध्यात्म-चेतना के प्रति आकृष्ट होता जा रहा है और उनके धर्म-गुरु स्वय पोपपाल ध्यान, साधना जैसे आध्यात्मिक प्रणालियो के प्रति अपनी रुचि प्रदर्शित करते हैं। सौभाग्य से हमारे संघ में भी आज सबसे ज्यादा किसी बात को महत्त्व दिया जा रहा है, तो अध्यात्म चेतना के जागरण को दिया जा रहा। उसके बिना मानवीय चेतना या सामाजिक चेतना या नैतिक चेतना विकसित नही हो सकती, कभी विकसित नही हो सकती।

यह एक साम्य का बिंदु है कि हम जिस कल्पना को लेकर चल रहे हैं और ईसाई जगत का मानस भी उस बिंदु की ओर आ रहा है। सभव हो सकता है कि कभी ऐसा हो कि उस अध्यात्म-चेतना जागरण के बिंदु पर हम दोनो एक हो जाए। कोई कठिनाई नही तो बहुत बडी सभावनाए हैं और इन सभावनाओ पर विचार होना भी जरूरी है। मैं सोचता हू आचार्यवर विचार करेंगे, मुझे भी कुछ मार्ग-दर्शन देंगे। मैं भी उस पर कुछ प्रयत्न करू या आज सारे ससार को यदि किसी एक बिदु पर लाया जा सकता है तो वह धर्म का बिंदु ही हो सकता है। इन भौतिकता के बिंदुओ ने यह प्रमाणित कर दिया कि इन आधारो पर चलने से ससार मे विघटन होता है, कभी एकता स्थापित नही होती। अगर एकता का कोई बिंदु होगा तो अध्यात्म का बिंदु होगा और आने वाला युग अध्यात्म का ही युग होगा। हमने जो मार्ग चुना है, जो नेतृत्व और मार्ग-दर्शन आचार्यवर का मिल रहा है, वह पहले से ही इतना कल्याणकारी और श्रेयस्कर है। उस बिंदु को और विकसित करने मे मै कुछ योगभूत बनू तो यह मेरे लिये बहुत शुभ होगा।

युवाचार्य की नियुक्ति पर आचार्य श्री तुलसी के प्रति

मुनि नथमल (बागोर)

अनुवादक—मुनि राजेन्द्र कुमार

आनन्दैकमयं सुमङ्गलमय कल्याणसम्पन्मयं,
हर्षोल्लासमय सुधारसमय स्वात्मैकसंविन्मयम् ।
यौवाचार्यपदस्य वार्तिकमिद सश्रुत्य मोदामहे
ह्येतत्प्रस्तुतसन्नियुक्तिकरणात् कीर्त्यौ न कै कर्मणी ॥१॥

ये ये राजलदेसरात सुनगरात् प्रत्यक्षतद्दर्शिन-
स्तैस्तैरागतसर्वमानवगणै रोमाञ्चितै सञ्चितै ।
तत्तस्य वरवर्णन हृदयतो यच्छ्रावित तच्छ्रु ते-
जाता सम्मदमेदुरा' खलु वय वाङ्गोचरागोचरा. ॥२॥

संसाराब्धितितीर्षु भाग्यवशत श्रीभिक्षुरासीन्महान्,
मर्यादापुरुषोत्तमेन समयात् तेनैव दीर्घेक्षणे ।
एकाचार्यसुयोजना विरचिता स्वोपज्ञगच्छे स्वयं,
लब्धैतत्सुविधा ततोऽत्रभवता पूर्णप्रतिष्ठावती ॥३॥

कल्पित कल्पनातीतं, कार्यमावश्यक तत ।
शमिताश्च स्वरा सर्वे, धन्यधन्येकनादत ॥४॥

दीर्घायुश्चिन्तकै स्मार्यं, सुधर्मागणभृत्प्रभो ।
दीर्घदृष्ट्या कृतात् कार्यादाचार्योऽतिप्रशस्यते ॥५॥

भारान्मुक्तोप्यमुक्तोऽथ,, सार्धं धर्मद्वयाश्रयात् ।
स्याद्वादप्रतिबोधाय, दृष्टान्तीभूय किं स्थित ? ॥६॥

श्रीमदाचार्यवर्याय, सुखपृच्छाभिवादनम्
विज्ञपयामि सानन्द, सुख विहरताच्चिरम् ॥७॥

शिष्य सोहनलालस्ते नगराजश्च सन्निधे
वन्देते प्रणमन्मौली, सुखपृच्छाभिपृच्छको ॥८॥

वर्द्धापनपरा पत्री, परमाह्लादपूरिता
प्रेष्यते श्रीमतां पार्श्वे नथमल्लर्षिणा शुभम् ॥९॥

१. युवाचार्य पद का निर्वाचन सुनकर हम मुनिजन बहुत प्रमुदित हुए। यह समाचार वस्तुत हमारे लिए आनन्दकारी, मङ्गलमय, कल्याणजन्य, हर्षोत्फुल्ल, अमृतरस से प्रपूरित और अपने आपके लिए आत्मतोष का विषय था। ऐसी सुन्दर नियुक्ति के लिए किन-किन व्यक्तियों ने आचार्य श्री तुलसी की सराहना नहीं की अर्थात् सबने की।

२ जिन-जिन व्यक्तियों ने प्रत्यक्षद्रष्टा बनकर राजलदेसर की पुण्यभूमि पर उस भव्य दृश्य को देखा उन सबका मन पुलकन से भरा हुआ था। जब उन्होने अपने ही मुख से वहाँ के हृदयद्रावक भव्यवृतान्त को सुनाया तब उसे सुनने पर हम मुनिजन इतने हर्षस्निग्ध हो गए कि उसे वाणी में व्यक्त करना असभव है।

३ ससार-समुद्र से तैरने के इच्छुक महापुरुष श्रीमद् भिक्षु स्वामी सौभाग्य से तेरापथ धर्मसघ के मान्य विधाता बने। उन स्वय मर्यादापुरुष ने ही समय के अनुकूल अपनी दूर-दर्शिता से अपने सघ मे एक आचार्य के होने का प्रावधान किया। आज उसी सुपरम्परा के कारण आचार्य श्री तुलसी ने पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित उस सुविधा का उपभोग किया जिससे वे युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ जी का निर्वाचन कर सके।

४ विरासत से सप्राप्त उस सुविधा के कारण ही आचार्यवर श्री तुलसी ने ऐसे कठिन कल्पनातीत आवश्यक कार्य को कर दिखाया जिस कार्य के होने पर धन्य-धन्य के जयनारो से शेष सब स्वर (ऊहापोह अटकलबाजियाँ) स्वत फीके पड गए। अशेष हो गए।

५ युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ जी बडी उम्र मे है—जो लोग ऐसा चिन्तन करते हैं उन्हे भगवान महावीर के गणधर सुधर्मा स्वामी का चिन्तन करना चाहिए, जो ८० वर्ष की आयु मे भगवान के उत्तराधिकारी बने। यह सत्य है कि दूरदृष्टि से किया हुआ कार्य आचार्य के लिए प्रशस्त होता है।

६ भारमुक्त होने पर भी आप भारयुक्त हैं-- इस युगल धर्म का आश्रय स्याद्वाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन है। उस सिद्धान्त के प्रतिबोध के लिए आप स्वय दृष्टान्त बन गए हैं।

७ मैं [मुनि नथमल बागोर] आचार्यवर के लिए कुशलक्षेमपूर्वक श्री चरणो मे अपना अभिवादन निवेदित करता हूँ। प्रभो! आप चिरकाल तक सानन्द और सुखपूर्वक विचरण करते रहे।

८ आपके सुशिष्य मुनि सोहनलाल और मुनि नगराज—दोनों ही सविधि मस्तक झुकाकर श्री चरणो मे वन्दना करते हैं और आप से सविनय कुशलक्षेम पूछते है।

९ मैं [मुनि नथमल बागोर] सम्यक् प्रकार से आचार्यवर के श्री चरणो मे परम आह्लादकारी यह बधाई पत्र भेज रहा हूँ।

———

नाव से नाविक

मुनि नथमल (बागोर)

अनुवादक—मुनि राजेन्द्रकुमार

सौभाग्यात् त्वच्चरणकमलन्यासतः पूर्वमेव,
प्रत्यक्षं मे पट्टुगढपुरं पावनीकृत्य बोधात् ।
बोधाद्वाऽस्मिन्नभिनवपदं येन लब्धं ललामं,
स्वान्ते स्तौमि स्तवननिचयैस्त्वं तुलाचार्यवर्यम् ॥१॥

सगुणमपगुणं वा प्रश्ननामापि लात्वा,
गुणयुतमभिधानं तेऽद्य नूनं द्वितीयं ।
समुचितमुचितं यत् त्वत्प्रभुत्वं प्रसिद्धं,
सकलजनसमक्षे वत्समार्यैस्तत किम् ? ॥२॥

हृष्टास्तुष्टा अभिनयपरा. स्निग्धमेघान्मयूरा-
श्चकवच्चन्द्रात् प्रकटपुलकाश्चारुचित्ताश्चकोरा ।
सर्वा गोत्रा हरितभरिता फुल्लिता वै वसन्तात्,
(प्रत्यूषार्काच्चपलचपलाश्चक्रवाका. प्रवाका)
त्वन्नेतृत्वा वयमिह तथा पुण्यपूर्णाः प्रसन्ना ॥३॥

पोतास्त्वीयाऽनुनयविनयं पोतवाह प्रजात,
आश्चर्यं तद्धिकचहृदये नैव भाति प्रविष्ठम् ।
वाञ्छाम्येव भवतु फलवत् पोतवाहत्वमेत-
ल्लोके श्लोकः प्रसरतुतरां सर्वतः सर्वथैव ॥४॥

सामर्थ्यं कीदृशं शस्तं तेरापथपथेशितु ।
क्षणेनैकेन यद्बिन्दो, सिन्धुर्निर्मितवानहो ! ॥५॥

चन्द्रश्चन्द्रिकया रवि स्वविभया वज्रेण वज्रेश्वर,
विश्वं शान्तिमयं यथा वितनुते ज्योतिर्मयं शासितम् ।
पूर्वोपार्जितपुण्यपुञ्जपणवै रत्नत्रयेणावृतं-
मर्हच्छ्रीमुनिभिक्षुशासनमयं कुर्वीत वीतस्पृह ॥६॥

स्तूयमान. सदा स्तोत्रैस्तु आचार्यो नवोदयः ।
वर्धनीयो द्वितीयेन्दुवत् सर्वैर्नित्यवर्द्धनः ॥७॥

वर्द्धापनपरा पत्री, परमाह्लादपूरिता
प्रेष्यते श्रीतुलाचार्ये, नथमलाभिधा शुभम् ॥८॥

१. मैं युवाचार्यवर्य श्री महाप्रज्ञ जी की अपने अन्त:करण से स्तवना करता हूं। सौभाग्य से जिन्होंने युवाचार्य बनने के पूर्व ही अपने पावन चरण कमलो द्वारा लाडनूं पधारते समय हमारे मध्यवर्ती नगर सुजानगढ को प्रत्यक्ष रूप से पावन किया। तत्पश्चात् जिन्होंने आचार्य श्री तुलसी के चरणो मे युवाचार्य जैसे अभिनव, ललित और गरिमामय पद को पा लिया।

२ पूज्यवर आचार्यवर ने मर्यादा महोत्सव पर जनसमूह के बीच सगुण अथवा निगुण 'नथमल' इस पुरातन नाम को बदल कर उनको गुणयुत 'महाप्रज्ञ' के नाम से सबोधित किया। पर नाम से क्या ? 'महाप्रज्ञ' नाम आज निश्चित ही विस्तृत होकर सम्यक् प्रकार से उदित हो गया है और अपनी प्रभुता के कारण प्रसिद्ध बन गया है।

३ जिस प्रकार काली घटा वाले बादलों को देखकर मयूर हर्षित और प्रफुल्लित होकर नाचने लग जाते हैं, चकोर पक्षी उद्गत होते हुए चद्रमा को देखकर आनन्दित हो जाते है और वसन्त ऋतु के आने पर सारी पृथ्वी हरी-भरी और लहलहाने लग जाती है, उसी प्रकार युवाचार्यश्री की नियुक्ति से हम मुनिजन अत्यन्त प्रसन्न और अपने आपको धन्य मानते हैं।

४ अपने अनुनय-विनय के द्वारा मुनि 'नथमल' नाव से नाविक बन गए—शिष्य से गुरु बन गए—यह बहुत बडा आश्चर्य हमारे हृदय मे नही समा रहा है। मैं उनके प्रति अपनी मगल कामना करता हू कि उनका नेतृत्व फलदायी बने और उनकी यशोगाथा सर्व प्रकार से सर्वत्र व्याप्त हो।

५ तेरापथ धर्मसघ के अधिशास्ता का कैसा प्रशस्त सामर्थ्य है कि जिन्होने एक क्षण मे बिन्दु को सिंधु बना दिया।

६ जिस प्रकार चद्रमा अपनी ज्योत्स्ना से विश्व को शीतलता देता है, सूर्य अपनी किरणो से विश्व को ज्योति देता है और इन्द्र अपने शस्त्र वज्र से विश्व को शासित करता है, उसी प्रकार कामनाओ से रहित युवाचार्य श्री 'महाप्रज्ञ' अनेक अर्हताओ से सम्पन्न, पूर्वाजित पुण्य समूह से प्राप्त इस भिक्षु शासन को रत्न-त्रय से वर्द्धापित करे—उसे ज्ञान, दर्शन और चारित्र के प्रशस्त मार्ग पर और आगे बढ़ायें।

७ नवोदित युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ जी स्तवना के द्वारा श्लाघ्य होते हुए सदा दर्शनीय दूज के चद्रमा की भाति नित्य विकास करते रहे।

८ मैं (मुनि नथमल बागोर) श्री युवाचार्य महाप्रज्ञ के प्रति आह्लाद से पूरित यह बधाई-पत्र भेज रहा हू।

स्थितप्रज्ञ : युवाचार्य

मुनि छत्रमल

१ विद्यानिधि ! प्रतिभाधनी !, आशुप्रज्ञ ! समयज्ञ !
आगमज्ञ ! स्थितप्रज्ञ ! जय, युवाचार्य महाप्रज्ञ ! ।।

२ श्रद्धास्पद ! श्री चरण में, सन्त 'छत्र' नगराज ।
मोहनमुनि युत वदना, करते हम अव्याज ।।

३ किया देव ने आप को, सकल सङ्घ सिर मौर ।
सुनकर शुभ सवाद यह, हैं हम हर्ष विभोर ।।

४ काश ! देखते दृश्य वह, हम भी रह कर पास ।
किन्तु गात्र बाधक बना, था न पूर्व आभास ।।

५ सह जाए, सह वद्धिए, बहुत रहे हैं साथ ।
देख समुन्नति फूलता, सीना नौ नौ हाथ ।।

६ योग्य देखकर आपको, समुचित समय नियुक्त ।
बहुत-बहुत गुरुदेव ने, किया काम उपयुक्त ।

७ आप सरीसे शिष्य से, थे गुरुवर आश्वस्त ।
किन्तु हो गया सघ भी, अब निश्चिन्त समस्त ।।

८ स्वीकृत करें बधाइयां, भूरि-भूरि शुभ वेष ।
हैं हमेश प्रस्तुत, मिले, जो आज्ञा निर्देश ।।

९ चिरजीवी गणपति रहें चिरजीवी हों आप ।
युगल हस्तियो का बढ़ें, दिन-दिन प्रबल प्रताप ।।

१० ह्री श्री-धी-धृति-कीर्त्ति से, वर्धमान हों आप ।
आधि-व्याधि-उपाधियां, सहसा हों सब साफ ।।

११ आशा ही नहीं अपितु है, दिल मे दृढ़ विश्वास ।
होगा सघ विकास हित, प्रतिपल सफल प्रयास ।।

१२. उदघाटित करते रहें, नये-नये उन्मेष ।
धर्म-सघ की जगत मे, शोभा बढे विशेष ।।

१३ शुभाशसाए ये सभी, करें 'छत्र' की वर्ज ।
आर्य्य प्रवर ! श्री चरण मे करें वन्दना अर्ज ।।

वे सारे संघ के शीर्षस्थ व्यक्ति बन गए

साहित्य परामर्शक मुनि बुद्धमल

आज हमारे लिए मर्यादा-महोत्सव अतिरिक्त* महोत्सव बन गया। यह कल्पना नही थी कि इस प्रकार आज यह एक नया कार्य होने वाला है। आचार्य श्री अपने कार्यों को अत्यन्त गुप्त रखते है और अचानक लाट्री खोल देते है। आचार्यवर ने आज अपने उत्तराधिकारी के रूप मे महाप्रज्ञ मुनि श्री नथमल जी का चुनाव करके सघ की एक बहुत बडी आवश्यकता की पूर्ति कर दी है। इससे आचार्य श्री ने जहाँ अपने दायित्व का निर्वाह किया है वहाँ सारे समाज को आनन्द से आप्लावित कर दिया है। आज की यह घटना हम सबकी एक चिरकालीन प्यास को शान्त करने वाली है। मुनि श्री नथमल जी आचार्य श्री के एक विद्वान एव दार्शनिक शिष्य है। उनकी कर्मठता से हर कोई परिचित है। ऐसे सुयोग्य युवाचार्य को पाकर हम सब अपने को गौरवान्वित अनुभव करते है।

आचार्य श्री नए-नए कार्य करने के लिए तो प्रसिद्ध रहे ही है, पर उनकी कार्य-पद्धति बहुधा चौका देने वाली भी होती है। अपने रहस्य को वे इतना गुप्त रखते है कि किसी को भनक नही पडने देते। आज का यह कार्य भी उन्होने उसी प्रकार से अचानक किया कि सभी को कल्पनातीत लगा।

इस चुनाव मे सभी को प्रसन्नता हुई है, पर मुझे अतिरिक्त प्रसन्नता हुई है। मुनि श्री बाल्यावस्था से ही मेरे सहपाठी एव अभिन्न साथी रहे है। हमारे समय मे अन्य भी अनेक बाल साधु थे। परन्तु हम दोनो मे बहुत अच्छी बनती थी। हम लोग आचार्य श्री (मुनि तुलसी) के पास साथ-साथ पढा करते थे। एक दूसरे को देखकर हम हसा बहुत करते थे, इसलिए पाठ याद करते समय हमे कमरे के दो कोनो मे भीत की ओर मुह करके बिठाया जाता था, फिर भी बालचापल्य के कारण हम एक दूसरे को देखा करते और हसा करते। हमारी मित्रता बहुत अच्छी और गहरी थी। बडे होने के पश्चात् भी यदा-कदा हम मजाक कर लिया करते थे। मुझे याद है एक बार किसी बात पर मैंने मुनि श्री से कहा था कि आप मुझे कहने के अधिकारी नही है। क्योकि मै आपसे अवस्था मे नौ दिन बडा हू। मुनि श्री ने तत्काल कहा—तुम तो नौ दिन ही बडे हो, पर मैं तुमसे दीक्षा मे नौ महीने बडा हू।

आज मैं देखता हूँ कि वे मेरे से और भी अधिक बडे हो गए है। वे सारे सघ के शीर्षस्थ व्यक्ति बन गए है। इतने दिन वे मेरे एक सहृदय साथी थे। अब आराध्य बन गए हैं। समय-समय पर हम मे मतभेद भी रहा है पर वह सब तो दो मित्रो की स्थिति थी। अब वे हमारे धर्मसघ के शिरोमणि बन गए हैं। मैं उन्हे इस गौरवास्पद पद की प्राप्ति के अवसर पर मेरी ओर से एव समग्र श्रमण समाज की ओर से बधाई देता हू और आशा करता हू कि वे सारे सघ की आशाओ और कल्पनाओ के अनुरूप अपने दायित्व को निभाए गे।"

जुड़ी कड़ी इतिहास की

—मुनि नवरत्नमल

जुडी कडी इतिहास की, नई एक फिर आज।
तुलसी प्रभु ने दे दिया, विधिवत् पद युवराज ॥१॥

भैक्षव-शासन की रही, स्वस्थ प्रणाली एक।
मर्यादोत्सव समय मे, ली आँखो से देख ॥२॥

वामो दिल सब सघ के, (वा) लगे उछलने बास।
देख नये इतिहास को, बढा अमित उल्लास ॥३॥

दिया 'महाश्रमणी' पदक, किया अधिक सम्मान।
बनता व्यक्ति महान् वह, जिधर तुम्हारा ध्यान ॥४॥

युग-युग तक आता रहे, मर्यादोत्सव पर्व।
नये-नये उन्मेष से, रहे मनाते सर्व ॥५॥

छह सौ चौरासी सभी, तुलसी युग के रत्न।
छह सौ चौरासी अभी, तुलसी युग मे रत्न ॥६॥

अपूर्व कलाकृति

मुनि दुलहराज

युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ !

- आपने ज्ञान को आत्मा से अनुबधित कर ज्ञान की आराधना की।
- आपने अपनी श्रद्धा को आत्मा मे केन्द्रित कर दर्शन की आराधना की।
- आप ने अपने समस्त कर्म को आत्मा की परिक्रमा मे प्रेरित कर चारित्र की आराधना की।
- आचार्य श्री तुलसी ने आपको प्रकाश से ही नही भरा, आपको प्रकाश बना दिया।
- आपने एक ऐसी परछाई का अनुसरण किया, जो परछाई आगे से आगे बढती गई। किन्तु एक विन्दु ऐसा आया कि आपने उस परछाई को पकड लिया।
- आज हम उस कलाकार की अर्चा-पूजा कर रहे है, जिसकी कलाकृति आज स्वय कलाकार बन गई है।
- आज हम उस कृति की अर्चा पूजा कर रहे है, जिसने अध्यात्म जगत् मे एक क्रान्ति का शखनाद किया है और अपने अमूल्य अनुभवो से जनत्रास को मिटाने का अनुपम प्रयास किया है।
- तेरापथ-सङ्घ के सभी श्रमण आज आपको पाकर धन-धन्य है, कृतकृत्य है।
- हम सब अप ने अन्तस्तल से आप के प्रति श्रद्धा-नत है और यह प्रतिज्ञा करते है कि हम आपके आदेशो का उसी रूप मे पालन करते रहेगे जैसे हम करते रहे है।
- आपके पावन चरण सफलता की ओर निरतर बढते रहे। हम सब आपके साथ है।

———

नया दायित्व, नये दायरे : युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ

साध्वी कनकश्री

जैन आगमो के पारगामी मनीषी, भारतीय विद्याओ के मर्मज्ञ विद्वान्, महान् दार्शनिक, अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय सेतु, युग प्रधान आचार्य श्री तुलसी के एक विशिष्ट अन्तेवासी जो महाप्रज्ञ मुनि श्री नथमल के नाम से सुविश्रुत है, वे अब तेरापथ धर्म-सघ के युवाचार्य बन गए है। अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी ने अपना उत्तराधिकार प्रदान करते हुए उनका नाम भी परिवर्तित कर दिया। फलत अब महाप्रज्ञ मुनि श्री नथमल 'युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ" के नाम से सम्बोधित होगे।

युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ का व्यक्तित्व हस-मनीषा, सूक्ष्मग्राही मेधा, सृजनात्मक प्रतिभा और ऋतमरा प्रज्ञा की अद्वितीय समन्विति है।

उन्हे चिन्तन की ऊचाई और ज्ञान की गहराई सहज प्राप्त है। विनम्रता, सहजता और समर्पण उनके परिपूर्ण एव अखण्ड व्यक्तित्व के प्रमुख घटक तत्त्व रहे है।

युवाचार्य श्री को पुरुष-सुलभ पराक्रम सहज उपलब्ध है। पुरुषार्थ की लौ अनवरत प्रखरता से प्रज्वलित रहती है उनके अतस् मे। फिर भी वे अपने कृतित्व के अह से सदा अस्पृष्ट रहे है। वे नारी नही है, पर नारीत्व के घटक तत्त्व श्रद्धा, समर्पण और मृदुता उन्हे उपलब्ध है। युवाचार्य श्री के शब्दो मे—

"मै अर्द्धनारीश्वर की स्थिति मे हूँ। मुझे नारी-सुलभ मृदुता और पुरुष-सुलभ पराक्रम—ये दोनो उपलब्ध हैं। इनका समन्वय मुझे कठोरता और अहकार इन दोनो से बचा रहा है। यह मेरे लिये सतोष का विषय है।"

वैसे किसी भी व्यक्ति की महत्ता को जान पहचान पाना सरल कार्य नही है, फिर भी युवाचार्य श्री के निकट सम्पर्क, प्रवचन-श्रवण तथा उनकी साहित्यिक कृतियो के अध्ययन-अनुशीलन से ऐसा ज्ञात होता है, कि वे वर्तमान युग-सध्या के जाज्वल्यमान नक्षत्र है, भारतीय अध्यात्म परम्परा के आर और पार को उद्भासित करने वाले निष्प्रकम्प दीप है और मनुष्य के अतस् मे छिपी लक्ष-लक्ष जीवनी शक्तियो को उद्घाटित करने वाले ऊर्जा-पुञ्ज है।

जीवन और जगत् के अज्ञात रहस्यो के उद्घाटन मे अहर्निश निरत उनकी सृजनात्मक प्रतिभा आज के बौद्धिक युग का एक महान् आश्चर्य है। उनके अगाध ज्ञान सागर का

न कहीं ओर है न छोर। इसीलिये अनेक विद्वान् उन्हे चलता-फिरता विश्वकोश (Ency-clopaedia) कह देते हैं। राष्ट्रकवि **रामधारीसिंह दिनकर** ने तो उन्हें भारत का दूसरा '**विवेकानन्द**' कहा था।

भारतीय और पश्चिमी दर्शनो की मीमासा करते हुए अब वे किसी भी दार्शनिक, तात्त्विक या सैद्धान्तिक पहलू को विश्लेषित करते है, तब ऐसा लगता है मानो सम्पूर्ण वाङ्-मय उनके सामने बिछा पडा है।

उनकी सन्निधि मे आकर जहाँ देश-विदेश के शीर्षस्थ विद्वान् धन्यता का अनुभ करते हैं, शोध-विद्यार्थी नया मार्गदर्शन प्राप्त करते है, वहाँ शोध विद्वान् भी उनसे नई अन्वेषणात्मक दृष्टि प्राप्त कर अपनी अनुसन्धानात्मक प्रवृत्तियो मे नये उन्मेष लाते हैं।

वे महान् दार्शनिक, आशुकवि, ओजस्वी वक्ता और सशक्त लेखक है। चिन्तन की मौलिकता उनके साहित्य की अपनी विशेषता है। **"जैन दर्शन मनन और मीमांसा"** **"जैन न्याय का विकास"** **"अहिंसा तत्व दर्शन"** **"भिक्षु विचार दर्शन"** आदि उनकी महत्त्व-पूर्ण कृतियाँ जैन दर्शन के प्रतिनिधि ग्रन्थो के रूप मे विद्वत् जगत् मे समादरणीय स्थान प्राप्त कर चुकी है।

युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी के वाचना प्रमुखत्व मे युवाचार्य श्री द्वारा सम्पादित आगम ग्रन्थो ने भारतीय और पश्चिमी विद्वानो की दृष्टि मे अतिरिक्त मूल्यवत्ता और प्रतिष्ठा प्राप्त की है।

वे वैज्ञानिक नही है, पर वैज्ञानिक दृष्टि उन्हे उपलब्ध है। इसीलिए बनी बनायी राहो पर चलना, सहारो पर जीना और दूसरो के प्रकाश से अपने पथ को आलोकित करना उन्हे कभी नही भाया। उनका जीवन सूत्र है—"**अप्पणा सच्चमेसेज्जा**" स्वय सत्य की खोज करो। सत्य की खोज के लिए ही वे अनवरत अध्यात्म-साधना के प्रयोगो की राहो से गुज-रते रहे है और चेतना की ऊचाइयो को छूते रहे है।

वे जागृत चेतना के उपासक है। अन्त जागरण से फलित होने वाली शान्ति और समाधि के समर्थक है। इसीलिये वे जीवन मे मूर्च्छा ओर जडता लाने वाले प्रयोगो से निष्पन्न शान्ति और समाधि को कभी मान्यता नही देते। साधना के नाम पर असयम को बढावा देने वाली तथा मुक्त भोग को मान्यता प्रदान करने वाली विचारधारा के प्रति अपनी नितान्त असहमति प्रकट करते है।

विगत एक दशक से वे ध्यान-योग की विशिष्ट साधना एव प्रयोगो मे सलग्न है। ध्यानयोग को व्यापकता प्रदान करते हेतु, आचार्य श्री के नेतृत्व मे प्रेक्षा-ध्यान शिविरो का सचालन कर रहे है। इन शिविरो के माध्यम से हजारो युवा-प्रतिभाए धर्म और अध्यात्म की ओर आकर्षित हो रही है।

उन्होने अध्यात्म को जीवन-दर्शन के रूप मे प्रस्तुत किया है, जिसके आलोक मे विश्व-चेतना युगीन समस्याओ का समुचित समाधान प्राप्त कर सकती है।

युवाचार्यवर द्वारा लिखित **"मैं, मेरा मन, मेरी शान्ति" "मन के जीते जीत" "चेतना का ऊर्ध्वारोहण" "महावीर की साधना का रहस्य"** आदि योग सम्बन्धी ग्रन्थ अत्यन्त लोकप्रियता प्राप्त कर चुके है।

युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ वि० स० १९७७ मे राजस्थान के एक छोटे-से कस्बे 'टमकोर' मे जन्मे, दस वर्ष की वय मे तेरापन्थ के अष्टामाचार्य श्री कालूगणी के करकमलो से दीक्षित हुए और उन्हे शिक्षा-गुरु के रूप मे मिले कुशल जीवन-शिल्पी आचार्यश्री तुलसी।

हीरे की मूल्यवत्ता उसकी काट-छांट और तराश पर निर्भर करती है। सही ढग से तराशे हुए हीरे के भीतर से उठने वाली चमक के परावर्तन से उसकी चमक शतगुणित-सहस्रगुणित हो जाती है और उसी के आधार पर उसका मूल्य-निर्धारण होता है। युवाचार्य श्री जिस दिन आचार्य श्री तुलसी की सन्निधि मे आये थे, वे सचमुच एक बिना तराशे हुए हीरे थे। आज उनके व्यक्तित्व और कर्तृत्व की प्रत्येक चमकपूर्ण रश्मि मे महान् सृजनधर्मी आचार्य तुलसी की अद्वितीय सृजनक्षमता परिलक्षित होती है।

युवाचार्य श्री प्रारम्भ से ही आचार्य श्री तुलसी के विचारो के प्रशस्त भाष्यकार, उनके अनन्य सहयोगी तथा तेरापथ की प्रगति के हर चरण से सपृक्त रहे है।

उन्होने चार वर्ष तक निकाय-सचिव के रूप मे सघ को अपनी विनम्र सेवाए प्रदान की।

वि० स० २०३५ गगाशहर चातुर्मास मे आचार्य श्री तुलसी ने उन्हे 'महाप्रज्ञ' विशेषण से अलकृत किया और मर्यादा महोत्सव के ऐतिहासिक अवसर पर उन्हे युवाचार्य पद से विभूषित कर अपना 'उत्तराधिकारी' घोषित किया। आचार्य श्री के इस सामयिक निर्णय मे सन्निहित है अतीत का गौरव, वर्तमान का समाधान और भविष्य की उज्ज्वल सभावनाए।

महाप्रज्ञ श्री को युवाचार्य के रूप मे प्राप्त कर केवल जैन समाज ही नही अपितु समग्र अध्यात्म-जगत् गौरवान्वित हुआ है तथा आचार्य श्री तुलसी जैसे महान आचार्य के महान् उत्तराधिकार को प्राप्त कर स्वय युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ भी धन्यता का अनुभव कर रहे है।

महाप्रज्ञ श्री का नया दायित्व समग्र विश्व के लिए, अध्यात्म के नये दायरे और नये आयाम उद्घाटित करे तथा महान् अध्यात्म प्रचेता आचार्य श्री तुलसी और युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ की समन्वित शक्ति अध्यात्म की धारा मे त्राण खोजने वाली सम्पूर्ण मनुष्य जाति का युग-युग तक पथ-दर्शन करती रहे, यही मगल-कामना है।

——

युवाचार्य की जय हो*

मुनि श्री रवीन्द्रकुमार जी

(लय—संयममय जीवन हो)

युवाचार्य की जय हो, महाप्रज्ञ की जय हो।
ज्योतिर्मय भैक्षव-शासन की जय हो, सदा विजय हो ॥ युवा० ॥

युगप्रधान अणुव्रत अनुशास्ता के हम सब आभारी।
पाकर इनसे विश्व प्रेरणा अविरल बने अभय हो ॥१॥

महाप्रज्ञ के अथ से इति तक तुम जीवन-निर्माता।
हुए धन्य य पाकर तुमको तुम ही भाग्य-विधाता ॥
युवाचार्य तसवीर तुम्हारी जग मे ध्रुव उपनय हो ॥२॥

महा दार्शनिक लेखक वक्ता उच्चकोटि के ज्ञानी।
गुरु चरणो मे पूर्ण समर्पित आगम-अनुसधानी ॥
विश्व भारती तुम से उपचित, अक्षय सौरभमय हो ॥३॥

वाराणसी की हम महिलाएँ मगल-गीत सुनाएँ।
युगो युगो तक युवाचार्य से सतत प्रेरणा पाएँ।
गुरु इगित पर बढते जाएँ जीवन सयममय हो ॥४॥

---

*युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ के अभिनन्दन मे वारणसी महिला मडल द्वारा समुच्चरित गीतिका।

अध्यात्म के प्रेरणा-स्रोत : युवाचार्य महाप्रज्ञ

मुनि श्री विमलकुमार

विक्रम सवत् २०२२ का मर्यादा महोत्सव हिसार मे था। गुरुदेव ने मुझे बहिर्विहरण के लिए मुनि श्री शुभकरण जी के साथ मध्यप्रदेश तथा उडीसा की ओर भेजा। उसके पूर्व मैं दीक्षा के कुछ महिनो के बाद से युवाचार्य महाप्रज्ञ (मुनि श्री नथमल जी) के पास मे रह रहा था। युवाचार्य श्री की वात्सल्यमयी प्रेरणा मेरे जीवन-निर्माण मे सहायक बनी। मेरी आन्तरिक इच्छा न होते हुए भी गुरुदेव ने मुझे बहिर्बिहार का आदेश दिया। उस समय मेरा मन खिन्न हो रहा था। विदा होते समय युवाचार्य श्री ने मुझे एक पत्र लिखकर दिया जो युवाचार्य श्री के अभ्यन्तर व्यक्तित्व का परिचायक है। पत्र इस प्रकार है—

२०२२ फाल्गुन शुक्ला १०

मुनि विमलकुमार,

जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण आध्यात्मिक होना चाहिए। आध्यात्मिकता का अर्थ है अपनी तुला से अपने आप को तोलना, अपने मान-दण्ड से अपन आपको मापना। *अध्यात्म के मूल सूत्र है—*

१—अपने आप मे सतत प्रसन्न रहना। शक्ति, आनन्द और प्रकाश का विशिष्ट अनुभव करना।

२—सेवा और समर्पण—सबके प्रति आत्मीयता की अनुभूति।

३—सुख-दु ख के प्रति समभाव का अभ्यास।

४—सहिष्णुता का अभ्यास।

५—अप्रियता को अपने आनद मे विलीन करना।

६—विनय।

७—शान्त सहवास।

तुम मेरे पास रहे हो, मेरे निकट सहवास मे रहे हो, इसलिए मै चाहता हू कि तुम अधिक से अधिक आध्यात्मिक बने रहोगे। इस दिशा मे अधिकाधिक विकास करोगे।

निकाय सचिव मुनि नथमल[1]

यथार्थत ऐसे वाक्य वही व्यक्ति लिख सकता है, जिसका जीवन अध्यात्म से ओत प्रोत हो। आध्यात्मिक व्यक्ति हर स्थिति मे अपने आप मे प्रसन्न रहता है। आध्यात्मिकता ही प्रगति का मूल है। उसके अभाव मे बाह्य प्रगति अधिक टिक नही सकती। युवाचार्य श्री के विकास की पृष्ठभूमि आध्यात्मिकता ही है। आप जैसे आध्यात्मिक, दार्शनिक, साहित्यकार, वक्ता, लेखक, युवाचार्य को प्राप्त कर हमारा सारा धर्म-सघ प्रमुदित है। मुझे पूर्ण विश्वास है आपके शासनकाल मे हमारा धर्म-सघ आध्यात्मिक तथा शैक्षणिक दिशा मे और अधिक विकास करेगा।

---

१ हिसार मर्यादा महोत्सव पर आचार्य श्री ने मुनि श्री को 'निकाय सचिव' उपाधि से अलकृत किया था।

हे योगिराज ! शत-शत प्रणाम

—लूनकरण 'विद्यार्थी'

हे महाप्रज्ञ ! हे ज्योति पुज ! हे योगिराज ! शत-शत प्रणाम।
तेरे चिन्तन से हुआ विश्व, यह आत्मज्ञान से सफल काम॥

(१)

आचार्य भिक्षु का शासन यह, आचार्यों की सुन्दर माला
जो करती रहती अन्ध जगत मे, ज्योतिकिरण का उजियाला।
हे युवाचार्य तुझको पाकर, खिल गये धर्म के पुण्य धाम,
हे महाप्रज्ञ ! हे ज्योतिपुज ! हे योगिराज ! शत-शत प्रणाम॥

(२)

प्रेक्षा के शिविर सुखद लगते, जन-जन अनुप्राणित होता है,
"अर्हम्" "अर्हम्" ध्वनि गूज रही, अज्ञान तिमिर को खोता है।
तुलसी वाणी के व्याख्याता, तेरा हो जग मे अमर नाम,
हे महाप्रज्ञ ! हे ज्योतिपुज ! हे योगिराज ! शत-शत प्रणाम॥

(३)

गम्भीर तुम्हारी वाणी है, अनुभव का निर्झर बहता है,
जड चेतन जग के सूक्ष्म भेद की ज्ञान कथाये कहता है।
जिसने अमृत रसपान किया, उसको न सताता कुटिल काम,
हे महाप्रज्ञ ! हे ज्योतिपुज ! हे योगिराज ! शत-शत प्रणाम॥

(४)

नवयुग प्रवाहिनी के वाहक, ले भव्य पुरातन विशद ज्ञान,
भारत वसुन्धरा के तट पर लाते मुनिवर स्वर्णिम विहान।
ओ युग प्रधान के अनुगामी ! निज ध्यान मग्न दिग्पालयाम,
हे महाप्रज्ञ ! हे ज्योतिपुज ! हे योगिराज ! शत-शत प्रणाम॥

(५)

सुनकर गुरुवर की सुखद घोषणा, जन मानस अति हर्षाया,
शासन का सविता चमकेगा, विश्वास हृदय मे सरसाया।
अनवरत रहेगा चिर प्रकाश होगी न धर्म की कभी शाम,
हे महाप्रज्ञ ! हे ज्योतिपुज ! हे योगिराज ! शत-शत प्रणाम॥

(६)

अनुपम भावो से भरे हृदय से, श्रद्धा सुमन चढाते है,
हे पथदर्शक ! तेरे चरणो मे, अपना शीश झुकाते हैं।
तुम तपो धरा पर प्रखर किरण, तुलसी रवि तेरा पथ ललाम,
हे महाप्रज्ञ ! हे ज्योतिपुज ! हे योगिराज ! शत-शत प्रणाम।
तेरे चिन्तन से हुआ विश्व यह, आत्म ज्ञान से सफल काम॥

आज करें किसका अभिनन्दन ?

—साध्वी मोहनकुमारी (श्री डूगरगढ़)

आज करे किसका अभिनन्दन ?
एक ओर वह कलाकार है
जिसने कृति का रूप सवारा
अपने श्रम से अपने क्रम से
जिसका अन्तर्बाह्य निखारा
अग-जग करता उसको वन्दन
आज करे किसका अभिनन्दन ?
करुणा की महनीय मूर्ति—सी
अनुपमेय कृति अपर ओर है
जिसे देखकर अमरो के भी
अन्तस् मे उठती हिलोर है
झुक—झुक कर करते अभिवन्दन
आज करे किसका अभिनन्दन ?
अमर रहे आचार्य हमारे
युवाचार्य नयनो के तारे
बढ़े साधना के पथ पर हम
पाकर शुभ सकेत तुम्हारे
रहे प्रफुल्लित गण-वन-नन्दन
आज करें किसका अभिनन्दन ?

एक उपलब्धि

साध्वी आनन्दश्री

युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ के अपनी जन्म भूमि मे दो दिवसीय स्वल्प प्रवास मे मैंने युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ को सूक्ष्मता से देखा। युवाचार्य के रूप मे जन्म भूमि मे आपका पदार्पण प्रथम था, उस समय सात साध्वियो के साथ मैं भी थी। इस निकटता मे उनके विराट व्यक्तित्व, गहराई, सौहार्द एव आत्मीयता की प्रवाहित सरिता को देखकर मैं मन ही मन श्रद्धावनत थी। उनकी अनाग्रह वृत्ति ने मेरे नर्वस मन की कई उलझी ग्रन्थियो को सुलझा दिया। साधना, सस्कृति और साहित्यमयी त्रिवेणी के उद्गम आपके बारे मे क्या लिखा जाये, यह प्रश्न चिह्न मेरे सम्मुख है। समाधान हेतु इतना ही कह सकती हूँ

तुम एक गुल हो,
तुम्हारे जलवे हजार हैं।
तुम एक साज हो,
तुम्हारे नगमे हजार हैं।

जन्म-भूमि के प्रागण मे आपका वह प्रवचन हृदय को भाव विभोर बनाने वाला ही नही वरन् दर्शन व विज्ञान के साथ अध्यात्म की सरस व्याख्या भी मन को तरोताजा बनाने वाली थी। प्रवचन के अन्तर्गत आपने फरमाया—"कई लोगो ने मेरे से कहा—आप अमुक व्यक्ति को साधु-सन्तो के दर्शन का नियम दिलाये। मैने उनसे कहा—मैं उन्हें स्वदर्शन के बारे मे उपदेश व बल दे सकता हू। मेरा विश्वास है कि ऐसा प्रयोग करने वाले संत दर्शन किये बिना रह नहीं पायेंगे। मेरे दृष्टिकोण से प्रेक्षा-ध्यान एक मनोवैज्ञानिक पद्धति है। जिसके द्वारा समाज मे विकास के अनेक आयाम खोले जा सकते हैं।"

युवाचार्य महाप्रज्ञ के प्रति

—कन्हैयालाल फूलफगर

मौन हो गये ग्रन्थ जहा पर,
तुमने दी फिर वाणी।
गुजेगी वह दिग् दिगन्त मे,
बन कर के कल्याणी।
श्रद्धा और समर्पण कोई,
सीखे पास तुम्हारे।
कोटि-कोटि वन्दन अभिनन्दन,
ओ जग के उजियारे॥

युवाचार्य महाप्रज्ञ की नियुक्ति : एक अभिनव इतिहास-प्रसंग

सोहनराज कोठारी

तेरापथ धर्मसघ के ११५वे मर्यादा महोत्सव पर सवत् २०३५ के माघ शुक्ला सप्तमी के दिन सघ अधिशास्ता परम आराध्य युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी ने महाप्रज्ञ युवाचार्य को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर एक अभिनव इतिहास का सृजन किया है। स्वय आचार्यश्री ने इस नियुक्ति को अपने जीवन का सबसे बडा निर्णय कहा है व इसे समूचे सघ का निर्णय बताया है। आचार्यश्री ने अपने आशीर्वचन मे यह भी व्यक्त किया है कि यह धर्मसघ के लिये अकल्पित काम हुआ है, पर इस कार्य से सारे सघ की शोभा बढेगी व सघ का आशा से अधिक बहुमुखी विकास होगा। इस देश मे सभी धर्मसघो मे यही परम्परा रही है कि सघ का आचार्य ही अपने उत्तराधिकारी का मनोनयन करता है व उसे सारा सघ स्वीकार कर लेता है। तेरापथ धर्मसघ के जन्म-दाता श्रीमद् भिक्षु स्वामी ने तो सघीय विधान के प्रथम मर्यादा पत्र (सवत् १८३२ मीगसर बदी ७) मे यह स्पष्ट प्रावधान किया कि 'वर्तमान आचार्य की इच्छा हो तब वह अपने गुरुभाई अथवा शिष्य को अपना उत्तराधिकारी चुन ले, उसे सभी साधु-साध्वी-गण आचार्य मान ले व एक आचार्य की आज्ञा मे सब रहे।' इस मर्यादा का तेरापथ के आत्मार्थी साधु-साध्वियो ने बहुत ही आन्तरिकता से पालन किया है।

इस धर्मसघ के इतिहास मे इस बार युवाचार्य की नियुक्ति का प्रसग करीब आधी शताब्दी बाद आया, पर इस प्रसग पर सारे सघ ने आशातीत हर्ष और उल्लास के साथ आचार्यश्री द्वारा की गई नियुक्ति का स्वागत किया। परिणामत आचार्यश्री एव युवाचार्यश्री को भी अपूर्व आनद और आह्लाद की अनुभूति हो रही है। धर्मसघ की प्रभावना बढ़ाना आचार्य का सर्वोपरि कर्तव्य है और उस हेतु वे विविध आदेश-निर्देश देते है व सघ को अध्यात्म की नई दिशाओ मे प्रवृत्त करते हैं, पर आचार्य का सबसे महत्त्वपूर्ण एव आवश्यक कर्तव्य है, सघ की भावी व्यवस्था के सचालन के लिए सक्षम एव योग्य उत्तराधिकारी की नियुक्ति, ताकि धर्मसघ प्रगति की दिशा मे उत्तरोत्तर गतिमान रहे।

इस दृष्टि से आचार्यश्री ने अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति कर सहज कर्तव्य का निर्वाह मात्र ही किया है और इसे कोई नई बात होना नहीं कहा जा सकता, पर इस घोषणा

के साथ कुछ ऐसे विशेष ज्ञातव्य तथ्य उद्घाटित होते हैं जिनमे से कुछ एक का उल्लेख मैं इस निबध मे करना चाहूगा, जिससे इस घटना को निस्सकोच एक अभिनव इतिहास प्रसग कहा जा सकता है।

आचार्यश्री तुलसी सवत् १९९३ के भादवा सुदि ३ को केवल २२ वर्ष की आयु में युवाचार्य बने, व तीन दिन बाद पूर्वाचार्य श्रीमद् कालूगणी जी के स्वर्गवास होने पर, आचार्य बन गए। तेरापथ के इतिहास मे इतनी कम आयु मे कोई युवाचार्य या आचार्य नही हुआ। संभवत भगवान् महावीर के बाद समूची जैन परम्परा मे भी, इतने बडे धर्मसघ का, (जिसमे उस समय लगभग ५०० साधु-साध्वियाँ थी) इतनी कम उम्र मे कोई आचार्य नही बन पाया। युवाचार्य महाप्रज्ञ की अवस्था इस समय ५६ वर्ष के करीब है और यह एक तथ्य है कि इस धर्मसघ मे इतनी वडी आयु मे कोई युवाचार्य मनोनीत नही हुआ। यह एक विचित्र सयोग है कि सबसे कम उम्र मे होने वाले आचार्य ने सबसे अधिक आयु के साधु को अपना युवाचार्य चुना। इतना ही नही आचार्यश्री ने अपने शासन काल मे बहुत लबे अतराल (लगभग ४३ वर्ष) के बाद ६५ वर्ष की आयु मे उत्तराधिकारी की घोषणा की। तेरापथ धर्मसघ मे किसी आचार्य ने शासन काल के इतने वर्षों बाद या इतनी अधिक आयु मे ऐसी घोषणा नही की। नव आचार्यों मे छठे आचार्य माणकगणि जी अकस्मात देवलोक हो गए, अत वे युवाचार्य का मनोनयन नही कर सके—शेष आचार्यों ने ६५ वर्ष की आयु के पूर्व मनोनयन कर लिया। स्वय आचार्यश्री के शब्दो मे "हमारे धर्मसघ के अब तक जितने आचार्य हुए हे एक को छोड कर सभी आचार्यों ने इस उम्र के पहले पहले अपने दायित्व को औरो को सौप दिया।" स्वय आचार्यश्री को युवाचार्य बनने के बाद ही नही, अपितु आचार्य बनने के बाद भी, करीब १२ वर्ष तक, एक ही प्रदेश मे रह कर धर्मसघ के प्रचार-प्रसार के लिये बहुत तैयारी करनी पडी, व कई अनुभवो की प्रक्रिया से निकलना पडा व अनुभवसिद्ध साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओ से बहुत कुछ सीखना पडा और तभी वे एक समर्थ व तेजस्वी आचार्य के रूप मे निखर सके, पर महाप्रज्ञ युवाचार्य को सघ-व्यवस्था के लिए कुछ भी नया सीखना आवश्यक नही है, वे वर्षों से सघ की गतिविधियो मे आचार्यश्री के प्रमुख परामर्श-दाता रहे है, व ४६-४७ वर्षों की लबी सयम यात्रा मे चतुर्विध सघ से भली भाति परिचित है, तेरापथ के सिद्धान्तो के वे अभूतपूर्व भाष्यकार है और इसलिये तेरापथ धर्मसघ को भावी नेतृत्व के लिए एक सिद्धहस्त योगी मिला है जिसकी परिपक्व अनुभूतियो से सघ निश्चित रूप से लाभान्वित होगा। उसे योग्यता की तलाश मे कोई प्रतीक्षा नही करनी पडेगी। वस्तुत अन्य प्रयोगो की तरह आचार्यश्री का यह एक अभिनव प्रयोग है, जिसमे सघ की सुरक्षा व विकास का हित सन्निहित हैं।

यह तथ्य सर्वविदित है कि युवाचार्य की घोषणा के पूर्व मुनिश्री नथमल जी सभी दृष्टियो से आचार्यश्री के योग्यतम शिष्यो मे थे। स्वय आचार्यश्री ने इसी वर्ष कार्तिक शुक्ला १३ को गगाशहर मे उन्हे 'महाप्रज्ञ' की उपाधि प्रदान की और सभवत यह विरल उपाधि आज तक किसी आचार्य ने, अपने शिष्य की योग्यता का अकन कर नही दी होगी। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने भगवद् वाणी के प्रामाणिक सकलन आगमो का शोधन कर, तटस्थ वृत्ति से, उसकी वाचना का सपादन किया, श्रीमद् भिक्षु स्वामी द्वारा प्रणीत अटल सत्य

सिद्धान्तो की युग की नई शैली में प्रशस्त व्याख्या की, आत्मलक्षी अध्यात्मपरक साहित्य के सृजन से बुद्धिजीवियो को प्रबुद्ध किया, प्रेक्षा-ध्यान के रूप मे व्यक्ति की सकल्प-शक्ति जगाने व चेतना को मुखरित करने की प्रेरणा दी, स्वय स्थिर योग की साधना कर वीतरागता की ओर बढने का आदर्श प्रस्तुत किया और इन सबके उपरात आचार्यश्री के प्रति सपूर्णत समर्पित होकर उनकी आज्ञा, अनुज्ञा, संकेतो का परिपूर्ण पालन किया व सघ के युगान्तरकारी परिवर्तन में आचार्यश्री को महान् योगदान दिया, जिसके फलस्वरूप न केवल तेरापथ धर्म-सघ मे, अपितु अन्यान्य धर्म सम्प्रदायो मे भी महान् दार्शनिक, तत्त्वशोधक, प्रबुद्ध चिंतक, साहित्य-सृष्टा के रूप मे उनकी प्रख्याति हुई। तेरापथ धर्मसंघ मे आचार्यश्री के बाद समवत. उन्हे चतुर्विध संघ से सबसे अधिक सम्मान मिला और ऐसी स्थिति मे यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि युवाचार्य की नियुक्ति मे उन्हे कोई अधिक सम्मान नही मिला, इससे तो उन्हे जो अब तक सम्मान मिला था, उसका ऐतिहासिक एव वैधानिक स्वीकरण मात्र हुआ। ऐसे युवाचार्य को पाकर सघ का ही गौरव और सम्मान बढा है और सभवत इतिहास मे पहली बार ऐसा परिलक्षित हुआ कि पद से भी व्यक्ति बडा होता है। युवाचार्य महाप्रज्ञ पद-प्राप्ति के पूर्व भी सम्मानित थे और इसलिए यह निस्सकोच कहा जा सकता है कि उनकी नियुक्ति से युवाचार्य पद का जितना सम्मान बढा है, उतना उनका नही। इसके पूर्व कई साधु तो आचार्य बनने के पूर्व तक प्रकाश मे नही आ सके। इस दृष्टि से यह नियुक्ति अपने आप मे विलक्षण है।

इस प्रसग की महत्ता इस तथ्य से भी प्रकट होती है कि इस घोषणा से सारे धर्म-सघ व इतर सम्प्रदायो मे सर्वत्र हर्ष प्रकट किया गया। इस बार मर्यादा-महोत्सव पर अधि-काश वयोवृद्ध व अपने समय के प्रखर एव बहुमानी साधु, कई कारणो से उपस्थित नही हो सके, पर घोषणा के बाद उन्होने जो प्रशस्तिपूर्ण प्रतिक्रियाए व्यक्त की, श्रद्धा-उद्गार भेजे, उस पर स्वय आचार्यश्री एवं युवाचार्यश्री को आह्लादपूर्ण आश्चर्य हुआ। तेरापथ धर्मसघ के इतिहास मे इतनी सार्वजनिक एव सर्वमान्य सुखद प्रतिक्रिया पहले कभी व्यक्त नही हुई। सघ के साधु भी छद्मस्थ ही तो होते है व उन्हे रागद्वेष, ईर्ष्या सता सकते है। पूर्व मे कुछ ऐसे प्रसगो पर कुछ साधु रुष्ट व असतुष्ट भी हुए, हालाँकि उनकी सख्या नगण्य ही रही।

तेरापथ के चतुर्थ अधिशास्ता श्रीमद् जयाचार्य ने जब सवत् १९२० मे मघराज जी स्वामी को युवाचार्य घोषित किया, तब उनके समकक्ष योग्यता वाले छोगजी चतुर्भुज जी आदि ने तो सघ तक से अपना सबध विच्छेद कर दिया, व विरोध मे जुट गए, जिससे श्री जयाचार्य को उनका विरोध निरस्त करने मे पर्याप्त श्रम व शक्ति लगानी पडी। इसके पूर्व व पश्चात् भी यत्र-तत्र ऐसे प्रसगो पर असतोष, ईर्ष्या, द्वेष के कुछ क्षणिक स्फुलिंग उछले, हालांकि आत्मानुशासन से प्रेरित श्रमण-श्रमणी वृन्द उससे प्रभावित नहीं हुआ, व सारे स्फुलिंग आत्मसाधना के शीतल जल मे स्वय तिरोहित हो गये। इस तार्किक एव प्रचार के युग मे जब कि चारो ओर पद-लिप्सा की ज्वाला से सारा विश्व त्रस्त है, व अधिकाश धर्म-सघ भी उससे अछूते नही रह पाए हैं, तब लगभग सात सौ साधु-साध्वी-सघ के अनुशास्ता, व लाखो-लाखो अनुयायियो के श्रद्धानायक के रूप मे, युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ का मनोनयन,

चतुर्विध सघ द्वारा सहज रूप से हर्षातिरेक के वातावरण मे स्वीकार करना तेरापथ धर्मसंघ की ही नहीं, विश्व इतिहास की अलौकिक घटना कही जा सकती है। यह सब आचार्यश्री की दूरदर्शितापूर्ण सूझबूझ एव युवाचार्यश्री की विशिष्ट योग्यताओ का ही परिणाम है व संघ इस बात से निश्चित है कि युवाचार्यश्री की विशिष्टताओ का नेतृत्व-रूप मे जो लाभ मिलेगा, वह सभी दृष्टियो से इतिहास मे अपूर्व व अविस्मरणीय होगा।

इस प्रसग की एक विशेषता यह भी है कि अब तक जिन समर्थ आचार्यों ने अपने उत्तराधिकारी को चुना, वे उनके अनुकरण मात्र ही करने वाले थे। आचार्यश्री स्वय इसके अपवाद अवश्य रहे और इसका कारण उनकी छोटी आयु भी था, पर आचार्यश्री ने परिपक्व अवस्था के युवाचार्य जी का जो मनोनयन किया, उसमे यह आधार नही बन पाया। यह सही है कि आचार्यश्री ने तेरापथ धर्मसघ की व्यवस्था मे जो युगान्तरकारी परिवर्तन किए उसमे महाप्रज्ञ का प्रारभ से शतप्रतिशत समर्थन, सहयोग, व योगदान रहा और उन्होने कभी किसी अवसर पर आचार्यश्री से भिन्न अनुभूति नही की और सदा उनसे अभिन्न अद्वैतात्मक स्थिति मे रहे, पर यह भी निश्चित कहा जा सकता है कि युवाचार्यश्री कई दृष्टियो से आचार्यश्री के अनुगामी न होकर, पूरक भी हैं। यह दोनो व्यक्तित्वो की निजता है, जो उनके व्यवहार व कार्य-शैली मे स्पष्ट परिलक्षित होती है। आचार्यश्री ६५ वर्ष की अवस्था मे भी सदा उत्फुल्ल रहने वाल हसते-खिलते सुवासित गुलाब के फूल की तरह है, जिनके मानस पर अवस्था अपना विशेष प्रभाव छोडने मे असमर्थ रही है। गत तीन चार दशाब्दियो मे जब-जब उनके दर्शन सेवा करने का अवसर मिला, तब-तब मैंने उनके चेहरे पर तारुण्य भरी मुस्कान व प्रफुल्लता के ही दशन पाए। भयकर विरोध व विषादपूर्ण परिस्थितियो मे भी उनका असीम आशावाद न्यून नही हो पाया, उनकी प्रसन्नता को मिटा न सका, वे उस सदाबहार उद्यान की तरह रहे जिसके कण-कण मे नई छटा, नया रग, नई सुवास सतत विद्यमान रहती है और यही कारण है अबोध बच्चे व अनभिज्ञ ग्रामीण से लेकर बडे-बडे सत्ताधीश एव विद्वज्जन उनसे समान रूप से आकर्षित रहे और सभी क्षेत्रो मे इतनी लोक-प्रियता आज तक किसी धर्माचार्य का नही मिली। इसके ठीक विपरीत युवाचार्यश्री के चेहरे पर मैंने सदा ही गाभीर्य और सात्त्विक तटस्थता का ही भाव देखा—उनको न तो मैंने कभी खुलकर हसते देखा, न उनके चेहरे पर कभी उन्मुक्त एव व्यापक मुस्कान देखी। अगाध पाडित्य के साथ उन्हे अह तो छू नही पाया, पर गाभीर्य अछूता न रह सका। तटस्थता व अनासक्त भाव के साथ-साथ सहज उदासीनता ने उनमे स्पष्ट अभिव्यक्ति पाली। युवाचार्यश्री शात पद्म-सरोवर के शरद् ऋतु के श्वेत कमल की तरह निर्लिप्त और साम्ययोगी है। आचार्यश्री आज भी युवक की तरह उत्साही एव प्रसन्न-वदन रहते हैं, जब कि युवाचार्यश्री अपने भर यौवन मे परिपक्व व्यक्तित्व लिए हुए लगते थे। आचार्यश्री की सहज मुस्कान के पीछे लोक के सारे प्राणियो के प्रति करुणा व समता भाव छलक कर बाहर आता प्रतीत होता है, और युवाचार्यश्री की तटस्थ वृत्ति मे प्राणी मात्र की वेदना उनके अतरतम मे गहरी पैठ कर स्वपर आत्म-कल्याण की भावना मे रूपान्तरित हो जाना चाहती है और विभाव से स्वभाव मे जाने की प्रक्रिया का यह सघर्ष उनके चेहरे पर बरबस अपनी झलक छोड़ देता है। एक ही लक्ष्य के पथिक दोनो के मार्ग श्रेय होने पर भी भिन्न-भिन्न है।

आचार्यश्री की ओज भरी वाणी व उसमे यदा कदा फूटने वाली सगीत लहरी से आम जनता एव बुद्धिजीवी समान रूप से भाव विभोर हो उठते हैं, तो युवाचार्यश्री द्वारा धर्म के गूढ तत्त्वो को थोडे ग्राह्य शब्दो मे सुलझाने की विशेष शैली से बडे से बड़े विज्ञजन मत्र-मुग्ध हो उठते हैं। एक मे आम जनता के हृदय को झकझोरने की अजेय शक्ति है, तो दूसरे मे मस्तिष्क को सीधे छूने की प्रज्ञाशक्ति है और ये दोनो शक्तियाँ व्यक्ति को आत्मलक्षी बनाने मे अद्‌भुत प्रेरणा का कार्य करती हैं। एक ने अपनी अपार करुणा से जन-जन का स्नेह प्राप्त किया है, तो दूसरे ने हित-चिंतन की सतत साधना मे जन-जन का सम्मान पाया है, ऐसी स्थिति मे दोनो एक दूसरे के पूरक हैं, ऐसा निश्चित रूप से कहा जा सकता है। दोनो कदम एक साथ नही चल सकते। एक पदचाप पर ही दूसरा पदचाप नही पडता, फिर भी दोनो चरण अलग-अलग रह कर एव चलकर भी एक साथ ही रहते है व उनसे प्रगति की ओर गति प्राप्त होती हैं। युवाचार्यश्री के मनोनयन के अवसर पर आचार्श्री ने सारे सघ को आश्वस्त किया है कि महाप्रज्ञ जी को दायित्व सौंपकर भी वे उनकी साधना की गति-शीलता मे कोई व्यवधान नही पडने देगे व अपना दायित्व उसी तरह निभाते रहेगे। यह आश्वासन सौभाग्य-सूचक है व सारे धर्मसघ की कामना है कि आचार्यश्री एव युवाचार्यश्री दोनो पूर्ण आरोग्य एव सुदीर्घ जीवन प्राप्त करे व सघ को अपना सबल नेतृत्व देते रहे ताकि विश्व की अध्यात्म शक्तियो को बल मिल सके। इस बात मे किंचित् सशय नही किया जा सकता, कि समय आने पर युवाचार्यश्री अपने मे आचार्यश्री की सारी शक्तियो को समाहित करने की क्षमता रखते हैं। इसी आशा और विश्वास के साथ मैं आचार्यश्री एव युवाचार्यश्री दोनो महापुरुषो का इतिहास के इस अभिनव प्रसग पर श्रद्धा पूर्वक हार्दिक अभिनदन करता हूँ।

— ० —

सस्मरणों के प्रकाश में—

उस समय के मुनि नथमल : आज के युवाचार्य महाप्रज्ञ

मुनि श्री बुद्धमल

सस्मरणों की यात्रा

युवाचार्य महाप्रज्ञ तेरापथ धर्मसघ के भावी आचार्य हैं। वे महाप्राण युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी के द्वारा नियुक्त उनके उत्तराधिकारी हैं। इस नियुक्ति के अभिनन्दन मे "तुलसी प्रज्ञा" अपना विशेषाक निकाल रही है। मै युवाचार्य का समवयस्क हू, इससे भी अधिक मै उनका बाल-साथी एव सहपाठी रहा हू, अत उनसे सबधित कुछ सस्मरण लिखने के लिए मुझे कहा गया है। पिछले अडतालीस वर्षों के निकट सम्पर्क के प्रकाश मे जब मैं अपने जीवन के उतार-चढावो की ओर दृष्टिपात करता हू तब पाता हू कि मस्तिष्क मे खट्टे-मीठे सस्मरणो की एक भीड धक्का-मुक्की करती हुई प्रवेश कर रही है, मैं उन सबको इस समय अपने पाठको के सम्मुख उपस्थित कर सकू —यह सभव नही है। परन्तु कुछ को सम्मुख लाना आवश्यक भी प्रतीत होता है। तो लीजिए, ये उपस्थित है हमारी बाल्यावस्था के कुछ नन्हे-मुन्ने सस्मरण, इनसे मिलिये। परन्तु एक बात का ध्यान रखिये, इनकी यात्रा मेरे बाल सखा मुनि नथमल के परिपार्श्व से प्रारभ होती है और युवाचार्य महाप्रज्ञ तक पहुचती है, फिर भी मजिल और आगे है, यात्रा चालू है।

बाल साथी

हम दोनो जन्मना ढूढाड (तत्कालीन जयपुर राज्य) के है। मुनि नथमल जी का जन्म टमकोर (विष्णुगढ) मे और मेरा पिलानी के समीपस्थ ग्राम लीखवा मे हुआ। मेरा लालन-पालन एव प्रारभिक शिक्षा ननिहाल मे हुई, अत मैं सादुलपुर मे ही रहा और वही का हो गया। मेरा जन्म स० १९७७ आसाढ कृष्णा ३ का है और युवाचार्य जी का आसाढ कृष्णा १३ का। उन्होने तेरापथ के अष्टमाचार्य श्री कालूगणी से स० १९८७ के माघ मे दीक्षा ग्रहण की और मैंने १९८८ के कार्तिक मे। प्रशिक्षण के लिए हम दोनो मुनि तुलसी (आचार्य तुलसी) को सौंपे गये। समवयस्कता के साथ-साथ तभी से हम दोनो साथी और सहपाठी बन गये। यद्यपि उस समय अन्य भी अनेक बाल-साधु थे, परन्तु हम दोनो की पटरी कुछ ऐसी बैठी कि प्राय हर क्रिया और प्रतिक्रिया मे हम एक साथ रहते। हमारे

नाम भी प्राय सभी के मुख पर समस्तपद की तरह एक साथ रहते थे । पूज्य कालूगणी हमे "नत्थू-बुद्धू" कह कर पुकारते थे और हमारे अध्यापक मुनि तुलसी "नथमल जी—बुद्धमल जी" कहा करते थे ।

हसने का दण्ड

बाल-चापल्य के कारण हम दोनो हसा बहुत करते थे । सकारण तो कोई भी हस लेता है, पर हम अकारण भी हसते थे । पाठ याद करते समय हम दोनो को कमरे के दो कोनो मे भीत की ओर मु ह करके बिठाया जाता था, फिर भी झुक-झुक कर हम एक दूसरे की ओर देखते और हसते । छोटी-मोटी कोई भी घटना या स्थिति हमारे हसने का कारण बन जाती थी । हम **अभिधान चिंतामणि कोष** कठस्थ कर रहे थे । मुनि तुलसी के पास वाचन करते समय जब **"पेढाल' पोट्टिलश्चापि"** जैसे विचित्र उच्चारण वाले नाम हमारे सामने आये तो हम दोनो अपनी हसी रोक नही पाये । कठोर अनुशासन पसद करने वाले हमारे अध्यापक मुनि तुलसी ने उस उद्दडता के लिए कई दिनो तक हमारा शिक्षण बद रखा । इसी प्रकार मेवाड से आये एक व्यक्ति की फटी-फटी सी बोली सुनकर भी हम अपनी हसी नही रोक सके और दड स्वरूप कई दिनो तक शिक्षण बद रहा ।

बच गए

तारानगर की बात है । मैं पानी पीने के लिए गया । उसी समय मुनि नथमल भी वहाँ पहुच गये । वे मुझे हसाने का प्रयास करने लगे । बहुत देर तक उन्होने मुझे पानी नही पीने दिया । आखिर झल्लाकर मैंने उनको धमकी दी कि मुनि तुलसी के पास मै आपकी शिकायत कर दू गा । तब वे रुके और मैं पानी पी सका । उस समय हम दोनो को ही पता नही था कि पास के कमरे से महामना मगनलाल जी स्वामी हमारी कारस्तानी देख रहे हैं । सायकालीन भोजन परोसते समय मत्री मुनि ने कालूगणी के सम्मुख ही हमसे पूछा कि आज मध्याह्न मे पानी पीते समय तुम दोनो क्या कर रहे थे ? हम दोनो की तो मानो घिग्घी ही बध गई । मत्री मुनि ने हसते हुए हमारी नोक-झोक कालूगणी को सुनाई और कहा—दोनो ही बहुत चचल है । आचार्यश्री ने अर्थभरी दृष्टि से हमारी ओर देखा और मुस्करा दिये । हम दोनो तब आश्वस्त हो गये कि बच गये ।

बड़ा बनना है या छोटा ?

लगता है आचार्यप्रवर ने हमारे हसने के उस स्वभाव को बदलने के लिए मनोवैज्ञानिक प्रयोग किया । हम दोनो उपपात मे बैठे थे तब उन्होने कहा—आओ एक सोरठा याद करो । उन्होने सिखाया—

"हसिये ना हुसियार, हसिया हलकाई हुवै ।
हसिया दोष हजार, गुण जावै गहलो गिणै ॥"

एक बार उन्होने यह श्लोक कठस्थ कराया—

"बाल-सखित्वमकारणहास्यं
स्त्रीषु विवादमसज्जन-सेवा ।
गर्दभयानमसंस्कृत-वाणी,
षट्सु नरो लघुतामुपयाति ॥"

आचार्यश्री ने हमे शिक्षा देते हुए कहा—"बच्चे के साथ मित्रता, अकारण हास्य, स्त्रियो के साथ विवाद, दुर्जन की संगति, गधे की सवारी और अशुद्ध वाणी—इन छह बातो से मनुष्य छोटा बन जाता है।" शिक्षा के बीच मे ही आचार्यश्री ने हमसे प्रश्न किया—"तुम लोग बडा बना चाहते हो या छोटा ?" हम दोनो ने एक साथ उत्तर दिया—"बडा" आचार्यश्री ने तब हमारी ओर एक विचित्र दृष्टि से देखते हुए कहा—"बडा बनना चाहते हो तो इन बातो से बचना चाहिए।" सहज भाव से दी गई उक्त शिक्षा हमारे अन्तरग मे उतरती गई और हम शीघ्र ही अकारण हास्य के उस स्वभाव से मुक्त हो गये।

पारस्परिक स्पर्धा

गहरी मित्रता के साथ-साथ हम दोनो मे स्पर्धा भी चलती रहती थी। खडिया से पट्टी कौन पहले लिखता है, श्लोक कौन शीघ्र याद करता है, आचार्यश्री की सेवा मे कौन पहले पहुचता है, मुनि तुलसी का कथन कौन पहले कार्यान्वित करता है—ये हमारी स्पर्धा के विषय हुआ करते थे। कभी-कभी अन्य विषयो मे भी स्पर्धा हो जाया करती थी। स० १९८९ मे एक बार श्री डूगरगढ मे कालूगणी की सेवा मे मुनि नथमल जी बैठे थे। आचार्यश्री ने अपने "पुट्ठे" से भर्तृहरि का नीतिशतक निकाल कर उन्हे दिया। उन्होने आकर मुझे दिखाया तो मैंने भी गुरुदेव से उसकी माँग की। एक बार तो उन्होने फरमाया कि "पुट्ठे" मे एक ही प्रति थी, वह दे दी गई, अब तुम्हारे लिए कहाँ से आये ? इस पर भी मैंने अपनी माँग को दुहराया, तब मुनि चौथमल जी के "पुट्ठे" से एक दूसरी प्रति निकलवाकर उसी समय मुझे दी गई।

स० १९९० मे बीदासर मे आचार्यश्री का प्रवास था। मैं अकेला आचार्यश्री की सेवामे था। आचार्यश्री ने अपने "पुट्ठे" से एक कवितापत्र निकाला और मुझे दिया। मैंने मुनि नथमल जी को वह दिखलाया, तो उन्होने भी उसकी माँग की। दूसरा पत्र उपलब्ध नही था, अत नया लिखवाकर उन्हे दिया गया।

स० १९८९ के सरदारशहर चातुर्मास मे दीक्षाए हुई, तब जो वस्त्र आया, उसमे से एक कबल को अलग रखते हुए आचार्यश्री ने कहा—यह नत्थू-बुद्धू को देना है। किसी मुनि के द्वारा हमे उक्त सूचना तो मिली ही, साथ ही यह भी पता चला कि उस कबल के एक भाग मे कुछ काले धब्बे हैं। मध्याह्नकालीन भोजन के पश्चात् कालूगणी ने कबल के दो टुकडे किए और हमे देने लगे तब हम दोनो ने ही बिना धब्बे वाले टुकडे की माँग की। आचार्यश्री ने हमे समझाने का प्रयास किया कि धोने पर ये धब्बे मिट जायेंगे, परन्तु धब्बे वाला भाग लेने के लिए हम दोनो मे से कोई भी उद्यत नही था। आखिर आचार्यश्री ने दोनों भागो को अपनी गोद में दबाया और वस्त्र से ढक दिया। केवल दो छोर ऊपर रखकर हमसे कहा कि एक-एक छोर पकड लो। हम दोनो ठिठके तो सही, परन्तु फिर एक-एक

छोर पकड लिया। धब्बो वाला भाग मुनि नथमल जी को मिला। वे थोडे उदास हुए, परन्तु जब दोनो भाग धुलकर पुन हमारे पास आये तब हम पहचान ही नहीं पाये कि धब्बों वाला भाग कौनसा था ?

मुनि तुलसी अर्थ करते

स० १६८६ में हम दोनो **अभिधान चिन्तामणि कोश** कठस्थ कर रहे थे। आचार्यश्री ने फरमाया—मध्याह्न मे प्रतिदिन एक श्लोक **सिंदूर प्रकर** (सूक्ति मुक्तावलि) का भी याद किया करो। हम वैसा ही करने लगे। कुछ श्लोक कठस्थ हो जाने के पश्चात् हमे आदेश हुआ कि साय प्रतिक्रमण के पश्चात् तुम दोनो श्लोको का गान किया करो और तुलसी अर्थ किया करेगा। बाल्यावस्था के कारण उस समय हमारा स्वर महीन और मधुर था। आचार्यश्री के सम्मुख खड़े होकर हम दोनो उपस्थित जन-समूह मे प्रतिदिन चार श्लोको का गान करते और हमारे अध्यापक मुनि तुलसी उनका अर्थ किया करते।

एक शिकायत

मुनि तुलसी हमें काफी कडे अनुशासन मे रखते थे। इधर-उधर घूमने की छूट तो देते ही नही थे, परस्पर बात भी नही करने देते थे। हम दोनो ने कालूगणी के पास शिकायत करने का निर्णय किया। रात्रि मे जब आचार्यश्री सोने की तैयारी कर रहे थे, तब हम गये और पास जाकर वन्दन किया। आचार्यश्री ने दोनो के सिर पर हाथ रखते हुए पूछा—"बोलो क्यो आये हो ?"

हम दोनो ने कुछ सकुचाते और कुछ साहस करते हुए कहा—"तुलसीराम जी स्वामी हमे बात भी नही करने देते, बहुत कडाई करते हैं।"

आचार्यश्री ने पूछा—"यह सब वह तुम्हारी पढाई के लिए ही करता है या अन्य किसी कारण से ?"

हमने कहा—"करते तो पढाई के लिए ही हैं।"

आचार्यश्री बोले—"तब फिर क्या शिकायत रह जाती है ?" "इस विषय मे तो वह जैसा चाहेगा वैसा ही करेगा। तुम्हारी कोई बात नही चलेगी।"

हम दोनो अवाक् थे। न कुछ कह पाये और न उठकर ही जा पाये। आचार्यश्री ने हमे एक कहानी सुनाते हुए कहा—राजा का पुत्र गुरुकुल मे पढा करता था। अन्य छात्र भी वहाँ पढते थे। पढाई सम्पूर्ण होने पर आचार्य राजकुमार को राजा के पास ले जा रहे थे। राजधानी के बाजार मे उन्होने कुछ गेहू खरीदे और गठरी राजकुमार के सिर पर रख दी। कुछ दूर तक ले चलने के पश्चात् वह गठरी उतरवा दी गई। वे सब राजसभा मे पहुचे। राजा ने आश्चर्य से पूछा—"राजकुमार का व्यवहार कैसा रहा ?" आचार्य ने कहा—"बहुत अच्छा, बहुत विनययुक्त।" राजा ने राजकुमार से भी पूछा—"आचार्य जी ने तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार किया ?" सकुचाते हुए राजकुमार ने कहा—"इतने वर्षों तक तो बहुत अच्छा व्यवहार किया, परन्तु आज का व्यवहार उससे भिन्न था। आज बाजार मे इन्होने मेरे से भार उठवाया।" राजा ने खिन्न होकर आचार्य से इसका कारण पूछा।

आचार्य ने कहा—"यह भी एक पाठ ही था। भावी राजा को यह ज्ञात होना चाहिए कि गरीब का श्रम कितना मूल्यवान होता है।"

आचार्यश्री ने कहानी का उपसंहार करते हुए कहा—"अध्यापक तो राजा के पुत्र से भी भार उठवा लेता है, तो फिर तुम्हारी शिकायत कैसे मानी जा सकती है ? तुलसी ने तो तुम्हें बात करने से ही रोका है। जाओ, मन लगाकर पढा करो और जैसा वह कहे वैसा ही किया करो।"

हम आशा लेकर गये थे, परन्तु निराशा पाकर लौट आये। दूसरे दिन मुनि तुलसी के पास पढने के लिए गये तो मन मे धुकुर-पुकुर मची हुई थी कि कही हमारी शिकायत का पता लग गया तो क्या होगा ?

किशोरावस्था में

बाल्यावस्था से किशोरावस्था मे पहुचने पर हमारी स्पर्धा के विषय बदल गये। स० १९९१ मे जोधपुर चातुर्मास मे हमने राजस्थानी भाषा की प्रथम काव्य-रचना की। स० १९९४ के बीकानेर चातुर्मास मे संस्कृत भाषा मे प्रथम काव्य-रचना की। हम एक दूसरे को अपनी रचना दिखाते और उसके गुण-दोषो पर चर्चा करते। अन्य विषय पर भी हमारी परस्पर चर्चा चलती रहती थी। हम शौच के लिए प्राय सबसे दूर जाया करते। वहाँ आसन किया करते। सस्कृत भाषण का अभ्यास भी किया करते। एक दूसरे से प्राय प्रेरणा ग्रहण करते रहते। शिक्षार्थी साधुओ को व्याकरण, काव्य और दर्शन-शास्त्र आदि अनेक विषयो का प्रशिक्षण देने का कार्य भी हम लोगो ने किया।

परिहास के क्षणों में

समय-समय पर हम दोनो मे परिहास भी चलता रहता था। एक बार मुनि नथमल जी ने किसी विषय पर मुझे कोई सुझाव दिया। मैंने उसे अस्वीकार करते हुए उनका मजाक उडाया कि मै आपसे आयु मे नौ दिन बडा हू, अत मुझे शिक्षा देने का आपको कोई अधिकार नही है। उन्होने भी मुझे उसी लहजे मे तत्काल उत्तर दिया कि तुम नौ दिनो के घमण्ड मे फूले हो, मै दीक्षा मे तुम्हारे से नौ महीने बडा हू।

एक बार मैने उनको कोई सुझाव दिया तो उसका मजाक उडाते हुए उन्होने कहा—"तुम्हारा तो नाम ही बुद्धू है, तुम मुझे क्या सुझाव दे सकते हो ?" मैने भी "जैसे को तैसा" उत्तर देते हुए कहा—"मैं समझदार व्यक्ति के कथन को ही महत्त्व देता हू। "ऐरे गैरे नत्थू खैरे" मेरे विषय मे क्या कहते है, उस पर कभी ध्यान नही देता।"

जो आज भी याद है

आक्षेपात्मक परिहास प्राय कटुता उत्पन्न कर देते हैं, जबकि गुदगुदाने वाले परिहास तृप्तिदायक होते हैं। वे बहुधा अपनी स्मृति मे भी वैसी ही तृप्ति प्रदान करते है। स० २००० मे मेरे द्वारा किया गया एक परिहास, जिसे मैं भूल चुका था, परन्तु युवाचार्य

जी की आज भी वह याद है। इसका पता मुझे तब लगा जब युवाचार्य बनने से तीन-चार दिन पूर्व ही बात-चीत के सिलसिले मे उन्होने मुझे उस घटना का स्मरण कराया। उक्त घटना सं० २००० के चातुर्मास से पूर्व ग्रीष्मकाल की है। उस समय आचार्य श्री तुलसी ने मुनि नथमल जी को अग्रणी रूप मे बहिर्विहार के लिए भेजा था। बाइस वर्ष की चढ़ती अवस्था और निश्चित स्वतन्त्र विहरण ने उनके शरीर पर काफी अच्छा प्रभाव डाला। कुछ महीनो के पश्चात् जब वे वापस आये तो रक्ताभ मुख उनकी स्वस्थता का अग्रिम परिचय दे रहा था। मैंने उनको वन्दन किया और परिहासमय प्राचीन श्लोक का एक चरण सुनाते हुए उसी के माध्यम से उन्हे सुखपृच्छा की। स्थित्यनुकूल सटीक बैठने वाला अपना परिहास सुनकर वे खिलखिला पडे। अभी-अभी राजलदेसर मे युवाचार्य बनने से पूर्व उन्होने मुझे मेरी परिहास-प्रकृति का स्मरण दिलाते हुए वही चरण गुनगुना कर कहा था—क्या तुम्हे याद है कि तुमने मेरे लिए इसका प्रयोग किया था ? लगभग पैंतीस वर्ष पूर्व किये गये उस परिहास को याद कर हम दोनो एक बार फिर खिलखिला कर हस पडे। साथ के साधु जिज्ञासापूर्वक उस श्लोक के लिए पूछते रहे।

इस पडाव पर

आचार्यश्री तुलसी ने स० २००० का चातुर्मास करने के लिए मुझे अग्रणी बनाकर श्री डूगरगढ भेज दिया। उसके पश्चात् धीरे-धीरे मुझे बहिर्विहारी ही बना दिया गया। तभी से हम दोनो के कार्यक्षेत्रो मे पार्थक्य प्रारभ हो गया। मुनि श्री नथमल जी को आचार्यश्री के सामीप्य का निरतर लाभ प्राप्त होता रहा, मुझे वह नही मिल पाया। पैंतीस वर्षों के इस प्रलब बहिर्विहार-काल मे मैंने जीवन की दुर्गम घाटियो के अनेक उतार-चढाव पार किये हैं। आज जिस पडाव पर खडा हूँ, वहाँ से पूरे अतीत को बहुत स्पष्टता से देख रहा हू। विगत का पूरा लेखा-जोखा मेरे मस्तिष्क मे अकित है। उसके पृष्ठ उलटता-पलटता हू तो पाता हू कि बाल-सखा मुनि नथमल जी युवाचार्य महाप्रज्ञ बनकर भी आज मेरे वही निकटतम साथी है। यात्रा-मार्ग और पडावो की दूरियाँ हमारे सख्य मे कोई बाधा उपस्थित नही कर पाई हैं।

नया मोड़ आ रहा है

आचार्यश्री तुलसी ने मुनि नथमलजी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। चारो ओर वातावरण मे एक हर्षोत्फुल्लता छा गई। मैंने एक अतिरिक्त आह्लाद और गौरव का अनुभव किया। दूसरे दिन प्रात प्रतिलेखन आदि कार्यों से निवृत्त होकर बैठा ही था कि अचानक युवाचार्य मेरे कमरे मे प्रविष्ट हुए। मैंने उठकर उनका स्वागत किया और आन का कारण पूछा। उन्होने कहा—"तुम तो मेरे साथी हो, साथी के लिए आया हू।" उन्होने मेरा हाथ पकडा और कहा चलो आचार्यश्री के पास चले। मै उनके साथ गया तो आचार्यश्री ने उस स्थिति पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए जो कुछ कहा वह मुझे गद्गद् कर गया। उसी दिन प्रात कालीन व्याख्यान मे युवाचार्य का अभिनन्दन करते हुए मैंने उक्त घटना का उल्लेख किया तो उत्तर देते समय युवाचार्य ने मेरी बात को छूते हुए कहा—"साथी तो साथी ही रहता है।" मैंने अनुभव किया सस्मरणो के प्रवाह मे अवरोध नही, एक नया मोड आ रहा है।

मर्यादा महोत्सव विशिष्ट उपलब्धि

साध्वी श्री सघमित्रा

मर्यादा महोत्सव तेरापथ धर्मसघ की सुदृढ नीव है। यह महोत्सव प्रतिवर्ष माघ शुक्ला सप्तमी के दिन मनाया जाता है। इस समय पर सैकडो साधु-साध्वियो की उपस्थिति, आचार्यप्रवर का महान प्रेरक सान्निध्य, परस्पर विचारो का विनिमय, चिन्तन-मननपूर्वक आचार्य देव द्वारा अनेक नये निर्णयो की घोषणा, एव अग्रिमवर्ष के लिये चातुर्मासो की नियुक्ति आदि आकर्षण के मुख्य केन्द्र बने रहते है।

यह मर्यादा महोत्सव धर्मसघ के लिये विविध उपलब्धियो का महोत्सव होता है। इस बार का यह महोत्सव राजलदेसर मे सम्पन्न हुआ था।

मर्यादा महोत्सव के दिन मध्याह्न के समय मर्यादा-पत्र-वाचन के बाद चतुर्विध सघ के बीच आचार्य देव ने एक अनुपम ऐतिहासिक निर्णय लिया था।

आचार्य के कन्धो पर अनेक प्रकार के महत्त्वपूण दायित्व होते है। उनमे सबसे महत्त्वपूर्ण दायित्व भावी आचार्य का नाम घोषित कर देना है। आचार्य द्वारा किये गये इस निर्णय से सारा सघ चिन्ता-विमुक्त हो जाता है। इस निणय मे आचार्य को अत्यन्त सतर्कता से काम करना पडता है। सघ-हित की दृष्टि से योग्य व्यक्ति का निष्पक्ष निर्णय आवश्यक है। योग्य व्यक्ति की सघ मे उपलब्धि न होने पर आचार्य के सामने सकटपूर्ण प्रश्न उपस्थित हो जाता है। वीर निर्वाण की द्वितीय शताब्दी मे आचार्य प्रभव के सामने यही प्रश्न अत्यन्त जटिल बन गया था। आचार्य प्रभव वृद्धावस्था मे थे—एक दिन उन्होने अपने उत्तराधिकारी के विषय मे चिन्तन किया। पूरे जैन समाज मे सघ-दायित्व निर्वहणार्थ कोई भी व्यक्ति उनकी दृष्टि मे नही था। ब्राह्मण समाज मे से उद्भट विद्वान्, नेतृत्व-कला-कुशल शय्यभव को उद्बोधन देकर आचार्य प्रभव ने उन्हे श्रमण दीक्षा दी एव आचार्यपद का दायित्व सौपा था।

आर्यरक्षित के सामने भी आचार्य पद को लेकर गम्भीर स्थिति पैदा हो गई थी। आर्यरक्षित दुर्बलिका पुष्यमित्र को अपना उत्तराधिकार सौप रहे थे। सघ के कुछ सदस्य आर्य फल्गुरक्षित एव गोष्ठामाहिल के पक्ष मे थे। फल्गुरक्षित आर्यरक्षित के लघु-भ्राता थे और गोष्ठामाहिल शास्त्रार्थ-निपुण महान् विद्वान् श्रमण। आर्यरक्षित ने घृत, तैल, उडदकणो से भृत कलशत्रय का दृष्टान्त दिया और कहा—"आर्य दुर्बलिका पुष्यमित्र मेरी ज्ञान राशि

को ग्रहण करने मे अत्यधिक सफल हुआ है।" सबके मन को समाहित कर आर्यरक्षित ने दुर्बलिका पुष्यमित्र का नाम आचार्यपद के लिये चुना। इससे सघ मे सर्वत्र प्रसन्नता की लहर दौड गई थी।

तेरापथ धर्मसघ मे कवि, लेखक, वक्ता, विद्वान्, दार्शनिक एव दायित्ववहन करने मे सक्षम सैकडो श्रमण-श्रमणी है। आचार्यप्रवर ने अपने प्रवचन मे एक दिन श्रमण-श्रमणियो की योग्यता का उल्लेख करते हुए कहा था—"मेरे सघ मे साध्वियाँ भी ऐसी है, अगर मैं उनको मेरा सम्पूर्ण दायित्व सौप दू तो बहुत अच्छे ढग से आचार्य पद के दायित्व को सभाल सकती है। यह हमारे धर्मसघ के लिए गौरव की बात है।"

राजलदेसर मर्यादा महोत्सव पर आचार्यश्री तुलसी ने विविध विशेषताओ के धनी, सर्वाधिक सुयोग्य महाप्रज्ञ मुनि श्री नथमल जी का नाम 'अपने उत्तराधिकारी के रूप मे घोषित किया। युवाचार्य के रूप मे इस बार धर्मसघ को मर्यादा महोत्सव की यह विशिष्ट उपलब्धि हुई।

महाप्रज्ञ श्री जैन दर्शन के अधिकृत विद्वान्, ऊर्ध्वमुखी व्यक्तित्व के धनी उच्चकोटि के दार्शनिक एव आचार्यश्री तुलसी के सफल भाष्यकार है।

योगधारा को नए सदर्भ मे प्रस्तुत कर महाप्रज्ञ श्री ने समग्र जैन समाज को अनुपम देन दी है। बहुविध साहित्य के माध्यम मे धर्म का वैज्ञानिक रूप प्रस्तुत कर युवा पीढी को उन्होने धर्म की ओर आकृष्ट किया है।

विशिष्ट ध्यान योग की साधना से मुनि श्री दुर्बलिका पुष्यमित्र की भाँति कृशकाय है। ज्ञान-सम्पदा, ध्यान-सम्पदा एव शरीर-सम्पदा से आप इस युग के द्वितीय दुबलिका पुष्यमित्र ही प्रतीत होते है।

सघ आपको युवाचाय के रूप मे पाकर धन्य हुआ हे। इस अवसर पर कोटिश बधाई के पात्र है—आचार्य श्री तुलसी। योग्य व्यक्ति को योग्य पद पर प्रतिष्ठित कर वे अपने दायित्व को वहन करने मे पूर्णत सफल हुये है।

महाप्रज्ञश्री ने अपनी साहित्य-साधना, ध्यान-साधना से बहुत कुछ समाज को दिया है। विश्वास है अब उनकी ऊर्ध्वगामी चेतना धर्मसघ को उन्नति के शिखर पर आरूढ करने मे सक्षम सिद्ध होगी!

बधाई! बधाई!! बधाई!!!

मनीषी संत, साधक मन, वैज्ञानिक दार्शनिक और प्राज्ञकवि

—डा० नरेन्द्र भानावत

मुनि श्री नथमलजी तेरापथ धर्म सघ के ही नही समस्त जैन जगत के और कहना तो यह चाहिए कि सम्पूर्ण भारतीय दार्शनिक परम्परा के जगमगाते नक्षत्र है। वे सच्चे अर्थों मे दार्शनिक है। उन्होने ज्ञान को आत्मसाक्ष्य भाव से देखा है और उसे आचरण मे उतारा है। इसी लिए ज्ञान की उष्मा उन्हे मात्र तार्किक नही बनाती वरन् अनुभूति के प्रकाश मे रूपातरित होकर, उन्हे प्राज्ञ-महाप्राज्ञ बनाती है।

मुनि श्री नथमलजी से मेरा पन्द्रह-सोलह वर्षों से परिचय है। उनका बहुरगी और बहुआयामी साहित्य मैने पढा है। कई बार उनसे बौद्धिक सलाप करने के भी अवसर आये है। मैने उन्हे सदा समुद्र की तरह गभीर, हिमालय की तरह उन्नत और आकाश की तरह अवकाशी पाया है। जीवन के ठोस यथार्थ धरातल से बात शुरू कर वे उसे उदात्त आदर्शों और जीवन-मूल्यो की ओर इस प्रकार अग्रसर करते है कि श्रोता या पाठक उससे अभिभूत हुए बिना नही रहता।

मुनि श्री कारयित्री एव भावयित्री दोनो प्रतिभाओ के समान रूप से धनी है। उनकी कारयित्री प्रतिभा से सस्कृत और हिन्दी भाषा मे अनेक काव्य कृतियो का निर्माण हुआ है। सस्कृत काव्य "**सम्बोधि**" मे साधना क्षेत्र मे दुर्बल और शकालु मेघ कुमार महावीर से सम्बोधि पाकर अपने आत्म-पुरुषार्थ को जाग्रत करता है। "**अश्रुवीणा**" मे अश्रुप्रवाह के माध्यम से चन्दनबाला का सदेश प्रेषित किया गया है। "**तुला-अतुला**" मे मुनि श्री के आशुकवित्व की परिचायक विविध रचनाए सग्रहीत है। हिन्दी काव्य सग्रह '**फूल और अगारे**" तथा '**गूजते स्वर बहरे कान**" मे मुनि श्री की ऐसी कविताए सकलित है जो चिन्तनशील होती हुई भी आत्मानुभूति के रस से सिक्त है, अनेकान्तधर्मी होती हुई भी भावना के घनत्व से आर्द्र है और लोकभूमि से जुडी होकर भी आत्मनिष्ठ है। अर्थ-गाम्भीर्य और शब्दलालित्य से वे सम्पन्न है। मुनि श्री का साधक मन जब भीतर की गहराई मे डूबता है, तब सहज आनन्द की निश्छल और निरावरण अभिव्यक्ति ही कविता के रूप मे फूट पडती है। मुनि श्री की कविता आत्मोल्लास के क्षण मे लिखी होने पर भी लोकोल्लास को अभिव्यक्त करती है। "स्व" को "सर्व" मे विलीन करने की यह रचना प्रक्रिया मुनि श्री के सन्त और साधक व्यक्तित्व का परिणाम है।

मुनि श्री की भावयित्री प्रतिभा उन्हे गूढ दार्शनिक अगम्य तत्त्ववेत्ता, सूक्ष्म विवेचन और विशद व्याख्याता बनाने मे निखरी है। **"जैन दर्शन मनन और मीमांसा," "अहिंसा तत्त्व दर्शन" "श्रमण महावीर"** तथा **"उत्तराध्ययन"** और **"दशवैकालिक"** सूत्रो के समीक्षात्मक अध्ययन मे मुनिश्री का गहन विचारक, व्यापक अध्येता और मौलिक चिन्तक का रूप सामने आया है। मुनिश्री की व्याख्या और विवेचना मे जो तेजस्विता और मौलिकता प्रतिबिम्बित होती है, वह उनके धर्म, दर्शन, साहित्य, इतिहास, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, भाषाविज्ञान आदि विविध विषयो के समन्वित अध्ययन, मनन और मन्थन का परिणाम है।

जैनधर्म क्रान्तिवादी और बौद्धिक चिन्तन का परिणामी धर्म रहा है। पर मध्ययुग मे अन्य धर्मो की भाति जैनधम भी अन्ध परम्पराओ का शिकार बना और उसका तेज कुन्द हो गया। वह श्रद्धालुओ तक सीमित रह गया। आधुनिक युग मे इस बात की बडी जरूरत थी कि जैनधर्म और दर्शन की विवेचना बौद्धिक सवेदना के धरातल से की जाए और उसे धर्म या सम्प्रदाय के रूप मे नही वरन् जीवन-मूल्य के रूप मे प्रनिपादित व प्रतिष्ठित किया जाए। मुनि श्री नथमलजी ने इस ऐतिहासिक आवश्यकता की पूर्ति करने मे अपनी विलक्षण प्रतिभा और बौद्धिक जागरूकता का अच्छा परिचय दिया है। फलस्वरूप भारतीय विश्वविद्यालयो के अनेक आचार्य और भारतीय मनीषा के अग्रगण्य प्रतिनिधि मुनि श्री के वक्तव्यो और ग्रन्थो से जैन दर्शन को सही परिप्रेक्ष्य मे समझ सके। राजस्थान विश्वविद्यालय मे जैन न्याय पर दिये गये मुनि श्री के विशेष व्याख्यान हमारे इस कथन के साक्षी है।

मुनि श्री कोरे शुष्क दार्शनिक नही है। उनके पास साधना और सयम का विशेष बल है। भारतीय योग-परम्परा के व्यापक सदर्भ मे उन्होने जैनयोग-साधना का, प्रेक्षाध्यान का सिद्धान्तपरक और अनुभूतिमूलक विवेचन, विश्लेषण और प्रयोग किया है। इस प्रकार मुनि श्री ने दर्शन के क्षेत्र मे वैज्ञानिकता को प्रतिष्ठित किया हे और विज्ञान के क्षेत्र मे दार्शनिकता को प्रतिष्ठित करने के वे पक्षधर है।

ऐसे मनीषी सत, साधक मन, वैज्ञानिक दार्शनिक और प्राज्ञकवि को आचार्य श्री तुलसी ने अपना उत्तराधिकारी घोषित कर अभिनन्दनीय काय किया है। इस घोषणा से श्रद्धालु भक्तो मे ही नही, बुद्धिजीवियो मे भी प्रसन्नता की लहर व्याप्त हुई है। इस अवसर पर मैं युवाचार्य महाप्रज्ञ श्री के प्रति अपनी शुभ कामनाए प्रकट करता हू और आशा करता हू कि उनके प्रज्ञाभाव से शील और समाधि का विशेष वातावरण बनेगा।

महाप्रज्ञ से धर्म-अनुशास्ता : एक गौरवपूर्ण उपलब्धि

—देवेन्द्र कुमार कर्णावट

महाप्रज्ञ मुनि श्री नथमलजी के युवाचार्य की घोषणा से "तेरापथ धर्मसघ" मे होने वाली अनेक कल्पनात्मक चर्चाए समाप्त हो गई हैं। बहुत सी भविष्यवाणिया केवल भविष्य-वाणिया रह गई है। तेरापथ मे नव उन्मेषो के प्राण-प्रतिष्ठापक युग प्रधान आचार्य श्री तुलसी ने, जो स्रोत, प्रतिस्रोत एव सघर्षों मे भी सदैव नवीनता के दिशा-प्रेरक रहे हैं, जीवन के इस उत्तरार्द्ध मे भी युग के नित्य बदलते परिवेश मे एक युगवीर की तरह कुछ दे जाने के लिए कृत-सकल्पशील है, दर्शन जगत के नम्र दार्शनिक एव प्रयोगशील विचारक को अनु-शास्ता के पद पर प्रतिष्ठापित कर सबको आश्चर्यान्वित कर दिया है।

० मुनि श्री नथमलजी वस्तुत साधुता मे रमणशील एक ऐसे सत हैं, जिनके दर्शनमात्र से मन गौरवान्वित हो उठता है, सास्कृतिकता एव पौराणिकता जाग उठती है। लेकिन इच्छा और आकाक्षा स कोसो दूर, युग के बहते प्रवाह मे कुछ ले गुजरने की महत्त्वा-काक्षा उनमे तिलमात्र भी नही है। धर्म नेता के रूप मे नेतृत्व की तो बिल्कुल ही नही है। फिर भी वे नेतृत्व के शिखर पर पहुच गये है, यह उनकी आत्म-तेजस्विता है।

० मुनि श्री नथमलजी लेखन की प्रक्रिया मे खोज एव शोध की दिशा से सतत् प्रेरित एक प्रकाशमान एव श्रुत लेखक है, जिनकी लेखनी से न सिर्फ दर्शन की आभा प्रस्फुटित होती है वरन् भारतीय दर्शन की राहे भी विकसित होती है। प्रशस्ति एव प्रसिद्धि की दृष्टि से सर्वथा पृथक् "स्वान्त सुखाय" ही उनकी कलम की आत्मवृत्ति है, जो निरन्तर चलती रहती है। भारतीय एव विश्व साहित्य मे यह उनकी अद्वितीय देन है, जो विविध पुस्तको के रूप मे उपलब्ध है।

० मुनि श्री नथमलजी दर्शन की गहराई एव विकास के लिए एक ऐसे चिन्तनशील विचा-रक है, जिनसे नित्य नवीनता की दिशा मिलती है। सामायिक के प्रारम्भिक सूत्र से लेकर प्रेक्षा ध्यान की उच्चतम मजिल तक सामान्य भाव से सामान्य जन को पहुचा दिया, यह उनकी अपनी क्षमता है, जिसे प्राप्त कर आज आत्म-जगत गौर-वान्वित है। कही भी रूढता नही है वरन् कुठाओ से ग्रस्त ग्रन्थियो को खोलने की उनमे एक अजस्र शक्ति है।

० मुनि श्री नथमलजी ज्ञान और विज्ञान की प्रवृत्ति से नित्य सृजनशील एक प्रयोगवेत्ता है, जिनकी प्रयोगशाला खाते-पीते, उठते-बैठते प्रतिपल प्रतिवृत्ति मे चलती रहती है। कही कुछ आहट नही और व्यवहार मे कही कुछ कमी नही। सदैव बोलती हुई मुस्कराहट, जिज्ञासु और दर्शक के लिए बस यही सब कुछ है। दृष्टिमात्र ही आगुन्तक के हृदय को जीत लेती है। महानता के इस अपार सग्रह मे भी अहम् कही छू भी नही गया है। अहकार का तो प्रश्न ही नही है। दशक को वहाँ दर्शन ही नही वरन् प्रयोगशाला की झाकी भी मिलती है, लेकिन जकडन कही भी नही है।

इसीलिए "महाप्रज्ञ" के रूप मे आचार्य श्री तुलसी की यह खोज कहू या देन, अद्वितीय है। न सिर्फ 'तेरापथ' वरन् जैन जगत को आचार्य श्री ने अपने पीछे उन्हे 'धर्म-अनुशास्ता' के रूप मे घोषित कर एक ऐसी देन दी है, जो सदैव चिर स्मरणीय रहेगी।

प्रज्ञाचक्षु प० सुखलालजी के बाद जो एक कमी जैन जगत महसूस कर रहा था, महाप्रज्ञ के रूप मे मुनि श्री नथमलजी को पाकर यह समाज आज अपनी धन्यता का अनुभव कर रहा है। वस्तुत हम सब भाग्यशाली है और फिर 'तेरापथ' के युवाचार्य के रूप मे महाप्रज्ञ को पाकर हम और अधिक धन्य हो उठे है। युग प्रधान आचार्य श्री तुलसी की यह एक एतिहासिक देन है। यह एक ऐसी देन है, जिसमे युग-सदर्भ मे जहाँ कई भविष्यवाणिया धराशायी हो उठी है तो कई पुनर्जीवित हो उठी है, जो जैन-दर्शन को नित्य नवीन उन्मेषो, प्रयोगो एव विचारो से प्लावित करती रहेगी और न सिर्फ जैन वरन समूचे आध्यात्मिक नेतृत्व को नये आयाम प्रदान करेगी।

युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ : पहले और बाद में

—साध्वी कमलश्री

नवीनताओ से भरा इतिहास ही आने वाले युग के लिए एक अपना आकर्षण छोड जाता है, लेकिन वही वर्तमान मे कोई आकर्षण और आश्चर्य शून्य भी नही होता। समान जीवन-क्रम मे तरतमता ऐतिहासिक आश्चर्य नही है, किन्तु पूर्वापर अकल्पित घटनाए अगणित चेतनाओ का चित्त रजन करती है। युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ बाल्य काल के जीवन से लेकर अपने विद्यार्थी-जीवन तक ही सीधे, सरल एव निजीय सुविधाओ से अनभिज्ञ, अवश्य ही समता-योगी थे। किन्तु औरो की दृष्टि मे तथा स्वय के अनुभव मे वे एक भोली प्रतिमा ही माने जायेंगे। पर आज उनके पाण्डित्य पूर्ण विचार, चिन्तन व साधना से सारे बाल, युवक और वृद्ध जो अनायास आकृष्ट हो रहे है या यो कहू कि आचार्य पद के मागल्य-सूचक युवाचार्यत्व की घोषणा से जो सभी लोग भाव-विभोर हो रहे है, वह जन-जन की सभावना मे नव-प्रभात का सूचक है।

टमकोर एक छोटा-सा रेतीला गाव है। वहा वृक्ष-पौधे बहुत कम है। कटीली झाडियाँ एव कई जगली तरु ही खडे दिखाई देते है, किन्तु आज वहाँ एक कल्पवृक्ष ऊगा है। जिसके विकास क्रम को प्रारम्भ से लेकर आज तक लोगो ने देखा है और विकास का यह क्रम अपनी पराकाष्ठा को अवश्य प्राप्त होगा। जिन्होने आचार्य प्रवर द्वारा सिञ्चन, रक्षण एव सजीव प्रेरणाओ को प्राप्त कर स्वय की योगनिष्ठा तथा प्रतिष्ठा का आकलन किया है। ऐसे आचार्य को पाकर कौन नही सभावनाओ की नई चमक, नई ऊर्जा के लिए गौरवान्वित होगा। कौन नही जीवन दिशा की ऊर्ध्वगामी ज्योतिधारा पाकर उनके प्रति आभार पूर्ण बनेगा ?

युवाचायश्री न केवल बौद्धिक चिन्तक वर्ग के लिए दार्शनिक और चिन्तक ही है, किन्तु व्यवहार मधुरता, विनय आचरण तो उन्हे और भी अधिक प्रिय है। मेरी ससार पक्षीय ज्येष्ठ मातुश्री साध्वी श्री बालुजी (युवाचार्य श्री की ससार पक्षीय माताजी) कहा करती थी कि तुम्हारे बडे पिता (श्री तोलामल जी चोरडिया) के स्वर्गवास होने के पश्चात् वे अपने चाचा (पन्नालालजी चोरडिया) के पास ही अधिक रहते थे। इनके चाचा इनकी विनम्रता से इतने प्रभावित थे कि ससार की सम्पूर्ण विलासिता को लाँघकर स्वय युवाचार्य श्री के साथ दीक्षित भी होना चाहते थे। उनका विश्वास था कि ऐसा पुत्र ही त्राण कर सकता है। फिर न जाने मेरा इस दुनिया मे कौन होगा ? पर नियति से विवश जी तोडकर

भी वे दीक्षित न हो सके । परिवार के सात निकटतम व्यक्तियो की दीक्षाओ मे युवाचार्य श्री ने ही प्रथम शुभारम्भ किया ।

श्री कालूगणी के लाडले और आचार्य श्री तुलसी के अत्यत स्नेहिल विद्यार्थी के प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप मे आज हमारे सामने प्रस्तुत है । शान्त स्वभाव और मृदुता से कोई भी गुरु का स्नेह भाजन हो सकता है, पर अध्यात्म योग-रमण की गहनता पाना विरल-विरल और अतीव विरलता का सूचक है ।

मैं १२ वर्ष की उम्र मे प्रथम बार ही टमकोर गई, मेरा जी ऊब गया था । मात्र रेतीले टीले और उनके बीच बसा हुआ भव्य भवनो का एक छोटा-सा ग्राम । जहाँ न स्कूल की, न नल की, न बिजली की और न यातायात की, कोई सुविधा थी । काश ! वहाँ आचार्य प्रवर और युवाचार्यश्री का पदार्पण न होता तो घोर घुटन के अतिरिक्त और कुछ हाथ नही आता । क्योकि मनोरजन व सापेक्ष-सुविधा सामग्री का भी बाजार वहाँ देखने को न मिलता था । युवाचार्यश्री वहाँ जन्मे और शिक्षा-साधना के अभाव मे भी हीन-हारिता उनके साथ जनमी, जिसकी परख दिव्य दृष्टि वाले सन्तो ने ही की । परिवार के सुकुमार लाडले, अपनी मा श्री बालुजी के एकमात्र आँखो के तारे, कैसे उन्हे सन्तो की प्रेरणा भाती । किन्तु विश्व का भी सौभाग्य वहाँ अडिग प्रहरी बनकर खडा था । परिवार वाले, ९ वर्ष की अवस्था मे ही शादी-सम्बन्ध की धुन मे लगे हुए थे, किन्तु सबके सौभाग्य को जगाने, उनकी आत्मा के देवता ने उन्हे प्रतिबोध दिया । मुनि श्री छबील जी स्वामी का अथक प्रयास सफल हुआ । तदनन्तर, अपनी मा श्री बालु जी के साथ पूज्य श्री कालूगणी के कर-कमलो मे १० वर्ष की लघुवय मे मुनि व्रज्या उन्होने स्वीकार की । कुछ समय बाद उनकी बहिन श्री मालुजी ने भी सन्यास ले लिया ।

आज भी उनका जन्म-भवन, एक विशाल मकान, उसके सुन्दर चित्र, अनेक विध सामग्री उनके अपार वैभव की निशानी की सूचक है । लगता है उस समय पूरे टमकोर मे उनका ही वैभव अद्वितीय था । घर मे ऊँट, घोडे, अनेक गो, महिष व्रज रहे होगे, क्योकि उनके गहने व अन्य सघात, इन बातो का परिचायक है । ४ भाइयो के परिवार मे २ भाइयो के (साध्वी प्रमुखाश्री जी के नाना—श्री गोपीचन्द जी चोरडिया साध्वी श्री मोहना जी के पिता श्री बालचन्दजी चोरडिया) के मकान अलग थे । उनके सबसे छोटे चाचा पन्नालालजी तथा उनके पिता श्री तोलामल जी एक ही मकान मे सम्मिलित रूप मे रहते थे ।

अस्तु, निकट अतीत तक उनका अपना प्रिय नाम मुनि श्री नथमलजी था । आचार्य श्री तुलसी ने, उसके साथ महाप्रज्ञ एक निष्पन्न विशेषण दिया, किन्तु आज तो विशेषताओ से भरा, उनका अपना नाम ही महाप्रज्ञ घोषित हो गया ।

यह सब आपकी योग-विद्या के करिश्मो का सूचक है । आत्मा को छूने वाली अनेक अभिव्यक्तियो का भेद मत्र है । और पूर्वापर जीवन की अकल्पित विभिन्न निर्मितियो के एकीकरण का फलित है । आज अपना परिचय वे स्वय दे रहे है । उनका साहित्य उनके शिविर सचालन, उनके गहन दर्शन पूर्ण वक्तव्य दे रहे है । भारत के विवेकानन्द के रूप मे मनीषियो ने जिनको परखा है । श्री कृष्ण के अर्जुन की तरह जिनको आचार्य श्री ने अपने

[शेष पृष्ठ ४१० पर]

युवाचार्यश्री का अभिनन्दन

—उपाध्यायश्री अमरमुनि

क्रान्तदर्शी महामनीषी मुनिश्री नथमलजी को जब "महाप्रज्ञ" पद से अलकृत किया गया था, तो हर सहृदयो के हृदय सरोवर मे प्रसन्नता की तरग नाचने लगी थी। और अब जब कि उन्हे भावी आचार्य के रूप मे युवाचार्य पद से अभिषिक्त किया गया, तो अन्तर्मन आनन्द की हजारो-हजार उच्छल लहरो से अभितो व्याप्त हो गया।

मुनिश्री प्रज्ञा की ज्योतिर्मयी सजीव मूर्ति है। उनका सरल, स्वच्छ, सहज, सद्व्यवहार हर किसी सहृदय के हृदय को सहसा आप्यायित कर देता है। उनका व्यापक अध्ययन एव सूक्ष्म दार्शनिक चिन्तन कठिन से कठिन, दुर्धर, गभीर विषय को भी अन्तस्तल तक स्पर्श करता है। प्राचीन आगमो के सम्पादन मे उन्हे अनेकत्र मुकामन से सत्य का अनुसरण करते पाया है, जो सम्प्रदाय विशेष से परिबद्ध व्यक्ति के लिए प्राय असभव ही होता है।

आत्मप्रिय मुनिश्री से मेरा परिचय लगभग २१ वर्ष पुराना है। आगरा के प्रथम मिलन मे ही मुझे उन्होने स्नेहाकृष्ट किया था। तभी मैंने उनके चिन्तन मे क्रान्ति के स्फुलिंग विकीर्ण होते देखे थे, जो अब बहुत कुछ ज्वाला ही नही, निर्धूम प्रज्वाला बन गए है। सत्य को बेलाग स्वीकार करने मे अनेक बार वे सर्वथा बेदाग सिद्ध हुए है।

प्राकृत, सस्कृत, हिन्दी आदि भाषाओ पर मुनिश्री की अव्याहत साधिकार गति है। तद्-तद् भाषाओ मे उनकी अनेक रचनाए जहाँ लोकप्रिय हुई है, वहाँ विद्वत्प्रिय भी है। वे सस्कृत के आशुकवि भी है। आगरा की एक सभा मे सभा के तत्कालीन भव्य दृश्य को उन्होने सस्कृत छन्दो मे जब आशुरचना का रूप दिया, तो हम सब प्रतिभा के इस अद्भुत चमत्कार से मत्रमुग्ध हो गये थे।

यथाप्रसग मुनिश्री ने अपनी अनेक साहित्यिक कृतियो पर मेरे अभिमत लिए हैं और मैंने प्रशसामुखर शब्दावली मे योग्य अभिमत दिये है। यह कोई लोकव्यवहार के नाते औपचारिक रूप मे सतही तौर पर नही होता रहा है। मुनिश्री की बहुत कुछ बाते मुझे अच्छी लगी है, और मैने खुले निर्व्याज मन से उनका अभिनन्दन किया है। यद्यपि मेरे कुछ कट्टर साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के साथियो को यह पसद नही होता था, परन्तु सत्य को दूसरो की पसदगी या नापसदगी से कुछ लेना-देना नही है। सत्य का मूलाधार तो एक मात्र अपनी स्वानुभूति से प्रस्फुरित सहज अभिरोचना है। यही हेतु है, कि साम्प्रदायिक द्वन्द्वो के कटु वातावरण मे भी मेरी और मुनिश्री की पारस्परिक आत्मीयता की निष्कलुष स्नेह धारा अबाध गति से निकास पथ पर अग्रसर होती जा रही है।

आचार्यप्रवर श्री तुलसीजी ने युवाचार्य के रूप मे योग्य पद पर योग्य मुनि का चयन किया है, एतदर्थ शत-शत साधुवाद। यह चयन केवल तेरापथ सम्प्रदाय के हित मे ही नही, समग्र जैन समाज के हित मे फलप्रद होगा, ऐसा मुझे उनके निरतर उज्जवल होते जाते भविष्य पर से प्रतिभाषित होता है। मेरी हार्दिक शुभकामनाए मुनिश्री जी के साथ हैं।

शब्द व भाव के अमर शिल्पी : संस्कार-निष्पन्न मनीषी एव प्रबुद्ध साधक : युवाचार्य महाप्रज्ञ

—डॉ० छगनलाल शास्त्री

युवाचार्य महाप्रज्ञ (मुनि श्री नथमलजी) एक दिव्य सस्कारी मनीषी है, यह मेरे मन पर सबसे पहले तब प्रभाव पडा, जब मै लगभग ३५ वर्ष पूव पहले पहल उनके सम्पर्क मे आया। उनका वैदुष्य आज हम जिस निखार पर देख रहे ह, उसके मूल बीज तव भी व्यक्त-अव्यक्त रूप मे उनकी वाणी, विवेचन और विश्लेषण मे समय-समय पर प्रस्फुटित होते दृष्टिगोचर होते थे। महज सौम्यता, सहृदयता और सरलता उनके व्यक्तित्व का जन्मजात गुण है, तभी से मै यह अनुभव करता रहा हू।

तेरापथ मे एक प्रबुद्ध लेखक के रूप मे युवाचार्य महाप्रज्ञ का अपना गौरवपूर्ण स्थान है। जैन तत्त्व दर्शन का आज की भाषा व समीक्षात्मक शैली मे प्रस्तुत करने का अभिप्रेत लिए उन्होंने अपनी लेखनी उठाई, फलत **'जैन दशन के मौलिक तत्त्व'**, **'अहिंसा तत्त्व दर्शन'** जैसे अनेक ग्रन्थ विद्वज्जगत् के समक्ष आए, जिनका प्रकाशन आदर्श साहित्य सघ द्वारा हुआ। इस सन्दर्भ मे मुझे इस महान् मनीषी द्वारा लिखे गए सहस्रों पृष्ठो की सामग्री का सकलन तथा प्रबन्ध सपादन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ ह। उनकी कृतियो को देखते ही यह स्पष्ट आभासित होता है कि वे केवल अधीन विद्या के धनी ही नही ह, प्रत्यग्र क्षयोपशम की विराट् निधि उन्हे समुपलब्ध है।

आचार्यश्री तुलसी की पूना-यात्रा का प्रसग एक ऐसा ऐतिहासिक प्रसग है, जब भाडारकर रिसर्च इस्टीट्यूट, तिलक विद्यापीठ, सस्कृत वाग्वर्धिनी सभा, डेक्कन कॉलेज आदि राष्ट्रविश्रुत विद्या-केन्द्रो मे युवाचार्य महाप्रज्ञ के सस्कृत मे भाषण तथा आशुकवित्व के जो प्रेरक प्रसग बन, दक्षिण की काशी पूना नगरी के विद्वान् हष विभोर हो उठे। पूना के अपने मित्र श्री ए० वी० आचार्य को मै इस प्रसग पर नही भूल सकता, जिनका हमारे कार्य मे हार्दिक योगदान रहा। पूना की उस पहली यात्रा मे आचार्यश्री तुलसी केवल नौ दिन ठहरे, लगभग सत्ताईस गोष्ठियो का आयोजन हुआ। विद्या-क्षेत्र पूना मे समायोजित इन महत्त्वपूर्ण कार्यों को दृष्टि मे रख आचार्यश्री ने कहा था—बबई के नौ मास और पूना के केवल नौ दिन उनसे कम नही है। महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध दैनिक 'सकाल' के मुखपृष्ठ पर

महाप्रज्ञ का आशु कविता करते हुए चित्र छपा। उस दुर्लभ चित्र को मैंने अपने पास आज भी सुरक्षित रख छोड़ा है।

युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी और युवाचार्य महाप्रज्ञ की विद्यागरिमा पूना के माध्यम मे सारे दक्षिण मे परिव्याप्त हो गई।

विश्वविख्यात विद्यानगरी काशी का वह प्रसग भी मैं नही भूल सकता, जब आचार्यश्री तुलसी अपनी कलकत्ता-यात्रा के बीच वहा रुके थे। वाराणसेय सस्कृत विश्वविद्यालय, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ तथा स्याद्वाद् महाविद्यालय आदि विद्या-केन्द्रो मे महत्त्वपूर्ण विद्वत्सभाओ के समायोजन हुए। वाराणसेय सस्कृत विश्वविद्यालय और हिन्दू विश्वविद्यालय के समारोह तो सदा स्मरणीय रहेगे। भारतीय दर्शन, जैन तत्त्वज्ञान आदि विषयो पर सस्कृत और हिन्दी मे युवाचार्य महाप्रज्ञ के जो भाषण हुए, वे वैदुष्य और गहन अध्ययन की दृष्टि से एतिहासिक थे। वाराणसेय सस्कृत विश्वविद्यालय मे सस्कृत मे कार्यक्रम चल रहा था। सायकाल हो गया। साधुओ के प्रतिक्रमण की वेला थी। विद्वान् इतने विमुग्ध थे कि कार्यक्रम का अवरोध नही चाहते थे, अत आचार्यश्री ने तत्काल साधुओ के वही रात्रि-प्रवास का निर्णय लिया और प्रतिक्रमण के पश्चात् पुन कार्यक्रम चालू करवाया। घटो कार्यक्रम चलता रहा—सब सस्कृत मे। सस्कृत मे आशुकवित्व का कार्यक्रम पूना की तरह यहा भी बडा चामत्कारिक रहा। विद्वानो की बडी सुखद प्रतिक्रिया रही और अनुशसा भी की आचार्यवर ने कितना ऊचा मनीषी तैयार किया है। विद्याभूमि काशी मे युवाचार्य महाप्रज्ञ और उनकी प्रतिभा की सर्वत्र ख्याति हुई।

एक वरिष्ठ विद्वान् तथा चिन्तक के अतिरिक्त युवाचार्य महाप्रज्ञ का जो साधक का रूप है, वह अत्यन्त ही प्रेरक तथा उद्बोधक है। आज तो वे प्रेक्षाध्यान के माध्यम से साधना के क्षेत्र मे एक अभिनव उद्योत दे ही रहे है, वर्षों पूर्व भी उनका जीवन इतना बहिर्निरपेक्ष तथा अन्त सापेक्ष रहा है कि उनको देखते ही यह अनुभूत होता था कि इस साधक के जीवन के कण-कण मे अहिंसा और सयम की परिव्याप्ति है। युवाचार्य महाप्रज्ञ प्राय अपने गुरुवर्य आचार्यश्री तुलसी के सान्निध्य मे ही रहते आए है, पर चिकित्सा आदि की दृष्टि से कई ऐसे अवसर आए है, जब वे अपने साथी श्रमणो के साथ अलग भी रहे है। इन सभी प्रसगो मे मुझे उनके साथ रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ। भिवानी, काकरोली, राजसमद तथा सोजत रोड आदि मे उनकी चिकित्सा की दृष्टि से प्रवास हुआ। मै और मेरे साथी वही थे। घटो उनके सान्निध्य पाने के सुअवसर मिलते। उनकी उदात्त मनोवृत्ति और उच्च भावना से हम विमोहित हो जाते। एक सहज निश्छल मानव के रूप मे युवाचार्य अपनी कोटि के असाधारण है।

काकरोली एव राजसमद मे उनकी चिकित्सा मेरे मित्र वैद्य प० मिश्रीलाल दवे आयुर्वेदाचार्य करते थे। श्री दवे एक सरलचेता भद्र व्यक्ति है। उस समय युवाचार्य के सान्निध्य मे बैठने के विशेष प्रसंग बनते ही रहते थे। श्री दवे और हम आपस मे कहते— तेरापथ सघ के ये इतने मान्य और विद्वान् सन्त कैसी बाल सुलभ भद्रता लिए हुए हैं।

ये युवाचार्य महाप्रज्ञ के जीवन के पूर्वार्द्ध के थोड़े से प्रसग हैं। जो कुछ वे आज हैं, उसके बीज उनके पूर्ववर्ती जीवन मे अनुस्यूत थे, चाहे दीखते न हो। आचार्यश्री तुलसी तो एक द्रष्टा है। उन्हे तब भी यह सब दीखता था, जिसकी अभिव्यजना उन्होने महाप्रज्ञ मुनिश्री नथमल जी को अपना उत्तराधिकारी, तेरापथ के भावी दशम आचार्य घोषित करके अब की है।

एक महिमा महीयान् सघाधिनायक के वरीयान् अन्तेवासी के कन्धो पर धर्मशासन का गरीयान् दायित्व आया है। अध्यात्म-जगत् को अनेक आशाएँ हैं।

— o —

[पृष्ठ ४०६ का शेषाश]

ज्योतिपुज की ऊर्जा प्रदान की है। उसका विस्तार जन-जन के मन मे और अखिल विद्वानो के परिचय मे है। आश्चर्य का विषय है, जब उनके व आचार्य प्रवर के मुह से उनके सबसे कमजोर रहने वाले विद्यार्थी-जीवन के सस्मरण सुनते है। आई स्टीन, और वाशिगटन की तरह कभी विकास की एक रेखा भी प्रस्फुटित कर अपने अध्यापक मुनि तुलसी (आचार्य श्री तुलसी) को शायद उस समय थोडा भी सन्तोष जन्य विश्वास नही दिया। पर विनय समर्पण और प्रेक्षा जन्य प्रतिभा से आज उन्होने आचार्य श्री को भी इस नियुक्ति के लिए उद्यत कर दिया। इतिहास की यह आश्चर्य कारिता, विश्व युगो-युगो तक गाता रहेगा।

अभिनन्दन ! अभिनन्दन !

आज हर्ष न समाय

छाई रगरेलीजी, खिली कली-कली-कली भारी खबर मिली जी

आज हर्ष न समाय

मौका देख के मनोहर, तुलसी प्रभु के पट्टोधर

अपना कर दिया है जाहिर ।।आज०।।

महाप्रज्ञजी है नाम, जिनकी विद्वत्ता प्रकाम

लोक जानते तमाम ।।आज०।।

बडा भारी काम था, प्रश्न ग्रामो ग्राम था

फिक्र आठो याम था ।।आज०।।

आज फिक्र मिट गया, सबका प्रश्न हट गया

अच्छा सौदा पट गया ।।आज०।।

चिरजीवो गणिराज, सेवा करो युवराज

कहे मुनि धनराज ।।आज०।।

शासन फलो और फूलो, सारे खुशियो मे झूलो

दु ख-दर्द सब भूलो ।।आज०।।

नन्दन वन के समान, गण है सुख का निधान

मजे लूटो जी महान् ।।आज०।।

(लय पूरी गाई नहीं जाती महिमा गुरुदेव की)

—मुनि धनराज

महामहिम आचार्यदेव !

आप मेरी ओर से शत-शत बधाइयाँ स्वीकार करें। आपने उचित समय पर उचित काम किया है। अपने उत्तराधिकारी का नाम घोषित कर आप ऋण-मुक्त बने हो।

युवाचार्य प्रवर श्री महाप्रज्ञ महोदय का भी मैं हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ। यदि किञ्चित् भी आभास हमे मिला होता तो हम भी इस अदृष्ट पूर्व समारोह के अवश्य साक्षी बनते। आप श्री प्रतिपद ऋद्धि-वृद्धि-विजय-सिद्धि-प्रेम-आरोग्य को प्राप्त करते हुए जैन-शासन की श्री पर चार चाँद लगाएँ। इसी शुभाशसा के साथ।

—मुनि बच्छनमल

प्राप्त समाचारो से ज्ञात हुआ है कि मर्यादा महोत्सव के दिन परमाराध्य आचार्य-प्रवर ने महाप्रज्ञ मुनिश्री नथमल जी को युवाचार्य पद प्रदान करवाया है। काश ! हम भी इस मगल दृश्य को अपनी आँखो से देख पाते। प्रत्यक्षत आचार्यप्रवर एव युवाचार्यश्री के चरणो मे अपनी भावाञ्जलि अर्पित करता। इस मगल अवसर पर सबसे पहले मैं परमाराध्य परम पिता आचार्यश्री के चरणो मे हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हू। जिन्होने भावी आचार्य की नियुक्ति करके सघ को निश्चिन्त बना दिया। स्वय भी कृत्यकृत्य बन गए और सघ को भी कृत्यकृत्य बना दिया। इस पावन प्रसग पर युवाचार्यश्री के प्रति यही मगल कामना करता हूँ कि आपश्री का तेजस्वी जीवन धर्मसघ को और अधिक तेजस्वी बनाए। आपकी प्रखर साधना धार्मिक जगत् को प्रभावित करने वाली सिद्ध हो। परमाराध्य, परम पिता आचार्य प्रवर और युवाचार्य प्रवर की यह समर्थ जोडी युगो-युगो तक सघ को नेतृत्व प्रदान करती रहे।

मुनि सुमेरमल (लाडनूं)

गुरुदेव का यह निर्णय जनमत, सघमत और जैनेतरमन—तीनो के एकमन का निर्णय है। सबकी जयध्वनि निकल रही है। आचार्य प्रवर ने यह एक अद्भुत कार्य सम्पन्न किया है, जिसकी खुशी सबके दिल पर छाई है ' सारी दृष्टियो से आचार्यश्री ने बडा सुन्दर कार्य किया है और सघ मे चार चाँद लगाये है। युवाचार्य जी सदैव गुरुदेव के साथ रहे हैं। गुरुदेव ने ही उन्हे शिक्षा प्रदान की है। इस महावृक्ष को गुरुदेव ने ही लगाया है और उन्होने ही अपने हाथो से सिञ्चित किया है। गुरुदेव ने सघनायक के रूप मे आपको प्रस्तुत किया, इसके लिए हम सब कृतज्ञ है।

माघ शुक्ल सप्तमी सखर, युव पद दीनों ईश।
नक भूषण, नव निध वरो, वे सतदास आशीष ॥

—मुनि जीवनमल, मुनि मुलतानमल

आचार्यश्री तुलसी ने एक ऐसी स्वस्थ चेतना के हाथो मे सघ की बागडोर सौंपी है, जो स्वबोध के आलोक से जगमगा उठी है।

—साध्वी राजीमती

स्थानांग सूत्र मे गण-धारण और उसके सचालन हेतु जिन छह विशिष्ट गुणो का उल्लेख मिलता है, युवाचायश्री के जीवन मे उन सभी गुणो का समन्वय है। ये आचार्यश्री के अमूर्त्त भावो को मूर्त्तरूप देने मे अत्यन्त कुशल है। आचाय प्रवर के मगल स्वप्न अब और भी शीघ्रता से ठोस रूप ग्रहण करेगे।

- मुनि राकेश कुमार

इस गरिमामय उत्तरदायित्व की प्राप्ति पर शत-शत शुभकामनाएँ। आपका मगल नेतृत्व तेरापथ धर्मसघ का युग-युग तक योग-क्षेम करता रहे, इसी शुभेच्छा के साथ।

—मुनि डूगरमल

मुनिश्री नथमल जी हिन्दी, सस्कृत आदि भाषाओ के विद्वान हैं और इन्हे युवा आचार्यश्री महाप्रज्ञ के नाम से सबोधित किया जाएगा, यह इनकी विद्वता और पाडित्य के अनुरूप होगा।

आशा है, श्री नथमलजी समाज मे मानवता और समानता का प्रचार करने का प्रयास करते रहेगे।

जगजीवनराम

उप प्रधानमत्री भारत सरकार

योग्य गुरु ने योग्य शिष्य की क्षमता को स्नेहपूर्ण सम्मान प्रदान किया हे। इससे तेरापथी धर्मसघ और भी अधिक विकासोन्मुख बनेगा। सादर अभिवादन

भेरुलाल शेखावत

मुख्य मत्री, राजस्थान

मुनिश्री नथमलजी तेरापथ धर्मसघ के दसवे आचार्य हो गए हे, यह जानकर प्रसन्नता हुई। ये आचार्यश्री तुलसी के अणुव्रत कार्यक्रम को और गतिशील बनाकर समाज मे उनके सिद्धान्तो को प्रतिपादित करने मे अपना बहुमूल्य योगदान देगे, इसी भावना के साथ मैं सम्पूर्ण श्रद्धा सहित अपना सद्भाव प्रेषित करता हूँ।

ललितकिशोर चतुर्वेदी

सिंचाई एव विद्युत् मत्री (राज० सरकार)

महाप्रज्ञ श्रद्धेय मुनि नथमलजी एक प्रसिद्ध दार्शनिक, चिन्तक, विचारक और लेखक है। इनकी रचनाओ ने जैन धर्म, दशन और सस्कृति को नए आयाम दिए हैं। इनकी चिन्तना जितनी मौलिक है उतनी ही प्रामाणिक, गुढ और शास्त्र-सम्मत। ये सचमुच महाप्रज्ञ है।

कल्याणमल लोढ़ा

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय

मुनि नथमलजी आचार्य तुलसी के उत्तराधिकारी बने, यह सुनकर बडी प्रसन्नता हुई। योग्य व्यक्ति का योग्य सम्मान हुआ है। मेरा विश्वास है कि मुनिश्री नथमलजी के नेतृत्व मे जैन धर्म और समाज की उन्नति और प्रगति होगी।

—चिमनलाल सी० शाह

सोलिसिटर, बम्बई

मुझे यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई है कि मुनिश्री नथमलजी को आचार्य महाराज श्री तुलसी ने अपने अन्तेवासी को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया है। मेरी हजारो वन्दना।

— कस्तूर भाई लालभाई, अहमदाबाद

मुनिश्री नथमलजी की तपस्या, विद्वता और व्रत-धर्म निष्ठा अद्भुत गिनी जाएगी। साथ-साथ उनकी विवेक-विराग भावना भी इतनी गहरी है कि न केवल तेरापथ को अपितु वे समग्र जैन जगत् को, इतना ही नही, समूचे भारतीय सस्कृति को मार्ग-दर्शन करने मे हमेशा अग्रसर रहेगे। हमारे तत्त्वज्ञान मदिर सस्था की तरफ से तथा व्यक्तिगत रूप मे आचार्यश्री नथमलजी को शत-शत प्रणाम के साथ बधाई देता हूँ।

—शिवाजी न० भावे

युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ जी अगाध ज्ञानी है और साथ ही उनका ज्ञान उनके जीवन मे घुल-मिल गया है। उनका मन सरल एव निर्मल है। सबसे बडी बात है कि बुद्धि का उनके मन पर कोई भार नही है। मेरी शत-शत बधाई।

जैनेन्द्र कुमार दिल्ली

युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी ने मुनिश्री नथमल जी को युवाचार्य का दायित्व देने की घोषणा करके एक महान् निर्णय लिया है। यह जैन समाज का गौरव है कि मुनिश्री नथमल जी जैसा एक दार्शनिक सन्त आचार्यश्री के नेतृत्व मे प्राप्त हुआ। जिस दायित्व एव अलक.र से आचार्यश्री ने मुनिश्री को अलकृत किया है, उससे सभी को प्रसन्नता हुई है। इस अवसर पर मै आचार्यश्री एव युवाचार्यश्री, दोनो का हार्दिक अभिनन्दन करता हू।

—अक्षयकुमार जैन, दिल्ली

युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ जी ! श्रद्धेय आचार्यश्री तुलसी ने इस बार मर्यादा महोत्सव के पावन अवसर पर जो दायित्व सौपा है, उसका विवरण विज्ञप्तियो मे पढकर मन विभोर हो उठा। उसके लिए आचार्यश्री को हार्दिक साधुवाद और आपको आन्तरिक बधाई। धर्मसघ की मर्यादा को आचार्यश्री ने जिस प्रकार समृद्ध और समुज्ज्वल किया है, वह निस्सदेह सराहनीय है। मुझे पूरा विश्वास है कि वह परम्परा भविष्य मे और भी अधिक उज्ज्वल बनेगी।

यशपाल जैन

सम्पादक, जीवन-साहित्य, दिल्ली

आचार्यश्री ने अपने जीवन के एक सर्वोपरि उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य को बडी निपुणता से सम्पन्न किया, यह शासन के बडे सौभाग्य की बात है।

'महाप्रज्ञ' आचार्य भारीमाल जी की तरह 'परमभक्त' की श्रेणी के पुरुष है। जयाचार्य ने स्वामी जी की वाणी को मुखरित किया, 'महाप्रज्ञ' आचार्यश्री के इ गित-आकार-विचार और वाणी के अद्वितीय आद्रेता और व्याख्याकार रहे है। वे आचार्यश्री के 'महादेव' है। आचार्यश्री के चुनाव के लिए क्या बधाई दू ? अपने प्रतिबिम्ब को अपना उत्तराधिकारी बनाकर

आचार्य-प्रवर ने एक बहुत ही दूरदर्शितापूर्ण कार्य ही नहीं किया है, पर भारत-भूमि और दार्शनिक जगत् को एक अनुपम उपहार दिया है।

—श्रीचन्द रामपुरिया
कुलपति, जैन विश्व भारती, लाडनूं

जैन विद्या के प्रचार-प्रसार की जो धारा आचार्यप्रवर की प्रेरणा और सान्निध्य मे प्रवाहित हुई है, निश्चित ही अब वह निरन्तर गतिमान होती रहेगी। भारतीय धर्म और विद्या के क्षेत्र में तेरापंथ का यह बौद्धिक अनुदान हमेशा स्मरण रहेगा।

—प्रेम सुमन जैन
उदयपुर विश्वविद्यालय

मुनिश्री नथमल जी आचार्यश्री के उत्तराधिकारी होगे—यह मेरी अन्तरात्मा बहुत वर्षों पहले कह चुकी थी। वह आज प्रत्यक्ष हुआ। आशा ही नही, पूर्ण विश्वास है कि युवाचार्यश्री के सान्निध्य मे सघ का काम बहुत बढ़ेगा।

—नागरमल सहल
रीडर, जोधपुर विश्वविद्यालय

युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ की विद्वत्ता, शालीनता और सृजन-क्षमता से सभी परिचित हैं। उनका साहित्य उनके उदात्त और सुलझे विचारो का प्रमाण है। विश्वास करना चाहिए कि उनके नेतृत्व मे अणुव्रत आन्दोलन नये आयामो की खोज करता हुआ निरन्तर प्रगति के मार्ग पर बढता जायेगा।

—विष्णु प्रभाकर

आचार्य प्रवर ने महाप्रज्ञश्री को सर्वथा उपयुक्त समय पर उपयुक्त पद पर मनोनीत कर सघ पर महान उपकार किया है। आचार्यश्री ने एक देदीप्यमान रत्न को शत गुणी आभा से मडित कर समूचे सघ को आलोक प्रदान किया है और साथ-साथ विश्व के एक प्रख्यात दार्शनिक को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर जैन दर्शन को विश्वव्यापी बनाने के मार्ग को भी सहज प्रशस्त बना दिया है।

—महेन्द्र जैन, जयपुर

अभिनन्दनीय है हमारे परमाराध्य आचार्यप्रवर की यह दूरदर्शिता कि उन्होंने अपने पद की पवित्र गरिमा के अनुरूप वैसे श्रमणवर्य का चयन कर सघ-संपदा का समग्र उत्तराधिकार, तदनुरूप क्षमता व योग्यता के धनी मुनि-पुंगव को प्रदान कर, धर्म-शासन के भावी नेतृत्व के महत्त्वपूर्ण प्रश्न को समाहित कर, सबके मन में आनन्द का अजस्र स्रोत प्रवाहित कर दिया।

मुनिश्री की सुदीर्घ सयम एव श्रुत साधना, प्रकृति-शालीनता, बडों के प्रति विनम्रता का भाव, छोटो के प्रति वात्सल्य, उत्कृष्ट कोटि के तत्त्ववेत्ता एव मर्मज्ञ विद्वान् के रूप में अनेकानेक विशेषताओ के धनी, जो कि अब तक हमे केवल एक मुनि के रूप मे ही प्राप्त थे, अब हमें सम्मान्य युवाचार्य के रूप मे प्राप्त हैं। पदाभिषेक के इस पुनीत क्षण मे, उनका अत्यन्त समर्पित एव विनम्र भाव से वन्दन करता हूं।

—मोतीलाल रांका, ब्यावर, मारवाड़

उपाध्यक्ष, अ० भा० अणुव्रत समिति

तेरापथ की प्रगतिशील ऐतिहासिक घडियो मे इतिहास पुरुष आचार्यश्री तुलसी ने अपने उत्तराधिकारी के रूप मे महाप्रज्ञ मुनिश्री नथमल जी का चयन कर इतिहास को और अधिक गौरवान्वित किया है। हमारा अपना सौभाग्य हे कि मुनिश्री नथमल जी के रूप मे महाप्रज्ञ एव युवाचार्य दोनो एक साथ प्राप्त हुए है। युग की परिवर्तनशील परिस्थितियो मे युग पुरुष का यह ऐतिहासिक निर्णय युग-युग तक सस्मरणीय रहेगा।

—श्री देवेन्द्रकुमार कर्णावट,

भू० पू० महामत्री अखिल भारतीय अणुव्रत समिति

आचार्यश्री एव युवाचार्य के चरणो मे कोटि-कोटि अभिवन्दन। गुरुदेव ने अति अनुग्रह कर युवाचार्य की घोषणा कर सघ की आशा पूर्ण की, अत अति आभारी है। आचार्यश्री के निर्देशानुसार सघ के सर्वाङ्गीण उत्कर्ष के गौरवमय कार्य मे युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ पूर्ण सफल हो, यही हार्दिक कामना है।

—श्री नेमचन्द जी गधइया, सरदारशहर,

भू० पू० अध्यक्ष—जैन श्वे० ते० महासभा

आचार्यश्री के इस निर्णय का कलकत्ता मे सर्वत्र स्वागत किया गया हे। आप कृपा करके आचार्यप्रवर एव युवाचार्यश्री तक मेरी शत-शत बधाई पहुचाएं।

तिलोकचन्द डागा, कलकत्ता

गणि जी का यह चयन अत्यन्त सुन्दर है और जैन परम्परा के सामने एक उत्कृष्ट उदाहरण उपस्थित करता है। मुनि नथमल जी जैसा चिन्तक विचारक और लेखक शास्त्रज्ञ विद्वान् किसी सघ को बडे सौभाग्य से मिलता है। गणिजी ने तेरापथ के लिये जो कुछ किया है, वह मेरे सामने है। मुनि नथमल जी से उसमे और भी वृद्धि होने की पूर्ण आशा है। ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र मे त्यागमार्ग के पथिको की यह परम्परा सदा समादृत होगी।

प० कैलाशचन्द्र शास्त्री

सम्पादक जैन सन्देश, वाराणसी

यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि जैन श्वेताम्बर तेरापंथ धर्मसंघ के अधिशास्ता युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी ने अपने लब्धप्रतिष्ठ अन्तेवासी महाप्रज्ञ मुनिश्री नथमल जी को ११५वें मर्यादा महोत्सव के अवसर पर अपने उत्तराधिकारी के रूप में युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया है।...

महाप्रज्ञ मुनिश्री नथमल जी गम्भीर चिन्तक, श्रेष्ठ दार्शनिक, ओजस्वी वक्ता, उच्च-कोटि के लेखक, आशुकवि और आदर्श सन्त है। आप प्राकृत, संस्कृत और हिन्दी भाषा के अच्छे विद्वान् है। आपके द्वारा उच्चकोटि के विशाल साहित्य का निर्माण हुआ है और आपके लगभग एक सौ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है।

ऐसे सर्वगुण सम्पन्न विद्वान् सन्त का युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित किये जाने से समस्त समाज को अत्यधिक आनन्द की अनुभूति होना स्वाभाविक ही है। इस उल्लासमय अवसर पर मैं पूज्य युवाचार्यश्री नथमल जी का हार्दिक अभिनन्दन करता हू।

—प्रो० उदयचन्द्र जैन

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

आचार्यश्री ने धर्मसघ का महावटवृक्ष रोपित किया है तथा आपके मार्गदर्शन मे यह सघ दिनो-दिन प्रगति पथ पर है। धर्मसघ सदैव आपका ऋणी रहेगा।

महाप्रज्ञ युवाचार्य मुनिश्री नथमल जी जैसे कर्मठ सन्त ही आपके द्वारा सौपे गये उत्तराधिकार को सभालने मे सक्षम है।

विश्वास है उनके सान्निध्य मे धर्मसघ उत्तरोत्तर प्रगति करता रहेगा।

सरदारसिंह चौरडिया, बिरला नगर, ग्वालियर

मैंने पूज्य मुनिश्री को काफी नजदीक से देखा है और अनुभव किया है कि उनमे अखिल जैन समाज का ही नही वरन् अखिल मानवता का महामगल स्पन्दित है। वे एक उच्चकोटि के चिन्तक हे, उनके रूप मे सुकरात ही जैसे जन्मा है, उनकी वाणी प्रश्निल होती है, इतने प्रश्न, इतने निशान और हर निशान का अपना अचूक निशाना, सच, यह कोई महाविभूति ही कर सकती है। मुझे राशि-राशि साधुवाद देने दीजिये पूज्य आचार्यश्री को जिन्होंने एक अतीव योग्य व्यक्तित्व को युग नेतृत्व सौपा है। मुझे विश्वास है कि जिस युगाश्व की वल्गा मुनिश्री के हाथो मे दी गई है, वह दिग्विजय करेगा और युगप्रवर्तक सिद्ध होगा। मै इन क्षणो मे भाव-विभोर हूँ और उन्हे प्रणाम कर रहा हू।

डा० नेमीचन्द्र जैन

सम्पादक 'तीर्थंकर' इन्दौर

आचार्यश्री तुलसी द्वारा सभी दृष्टियो से अपने योग्यतम शिष्य स्थिरयोगी, प्रख्यात दार्शनिक महाप्रज्ञ मुनि नथमल जी को उत्तराधिकारी मनोनित करने की जानकारी प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हुआ। आचार्यश्री की अनुपम सूझबूझ एव दूर-दर्शितापूर्ण इस सुखद समाचार से सारा समाज हर्ष, उल्लास और गौरव का अनुभव करता है।

—सोहनलाल कोठारी, न्यायाधीश

विद्वद्वर मुनिवर श्री नथमल जी की शासन-भक्ति, विलक्षण क्षमता एवं अतुलनीय विद्वत्ता जैन व जैनेतर जगत् मे सदैव परिलक्षित हैं। इन्ही सब विशेषताओं के अनुरूप ही उन्होंने इस महान् पद की प्राप्ति की है। आशा है शासन इससे शाश्वत गौरवान्वित रहेगा।

—केवलचन्द नाहटा

विनीत बधाइयाँ।
सादर अभिनन्दन।
सपूर्ण समर्पण।
शुभकामनाओ सहित श्रद्धानत।

—शुभकरण दशानी

मुनिश्री की विद्वता का मैं प्रारम्भ से ही प्रशसक रहा हूँ। मेरा विश्वास है कि उनके आचार्यत्व मे तेरापथ धर्मसघ निरन्तर बढता जायेगा। शतशत बधाई।

—श्रीकृष्ण, पराग प्रकाशन, दिल्ली

पट्टशिष्य मुनिश्री प्रखर प्रतिभा के धनी है, अध्यात्म साहित्य के स्रष्टा है, अलौकिक आशुकवि हे। सस्कृत, प्राकृत और हिन्दी के अधिकारी विद्वान् है। सर्वोपरि द्रष्टव्य है आपकी विद्वता के साथ विनय का तालमेल। सचमुच गण एव गणी के प्रति आपका समर्पण-भाव हम लोगो के लिए हृदयग्राही है और दूसरो के लिए स्पर्धा का विषय बना हुआ है।

युगद्रष्टा आचार्यप्रवर द्वारा किए गए समयोचित एव शासनानुकूल इस मनोनयन को हम साधर्मी बन्धु सहर्ष विनयपूर्वक शिरोधार्य करते है।

—जैन श्वेताम्बर तेरापथी श्रावक समाज
जलपाईगुडी

मुनिश्री की विद्वत्ता, त्याग, तपस्या एव उदात्त मानवीय दृष्टि तेरापथी समाज के लिए आरम्भ मे ही प्रेरणा-स्रोत रही है। आसामवासियो की हार्दिक बधाई।

—जैन श्वेताम्बर तेरापथी सभा गोहाटी

मुनिश्री का युवराज पद पर चयन कर आपने सपूर्ण धर्मसघ को गौरव प्रदान किया है। धर्मसघ हर क्षेत्र मे और अधिक उपलब्धियो को प्राप्त कर आगे बढता रहेगा, ऐसा विश्वास है।

तेरापथ युवक परिषद कुर्ला, बम्बई

यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि आचार्यश्री ने मुनि नथमल जी को युवराज घोषित किया है। यह मै आचार्यप्रवर की महान् बुद्धिमत्ता एव दूरदर्शिता मानता हू। समाज मे इसका बहुत स्वागत हुआ है।

— शिवचन्दराय झाबड़ीवाला

इस महान् पद के लिए मुनि नथमल जी ही हर दृष्टि से उपयुक्त और सक्षम व्यक्ति हैं। इनके निर्मल व्यक्तित्व के कारण सघ का भविष्य निश्चित रूप से उज्ज्वल है।

मांगीलाल बैद, सुजानगढ़

आचार्य प्रवर के इस महत्त्वपूर्ण निर्णय की जितनी प्रशसा की जाए, उतनी थोडी है।

—पश्चिम बंग प्रादेशिक अणुव्रत समिति
कलकत्ता

मुनि नथमल को आचार्य तुलसी ने अपना उत्तराधिकारी घोषित किया है। धर्मयुग परिवार की ओर से हार्दिक बधाई।

—राममूर्ति
उपसम्पादक, धर्मयुग

मुनि नथमल जी को युवाचार्य बनाने पर मुझे इतनी प्रसन्नता हुई कि मै उसे अभिव्यक्त करने मे असमर्थ हूं। तेरापथ समाज ही नही, समुचा जैन समाज आचार्यश्री की दूरदृष्टि की भूरि-भूरि प्रशमा करता है। मैं अनेक व्यक्तियो से मिलता रहा हू। सबने इस चुनाव की बहुत प्रशसा की है। मेरी हार्दिक बधाइयाँ।

—एन० एम० बुगड
जनरल मैनेजर, इण्डियन एक्सप्रेस, बम्बई

एक आत्म-साधक व साहित्य-सर्जक के रूप मे श्रमण धर्म की जो साधना व सिद्धि आपने कर दिखाई है, वह जैन धर्म व सघ को गौरवान्वित करने वाली है। आपके व्यक्तित्व के बहुमुखी विकास को देखते हुए, इस सम्मान निमित्त आपको बधाई, धन्यवाद।

रतिलाल दीपचन्द देसाई

मुनिवर एक गहन चिंतक तथा विद्वान सत है और आचार्यवर द्वारा घोषित इस निर्णय से उनकी विद्वता व श्रेष्ठता का सम्मान हुआ है। हार्दिक अभिनन्दन।

—राजेन्द्र नगावत, रतलाम

युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ शासन के एक स्तम्भ के रूप मे रहे हैं। इन्होने अपनी दार्शनिक एव साहित्यिक प्रतिभा से धर्मसघ की श्रीवृद्धि की है। उन्ही पर धर्मसघ का यह महत्वपूर्ण दायित्व आ जाना एक महत्त्वपूर्ण प्रसग है। समस्त धर्मसघ के लिए यह एक उपलब्धि है।

—देवेन्द्र कुमार हिरण

पूज्य मुनिश्री नथमल जी इस समय उन कुछ विरल और मूर्धन्य जैन श्रमणो मे हैं, जिनकी कलम से महावीर का इस युग के सन्दर्भ मे पुनरावतार हुआ है। उनका चिन्तन अनुभूत है, साक्षात्कृत है। वे योगी हैं। उनका ग्रन्थ 'सम्बोधि' इसका प्रमाण है। मैं इसे वर्तमान जिनवाणी का एक क्लासिक मानता हूँ।

'श्रमण महावीर' भी अद्भुत ग्रन्थ है। बार-बार उसे पढने को जी करता है। सबसे बडी बात यह कि पू० मुनिश्री नथमल जी के साथ मै गहरी चिन्तनात्मक तदाकारिता महसूस करता हूँ। मैं चकित चमत्कृत हुआ यह देखकर, कि 'अनुत्तर योगी' मे जो मैने लिखा है, उसका समर्थन मुझे उनके चिन्तन मे बराबर मिलता गया है। तो मुझे लगा कि यह महावीर का ही समर्थन है।

पू० मुनिश्री को प्रणाम भेजता हूँ और उनका आशार्वाद चाहता हूँ।

वीरेन्द्र कुमार जैन बम्बई
('अनुत्तर योगी' के यशस्वी लेखक)

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आचार्य तुलसी जी ने मुनिश्री नथमलजी जैसे स्वतन्त्रचेत्ता तलस्पर्शी चितक को उत्तराधिकारी के रूप मे घोषित किया है। इस शुभ अवसर पर मैं दोनो महापुरुषो को बधाइयाँ देना चाहूँगा।

एक छरहरे वदन मे अपने अस्तित्व को छिपाये महाप्रज्ञ मुनिश्री नथमलजी का प्रशान्त व्यक्तित्व पिछली दशाब्दियो से चितन के क्षेत्र मे दिनकरवत् चमक रहा है। वे समग्र भारतीय दर्शनो के गभीर विद्वान है। सगोष्ठियो मे ता हमने उन्हे विश्वकोष के रूप मे पाया है। वे जिस अधिकारिक वाणी से अपनी आगमन और निगमन शैली मे उद्धरणो और दृष्टान्तो के साथ विषय का प्रतिपादन करते है, वह अत्यन्त प्रभावक और हृदयग्राही बन जाता है। उन का लेखन, चितन और कथन एक सामञ्जस्यपूर्ण दृष्टिकोण से ओतप्रोत रहता है। जैन सिद्धान्तो की मर्मज्ञता उनकी भावप्रवणता के साथ जुड जाती है। अनुभूति के स्वरो ने उनकी शैली मे एक और आकर्षण डाल दिया है। छोटे-छोटे आप बीते उदाहरण कथन की सारवत्ता को अभिव्यक्त करते चले जाते है। शैक्षणिक और सामाजिक मूल्यो की आधारशिला पर आसीन होकर वे प्रत्येक दर्शन का मूल्याकन करते है। जैन आगमो का आधुनिक ढग से सपादन-प्रकाशन भी उनकी सूझ-बूझ का निदर्शन है।

युवको के दायित्व को मुनिश्री ने भलीभाँति उभारा है, उनकी शक्ति, क्षमता और कर्त्तव्यपरायणता को जाग्रत करने का अथक प्रयत्न किया है। अणुव्रत आन्दोलन को युवको के माध्यम से जन-जन तक पहुचाने का कार्य आचार्यश्री एव मुनिश्री के सबल कधो का प्रतिफल है। इतना ही नही, अहिंसा दर्शन के प्रति आस्था पैदा करने का पुण्यकार्य भी उन महापुरुषद्वय के प्रयत्नो का परिणाम कहा जा सकता है।

विगत वर्षो मे सघ मे यदा-कदा किन्ही कारणवश विवादो का भूचाल आया। कतिपय तत्त्वों ने समाज मे अशान्ति और सघ मे अव्यवस्था फैलाने का भी उपक्रम किया, परन्तु

आचार्यश्री की दूरदर्शिता और सयोजनशीलता ने उन सभी ज्वारभाटो को बडी सुघडता और तथ्यता के साथ शान्त किया। यह उनकी प्रशासन-क्षमता का ही प्रतीक है। इन सब कार्यों मे आचार्यश्री को मुनिश्री का पूरा-पूरा सहयोग मिला है।

ध्यान-योग जैन समाज से लुप्त-सा होता जा रहा था। इतनी गभीर जैन ध्यान-परपरा होते हुए भी साधक उसकी ओर से उदासीन-से हो गये थे। मुनिश्री ने लाडनू मे ध्यान-केन्द्र प्रारभ कर एक नया आन्दोलन आरभ कर दिया है। ध्यान की इस गूढ शैली को उन्होंने स्वय की साधना के माध्यम से सहज और सरल बना दिया है। ध्यान-शिविरो के सयोजन से अब यह परपरा लोकप्रिय होती जा रही है।

मुनिश्री की प्रतिभा और चिंतन ने अभी तक शताधिक कृतियो और निबन्धो को जन्म दिया है। इन कृतियो मे चिंतन के साथ उद्बोधन मुखर होकर सामने आया है। लोकेषणा से दूर मुनिश्री ने जन सामान्य के दृष्टिकोण को झकझोरने का जो सफल प्रयत्न किया है, वह अभिनन्दनीय है। उनके सतत प्रयास से एक ऐसा नया क्रान्तिकारी तत्त्व खडा हो गया है जो अधविश्वासो और रूढियो से निर्मुक्त समाज की स्थापना मे विश्वास करता है। **मै मेरा मन मेरी शान्ति, तट दो प्रवाह एक, गूजते स्वर बहरे कान** आदि कृतियाँ इसी विचार-शृङ्खला से जुडी हुई है।

आचार्य श्री तुलसी जी ने सघ, समाज और साहित्य को जो योगदान दिया है उसे मुनिश्री नथमलजी निश्चित ही आगे बढायेगे और उनके सुयोग्य उत्तराधिकारी सिद्ध होगे। मुनिश्री जी निरामय और शतायु हो, यही हमारी कामना है। मेरा विनम्र प्रणाम।

डा० भागचन्द्र जैन, 'भास्कर'

अभिनन्दन का प्रत्युत्तर

आचार्यवर की अपने उत्तराधिकार की घोषणा का आपने जिस आन्तरिकता और हार्दिकता से स्वागत किया है और मेरे दायित्व के प्रति जो उत्साहपूर्ण भावना व्यक्त की है, उससे मैं अपने उत्तरदायित्व के प्रति अपने आपको और अधिक गभीर अनुभव करता हू और यह विश्वास दिलाता हूँ कि आपकी आकाक्षाओ की पूर्ति मे मेरा योगदान सदा आपको उपलब्ध रहेगा।

आचार्यवर ने मुझे सघ का जो दायित्व सौपा है उसकी श्रीवृद्धि करना मेरा पवित्र कर्त्तव्य होगा। ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना के द्वारा समूचे सघ को अध्यात्मनिष्ठ बनाने और उसकी आत्मचेतना को युगचेतना के सदर्भ मे समुन्नत करने के लिए मेरी सारी शक्ति सघ को समर्पित रहेगी। मेरा धर्मसघ आचार्यवर द्वारा उपलब्ध दो मूल्यवान अवदानो—अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान—के द्वारा समूची मानवजाति की सेवा करता रहेगा। मैं फिर अपने आत्मविश्वास को दोहराता हू कि सघ सम्पदा कि समृद्धि के लिए आप सबका सहयोग और सद्भावना उपलब्ध कर आचार्यवर की कृतियो को नया आयाम दे अपने दायित्व के प्रति सदा जागरूक रहूगा।

—युवाचार्य महाप्रज्ञ

१७ फरवरी ७९, चूरू

तेरापन्थ को आचार्यश्री तुलसी की देन

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

तेरापन्थ धर्मसघ एक प्रगतिशील धर्मसघ है। एक आचार्य के सक्षम नेतृत्व मे सगठन, अनुशासन और मर्यादानिष्ठा की दृष्टि से यह एक बेजोड़ उदाहरण है। इसका इतिहास दो शताब्दियो की कालावधि को अतिक्रान्त कर तीसरी शताब्दी मे पदन्यास कर चुका है। मम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की समुज्ज्वल आराधना करने के लिए आचार्य भिक्षु ने चौतीस वर्ष की अवस्था मे एक धर्मक्रान्ति की। सत्य के प्रति उनके सम्पूर्ण समर्पण, निर्भीक चिन्तनधारा और प्रतिकूल परिस्थितियो से लोहा लेने की अद्भुत क्षमता ने उनको एक प्राणवान् धर्मसघ का प्रणेता बना दिया। उनकी दीर्घकालीन सूझबूझ और गहरी आचार-निष्ठा न धर्मसघ को आचार का सुदृढ कवच दे दिया। कष्टो के बीहड मार्ग पर चलकर उन्होन एक राजपथ का निर्माण किया, जिस पर चलने वाले हजारो-हजारो व्यक्ति अपनी मजिल की ओर आगे बढ रहे है। आचार्य भिक्षु के उत्तरवर्ती सातो आचार्यों ने हर मूल्य पर अपने धर्मसघ के आदर्शों की सुरक्षा की। उन्होने अठारह दशको की लम्बी अवधि मे समागत हर सघर्ष को निरस्त किया और उस पथ पर बिखरे काँटो तथा ककरो को बुहार कर उसके पथिको को अप्रतिम सुविधाएँ दी।

वर्तमान मे तेरापन्थ के नवम अधिशास्ता युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी है। आपने अपने पूर्ववर्ती आठ आचार्यों द्वारा अर्जित सम्पदा को न केवल सुरक्षित ही रखा है, अपितु उसे वृद्धिगत भी किया है। आपका शासनकाल अपने आप मे अपूर्व और विलक्षण है। इस अपूर्वता का आभास उन सब लोगो को है, जो आचार्यश्री के व्यक्तित्व और कर्तृत्व से थोडे भी परिचित है। परिचय के बिन्दु भी इतने सूक्ष्म और हल्के है कि उनके माध्यम से आपके समग्र व्यक्तिरव का दिग्दर्शन नही हो सकता। इसलिए प्रस्तुत सन्दर्भ की चर्चा एक बिन्दु की परिधि मे परिक्रमा कर अपने पाठको की जानकारी के धरातल को ठोस बनाना चाहती है।

वि० स० १९९३ [ईस्वी सन् १९३६] भाद्रव शुक्ला तृतीया को तेरापन्थ के अष्टम आचार्यश्री कालूगणी ने मुनि तुलसी के तरुण कन्धो पर धर्मसघ की धुरी रख दी। यह दिन आचार्यश्री तुलसी के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से सघीय दायित्व को स्वीकार करने का दिन था। अपना दायित्व अपने शिष्य को सौप तीन दिन बाद ही कालूगणी दिवगत हो गए। तेरापथ

का शासन सूत्र अब सम्पूर्ण रूप से आचार्य तुलसी को सभालना था। इसके लिए विधिवत् कार्यवाही हुई भाद्रव शुक्ला नवमी को। तेरापन्थ के इतिहास की यह चौंका देने वाली घटना थी, जब एक बाईस वर्षीय युवक ने धर्मसघ की समग्र जिम्मेवारी सभालकर उसका कुशलतापूर्वक सचालन करना शुरू कर दिया। सैकड़ो साधु-साध्वियो के अन्तरग और बहिरग विकास की योजनाओ के साथ उनकी समुचित क्रियान्विति, हजारो-हजारो अनुयायियो का नेतृत्व और सम्पर्क मे आने वाले लाखो लोगो का पथदर्शन। साधारण व्यक्ति के लिए यह सब बड़ा जटिल हो जाता है, किन्तु आचार्यप्रवर ने इस दक्षता और दीर्घदर्शिता से काम किया कि एक उदीयमान धर्मसघ भी अपनी तेजस्विता एव लोक-चेतना को अभ्युदय देने वाली प्रवृत्तियो से जन-जन के लिए आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है।

प्रथम देन

उस समय तेरापन्थ धर्मसघ मे शिक्षा का विकास नही था। तत्कालीन सामाजिक वातावरण मे भी शिक्षा-सम्बन्धी आयामो का उद्घाटन नही हुआ। विचार-अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र राजस्थानी भाषा थी। कालूगणी के युग मे सस्कृत भाषा मे बोलने और लिखने का क्रम शुरू हो गया था। **भिक्षु-शब्दानुशासनम्** और **कालू कौमुदी**—ये सस्कृत व्याकरण कालूगणी के सान्निध्य मे ही निर्मित हुए और उनके पठन-पाठन का क्रम प्रारम्भ हो गया। फिर भी किसी विषय के सर्वांगीण अध्ययन की दिशाएँ नही खुली थी। युग-चेतना ने करवट ली और शिक्षा का सामाजिक मूल्य प्रतिष्ठित हो गया। आचार्यश्री तुलसी ने अनुभव किया— यदि हमारे साधु-साध्वियाँ प्रबुद्ध नही होगे, तो वे समाज को क्या दे सकेगे ? इस बढती हुई बौद्धिकता मे धार्मिक सस्कारो का पल्लवन भी अनुरूप साधन सामग्री के द्वारा ही हो सकता है। आचार्यश्री जो भी बात सोचते है, जो भी स्वप्न देखते है, वह निश्चित रूप से साकार हो जाता है। तेरापन्थ सघ मे शिक्षा का अभ्युदय हुआ। हिन्दी, सस्कृत, प्राकृत, इगलिश आदि विशिष्ट भाषाओ के साथ प्रान्तीय भाषाओ मे लिखने-बोलने का अभ्यास क्रम चला। इतिहास, दर्शन, व्याकरण, आगम, गणित आदि शैक्षणिक विधाओ मे साधु-साध्वियो ने प्रवेश पा लिया। विभिन्न दर्शनो के तुलनात्मक अध्ययन का द्वार खुला और दो दशको मे ही तेरापन्थ सघ का शैक्षणिक स्तर समुन्नत हो गया। इसके लिए समय-समय पर अध्यापन का कार्य स्वय आचार्यश्री ने किया है। परीक्षा-पाठ्यक्रमो का प्रयोग, प्रोत्साहन, प्रेरणा आदि बिन्दुओ ने साधु-साध्वियो के मन मे विद्या प्राप्त करने की एक अमिट प्यास जागृत कर दी जो कि आज भी उसी अतृप्त भाव से बढती जा रही है।

साध्वियों का विकास

तेरापन्थ धर्मसघ मे साध्वियो की सख्या उत्तरोत्तर प्रवर्धमान रही है। सख्या-वृद्धि के साथ-साथ उनकी व्यवस्थाओ मे भी सुधार होता रहा है, परन्तु विकास की सब सभावनाओ को व्यवस्था नही मिली। इस दृष्टि से उनके लिए विशेष अभ्युदय की अपेक्षा थी। अष्टमाचार्य श्री कालूगणी ने अपने उत्तराधिकारी आचार्यश्री तुलसी को सघ के भावी कार्यक्रम

का सकेत देते हुए एक निर्देश दिया कि—अपने सघ मे साध्वियाँ बहुत हैं, किन्तु उनके विकास हेतु कोई अच्छी व्यवस्था नही है । तुम्हें इस ओर ध्यान देना है । कालूगणी के निर्देशानुसार आचार्यश्री ने दायित्व स्वीकार करने के कुछ समय बाद ही साध्वियों के अध्यापन का कार्य शुरू कर दिया । सौभाग्यशालिनी हैं वे साध्वियाँ, जिन्होंने निरन्तर वर्षों तक आचार्यश्री के कुशल अध्यापन मे शिक्षा के बीज बोए और उन्हें अकुरित किया । आज साध्वी-समाज का जो रूप बन पाया है, उसका पूरा श्रेय आचार्यश्री के कर्तृत्व को मिलता है । न केवल शिक्षा अपितु साधना, कला, साहित्य, वक्तृत्व, यात्रा आदि सभी क्षेत्रो मे साध्वियाँ गतिशील हैं । आचार्यश्री के सक्षम नेतृत्व मे उनकी प्रगति सम्बन्धी भावी सभावनाओ को भी नकारा नही जा सकता ।

साहित्य सेवा

तेरापन्थ धर्मसघ की साहित्यिक चेतना को ऊर्ध्वारोहित करने मे एक नया कीर्तिमान् स्थापित किया है, आचार्यश्री तुलसी की सृजनशीलता ने । सृजन की आप मे अद्भुत क्षमता है । एक ओर धर्मसघ की सम्पूर्ण जिम्मेवारी, दूसरी ओर साहित्य-सरचना की सतत प्रवहमान स्रोतस्विनी । सृजन के लिए अपेक्षित एकान्त क्षण और एक विशेष मनोदशा के साथ प्रतिबद्ध न होकर आपने जब तब सृजन किया है । राजस्थानी, हिन्दी, सस्कृत आदि भाषाओ मे गूथे हुए आपके साहित्य मे जीवन के शाश्वत मूल्यो की अभिव्यक्ति है । सिद्धात, दर्शन, योग, जीवनवृत्त, आख्यान और नैतिकता के सम्बन्ध मे आपकी कृतियाँ अपने युग की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं । इन रचनाओ की सबसे बडी विशेषता यह है कि ये एक साधारण पाठक और विद्वान् पाठक दोनो के लिए उपयोगी हैं । जैन सिद्धान्त दीपिका, भिक्षु न्याय-कर्णिका, मनोनुशासनम्, अणुव्रत के आलोक मे, अणुव्रत गति प्रगति, अनैतिकता की धूप अणुव्रत की छतरी, क्या धर्म बुद्धि गम्य है ? कालूयशोविलास, चन्दन की चुटकी भली, आदि पचासो ग्रन्थ आपकी साहित्य-चेतना के उत्कृष्ट नमूने है ।

साहित्य-निर्माण की क्षमता एक बात है और साहित्यकारो का निर्माण दूसरी बात है । आचार्यश्री ने मौलिक साहित्य सृजन के साथ-साथ ऐसे साहित्यकारो को भी तैयार किया है, जिनकी कृतियो ने बौद्धिक मानस को प्रभावित किया है । तेरापन्थ का आधुनिक साहित्य समीक्षको की दृष्टि मे युग-चेतना का प्रतिनिधि साहित्य है । गद्य और पद्य दोनो धाराओ मे नवीन और प्राचीन प्राय सभी विधाओ मे साहित्य का सृजन आचार्यश्री की विलक्षण सृजन-शक्ति का प्रतीक है ।

आगम-सम्पादन

तीर्थंकरो द्वारा अर्थ रूप मे कहे हुए और गणधरो एव स्थविरो द्वारा गूथे हुए शास्त्रो को आगम कहा जाता है । भगवान् महावीर के समय और उनके बाद कई शताब्दियो तक आगमो के अध्ययन-अध्यापन की परम्परा मौखिक रूप से चलती थी । दुष्काल आदि कारणो से उस परम्परा की शृखला कही-कही शिथिल हो गई । उसे पुन सुसम्बद्ध बनाए रखने के लिए आगमो की मुख्य रूप से चार वाचनाएँ हुईं । अन्तिम वाचना महावीर-निर्वाण के एक हजार वर्ष बाद देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के सान्निध्य मे हुई । उसी समय आगमो को

पुस्तकारूढ़ किया गया। परम्परा-भेद, श्रुति-भेद और लिपि-भेद आदि कारणो से एक ही आगम की भिन्न-भिन्न प्रतियो मे मूल पाठ के शब्दो, पदो और वाक्यो मे भिन्नता प्राप्त होती है। कौन-सा पाठ सही है और कौन-सा आरोपित ? इस प्रश्न का कोई समाधान नही मिलता। अत आगम-अध्येताओ के सामने एक बडी समस्या खडी हो जाती है।

आचार्यश्री ने लगभग पच्चीस वर्ष पूर्व आगमों के सुव्यस्थित और प्रामाणिक सम्पादन का सकल्प किया। सकल्प के अनुसार काम शुरू हुआ। पच्चीस-तीस साधु-साध्वियो की एक टीम जुट गई। प्रारम्भिक वर्षों मे अनुभव और साधन सामग्री की कमी के कारण जो काम हुआ, वह सन्तोषजनक नही था, किन्तु ज्यो-ज्यो काम करने का अनुभव बढ़ा, सामग्री सुलभ हुई, सम्पादित कार्य पर विद्वानो की अनुकूल प्रतिक्रिया हुई तो सम्पादन-कार्य को और अधिक व्यापक और वैज्ञानिक पद्धति से करने का निर्णय ले लिया गया। आचार्यश्री तुलसी के सफल निर्देशन मे युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ एक प्रमुख सम्पादक की भूमिका निभाते हुए आगम-कार्य को सतत आगे बढा रहे हैं। प्राय आगमो का मूल पाठ सशोधन का काम परिसम्पन्नता पर है। इसमे किसी प्रति-विशेष को प्रामाणिक न मानकर उपलब्ध सब प्रतियो का उपयोग किया गया है। चूर्णि, भाष्य, निर्युक्ति, टीका आदि आगमो के व्याख्यात्मक साहित्य मे उद्धृत पाठो को भी यथावश्यक काम मे लिया गया है। अनेक पाठो की उपलब्धि मे एक पाठ मूल मे रखकर शेष पाठो को पाठान्तर मे रख दिया गया है। आवश्यकता के अनुसार पाठ-टिप्पण भी दे दिए गए हैं। हिन्दी अनुवाद टिप्पण और समीक्षात्मक अध्ययन, लेखन का काम चल रहा है। आगम-सम्पादन का यह कार्य आचार्यश्री की अपूर्व देन है, जो युग-युग तक अविस्मरणीय रहेगी।

महिला-जागरण

कुछ दशक पूव तक राजस्थान की महिलाओ को अपने अस्तित्व का बोध नही था। वे अपने परिवार या समाज मे अर्धांगिनी की भूमिका निभाते हुए भी उपेक्षित और प्रताडित रहती थी। उपेक्षा और प्रताडना का वह सिलसिला आज समाप्त हो गया हो, यह बात नही है। फिर भी नारी चेतना के सभूयमान जागरण से अतीत की स्थितियो मे काफी बदलाव आ गया है। एक समय था जव स्त्रियाँ शिक्षा के क्षेत्र मे पिछडी हुई थी। सामाजिक, आर्थिक या राजनैतिक गतिविधियो मे उनका प्रवेश नही था। उनमे स्वतन्त्र चिन्तन की क्षमता विकसित नही थी। समाज की रूढ और अथहीन परम्पराओ को वे अपने जीवन का शृगार मानकर चलती थी। किसी भी कुरूढि को तोडने का साहस उनमे नही था। महिलाएँ स्वय ही महिला समाज की प्रगति मे बाधक बनकर अभिशापो का भार ढो रही थी। समाज मे विधवा स्त्रियों की स्थिति और अधिक दयनीय थी। वर्षों तक उन्हे मकान के एक कोने मे बैठकर जावन-यापन करना पडता था। उनकी वेशभूषा लाँछित होती थी और किसी भी माँगलिक कार्य मे उनकी उपस्थिति अशुभ मानी जाती थी। पग-पग पर अपमान, प्रताडनाएँ, विषमव्यवहार तथा शारीरिक एव मानसिक यातनाएँ। विकास की सारी सभावनाएँ वहाँ लुप्त थी।

आचार्यश्री ने महिला-समाज की चेतना को जागृत किया। उसे अपने अस्तित्व का

बोध कराया और 'नया मोड' कार्यक्रम के माध्यम से उन जीर्ण-शीर्ण तथा रूढ परम्पराओं को तोडने का आह्वान किया। एक तीव्र ऊहापोह के बाद समाज के वे अवांछित मूल्य एक झटके के साथ टूट गए। आज महिलाएँ अनेक कुरूढ़ियों से मुक्त हो चुकी हैं। महिला सगठनों के माध्यम से उनकी शक्ति का जागरण और उपयोग हो रहा है। इससे और कुछ हुआ या नहीं, पर महिलाओ का हौसला बढा है। उनकी स्थिति मजबूत हुई है और वे कुछ क्षेत्रो मे पुरुषो का पथ-दर्शन कर सकने की क्षमता अर्पित कर चुकी है। इस स्थिति के निर्माण मे यद्यपि युगीन परिस्थितियो का भी प्रभाव रहा है, किन्तु सामाजिक मानदण्डो को बदलने मे आचार्यश्री के प्रयत्न ही शीर्षस्थानीय बनकर ठहरते हैं।

युवा-शक्ति का आयोजन

युवक शक्ति का प्रतीक होता है। युवा-शक्ति का समुचित उपयोग हो तो देश और समाज का नक्शा ही बदल सकता है। शक्ति दो प्रकार की होती है—रचनात्मक और ध्वसात्मक। ध्वस की बात बहुत सरल है, जबकि रचनात्मक कार्य के लिए साधना की अपेक्षा रहती है। युवापीढी को सही नियोजक मिल जाए तो वह समाज का काया-कल्प कर सकता है। आचार्यश्री तुलमी की नियोजन-क्षमता बेजोड है। आपने धार्मिक आस्था से भटके हुए युवको को एक दिशा दी है, गति दी है और दिया है अनुकूल मोड। वर्षों से उपेक्षित युवा-पीढी आचार्यश्री की प्रेरणा पाकर अपने दायित्व के प्रति सजग हो गई है। युवक सम्मेलनो मे सैकडो-सैकडो प्रबुद्ध युवको की उपस्थिति इस तथ्य को प्रमाणित करती है कि धर्म के प्रति उनकी धारणाएँ बदली है। नैतिक मूल्यो के प्रति उनका दृष्टिकोण अधिक उदार बना है। अध्यात्म की चर्चा और उसके प्रयोग मे उन्हे रसानुभूति होती है। वे भौतिकता के एकागी विकास के दुष्परिणामो से सत्रस्त होकर चारित्रिक मूल्यो को समाज मे प्रतिष्ठा देना चाहते है। उनके इस परिवर्तन का प्रमुख कारण है रूढ परम्परावादी धर्म की आधुनिक सन्दर्भो मे प्रस्तुति। आचार्यश्री ने तेरापन्थ की मौलिक चिन्तनधारा को जिस रूप मे विश्लेषित किया है, कोई भी चिन्तनशील व्यक्ति उससे आकृष्ट हुए बिना नही रह सकता। आपने धर्म को धर्म-स्थानो और धर्मग्रन्थो की परिधि से मुक्त कर जीवन-व्यवहार में उसके प्रयोग पर बल दिया। स्वर्ग के प्रलोभन और नरक के भय से मुक्त होकर जो धर्माचरण किया जाता है, वही व्यक्ति का आलम्बन बन सकता है। इसके अतिरिक्त आचार्यश्री की हर प्रवृत्ति मे तारुण्य की अमिट झलक है, उसने भी युवापीढ़ी को झकझोरा है। युवा साधु-साध्वियो की यह प्रवर्धमान सख्या इस तथ्य का स्वयमू साक्ष्य है।

नई और पुरानी विचारधाराओ मे सामञ्जस्य

वैचारिक सघर्ष की दृष्टि से पिछले कुछ दशको का समय काफी विवादास्पद रहा। युवा और बुजुंआ पीढी के बीच विचार-भेद अस्वाभाविक नही है, किन्तु जिस समय वह विवाद का विषय बन जाता है, सघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। तेरापन्थ धर्मसघ मे भी कुछ ऐसा ही घटित हुआ है। परम्परावादी लोग प्राचीन धारणाओ के व्यामोह मे फँसकर नए मूल्यो को सर्वथा नकार रहे थे और नई पीढ़ी के प्रतिनिधि रूढ़ धारणाओ मे सशोधन

की बात पर अड़े हुए थे। भीतर ही भीतर प्रबल संघर्ष की स्थिति बनी और एक समय आया, जब उसका विस्फोट हो गया। उस समय दोनो वर्गों को एक साथ सभालना बड़ा कठिन काम था। क्योकि दोनो पक्षो का अपना-अपना आग्रह इतना पुष्ट था कि उनकी सीधी टकराहट की सभावना स्पष्ट थी। आचार्यप्रवर ने उस तनावपूर्ण वातावरण मे किसी भी पक्ष को उपेक्षित नही किया और किसी को अतिरिक्त प्रोत्साहन नही दिया। प्राचीन और नवीन धारणाओ मे समुचित सामञ्जस्य स्थापित कर आपने ऐसा मार्ग प्रस्तुत किया, जिस पर चलने मे किसी भी पक्ष को कठिनाई नही हुई। धर्मसघ की मौलिक विचारधारा को सुरक्षित रखते हुए नए मूल्यो को अपनी सहमति देकर आचार्यश्री ने अभूतपूर्व काम किया है। तेरापथ सघ की प्रगतिशीलता का सबसे बडा हेतु यह है कि इसकी जडे बहुत गहरे मे हैं और शाखाओ-प्रशाखाओ को विस्तार पाने के लिए सामने असीम अवकाश है। यहाँ शाश्वत मूल्यो की प्रतिष्ठा और सामयिक मूल्यो मे चिन्तनपूर्वक परिवर्तन का सिद्धान्त सहज रूप से स्वीकृत है। इस अभिक्रम से तेरापथ ने युग-चेतना को ही अभिभूत नही किया है, अपितु वह स्वय भी अधिक उजागर हुआ है। इस दिशा मे आचार्यश्री ने अनेकान्त को व्यवहार के धरातल पर उपस्थित कर हर विरोधी स्थिति को शान्तिपूर्ण पद्धति से निपटाने का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया है।

अणुव्रत आन्दोलन

एक धार्मिक परम्परा का वाहक सघ अपनी चिरपोषित परम्पराओ मे एक ओर हटकर व्यापक स्तर पर धर्म-क्रान्ति की चर्चा करे, यह एक नई बात होती है। सामान्यत धर्म सम्प्रदायो का काम होता है—धर्म की रूढ धारणाओ से जनता को परिचित कराना। यद्यपि तेरापन्थ धर्मसघ एक क्रान्ति की फलश्रुति है, फिर भी उसे एक सम्प्रदाय से अधिक कोई मान्यता प्राप्त नही थी। कुछ व्यक्ति तो इसे अन्य जैन-सम्प्रदायों के समकक्ष मान्यता देने के पक्ष मे भी नही थे। यही कारण है कि तेरापन्थ की मौलिक चिन्तनधारा को लगभग बीस दशको तक विरोधी ज्वाला का ताप झेलना पडा। किन्तु जब से अणुव्रत दर्शन की बात सामने आई, तेरापन्थ का स्वरूप बदल रहा है और उसके सम्बन्ध मे लोगो की धारणाएँ भी बदल गई है।

'अणुव्रत' राष्ट्रीय चरित्र को समुन्नत बनाने का अभिक्रम है। जिस समय राष्ट्र के नागरिको की नैतिक मूल्यो मे आस्था कम होने लगी, स्वार्थ चेतना विस्तार पाने लगी और जन-जीवन सत्रस्त हो गया, उस समय आपने व्यापक स्तर पर नैतिकता को प्रतिष्ठित करने का आह्वान किया। किसी सम्प्रदाय विशेष के आचार्य द्वारा एक असाम्प्रदायिक राष्ट्रीय अभियान चलाने का वह विरल अवसर तेरापन्थ धर्मसघ को मिला। प्रबुद्ध व्यक्ति अणुव्रत से प्रभावित हुए। समाचार पत्रो मे उसकी चर्चा हुई। लोगो ने समझा कि रूढता, शोषण, हिंसा, युद्ध, घृणा आदि धर्म के दोष है। जिस धर्म मे इनका प्रतिकार नही है, वह मानव धर्म नही हो सकता। धर्म के फलित है—रूपान्तरण, समता, अहिंसा, शान्ति और मानवीय एकता। आचार्यश्री ने अणुव्रत के मच से धर्म-क्रान्ति के पाँच सूत्र दिए—

१ बौद्धिकता

२ प्रायोगिकता

३ समाधान परकता

४ वर्तमान प्रधानता

५ धर्म सद्भावना

जो धर्म बुद्धिगम्य नही होता, जीवन की प्रयोग शाला मे जिसका कोई प्रयोग नही होता, जो जीवन की समस्याओ को समाधान नही दे सकता, जो वर्तमान के लिए उपयोगी न होकर केवल अतीत या भविष्य से अनुबन्धित है तथा जो सब धर्मों के प्रति समभाव का वातावरण नही बना सकता, वह धर्म अपने अस्तित्व के आगे एक प्रश्नचिह्न खडा कर देता है। आचार्यश्री के मन मे सब धर्मों के प्रति आदर के भाव है। आपने साम्प्रदायिक सद्भावना के लिए पच्चीस वर्ष पूर्व एक पञ्चसूत्री कार्यक्रम दिया था, जिसने भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो की पारस्परिक निकटता मे सेतु का काम किया है। वे पाच सूत्र हैं—१ मडनात्मक नीति, २ वैचारिक सहिष्णुता, ३ पारस्परिक सौहार्द, ४ सतुलित व्यवहार और ५ धर्म के मौलिक तत्त्वो के प्रचार हेतु सामूहिक प्रयत्न। इन्ही सब तथ्यो को ध्यान मे रखकर आचार्यश्री ने अणुव्रत की दीप-शिखा हाथ मे ली। अणुव्रत के आलोक से केवल लोक चेतना ही आलोकित नही हुई, तेरापन्थ धर्मसघ भी प्रभासमान हो उठा। आज तेरापन्थ की जो छवि राष्ट्र की प्रबुद्ध जनता के सामने है, उसका बहुत कुछ श्रेय अणुव्रत आन्दोलन को है, जो आचार्यप्रवर के उर्वर मस्तिष्क की देन है। अणुव्रत को आज एक राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रतिष्ठा प्राप्त है। ससद भवन मे 'अणुव्रत मच' की स्थापना इसका पुष्ट प्रमाण है।

अणुव्रत ने राष्ट्र मे व्याप्त भ्रष्टाचार के विरुद्ध एक सशक्त आवाज उठाई। जिस समय हर वर्ग के व्यक्ति का झुकाव अनैतिकता की ओर हो, उस समय नैतिक मूल्य उपेक्षित हो जाते है। यद्यपि नैतिकता और अनैतिकता समानान्तर रेखाओ मे सदा चलती रही है, पर यह निश्चित है कि यदि नैतिक मूल्यो की प्रतिष्ठा के लिए समय-समय पर विशेष अभियान न चले तो अनैतिकता सहज रूप से नैतिकता पर हावी हो सकती है। अणुव्रत सम्पूर्ण ससार को नैतिक बना देने का जिम्मा नही लेता, किन्तु अनैतिकता के बढते हुए प्रभाव को रोकने के लिए वह सदा तत्पर है। तेरापन्थ को एक युगीन धर्मसघ के रूप मे प्रस्तुति देने मे अणुव्रत की अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

प्रेक्षा-ध्यान साधना

आज का युग कुण्ठा, घुटन और तनाव का युग है। शरीर मे तनाव, मासपेशियो मे तनाव, मस्तिष्क मे तनाव और मन मे तनाव। कोई उपचार भी तो नही है इस तनाव की बीमारी का। जो व्यक्ति इससे अधिक आक्रान्त है, वे मादक औषधियो का सेवन कर क्षणिक विश्राम पाते है, किन्तु औषधि का प्रभाव समाप्त होते ही वे और अधिक तनावग्रस्त हो जाते हैं। यह बीमारी सम्पन्न और विपन्न, सत्ताधीश और श्रमिक, व्यापारी और कर्मकर सब लोगो को है। भारतवर्ष मे यह बीमारी जिस रूप मे बढ़ रही है, भारतेतर देशो मे उससे भी अधिक है। बढती हुई इस बीमारी के प्रतिरोध मे आचार्यश्री ने अध्यात्म की ऊर्जा जागृत करने का दिशा-दर्शन दिया। ऊर्जा-जागरण की अमोघ प्रक्रिया है 'प्रेक्षा-ध्यान'। प्रेक्षा

का अर्थ है विशेष रूप से देखना। श्वास, शरीर, सूक्ष्म शरीर, चैतन्य-केन्द्र और स्पन्दनो की प्रेक्षा करने से मन एकाग्र हो जाता है। मानसिक एकाग्रता की स्थिति मे तनाव कम होता है। प्रेक्षा ध्यान की साधना के लिए दस-दिवसीय शिविर मे प्रशिक्षण प्राप्त किया जाता है। अब तक ऐसे कई शिविरो का समायोजन हो चुका है। शिविर-साधको के अनुभव व सस्मरण चमत्कृत कर देने वाले है। अनेक साधको ने प्रेक्षा का प्रयोग कर अपने जीवन को आमूल रूपान्तरित कर लिया है। कुछ साधक मादक पदार्थों के नशे से सर्वथा मुक्त हो गए। कुछ साधको की अस्तव्यस्त चर्या व्यवस्थित हो गई। कुछ साधक अपनी उत्तेजना-मूलक वृत्ति मे आकस्मिक परिवर्तन अनुभव कर रहे है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि प्रेक्षा का प्रयोग शरीर, मन और आत्मा सबकी स्वस्थता के लिए आवश्यक है। जैन विश्वभारती का 'तुलसी अध्यात्म नीडम्' अपने 'प्रज्ञा प्रदीप' [ध्यान कक्ष] मे प्रति दिन प्रेक्षा ध्यान प्रशिक्षण की व्यवस्था कर रहा है। शिक्षा, साधना, शोध, सस्कृति और सेवा के क्षेत्र मे युगपत् काम करने वाला सस्थान 'जैन विश्वभारती' अपने आप मे एक नया प्रयोग है, यह तेरापन्थ धर्म-सघ को आचार्यश्री के शासनकाल की विशिष्ट उपलब्धि है। जैन विश्वभारती के तत्त्वावधान मे ध्यान साधना की अग्रिम सभावनाओ को लेकर प्रबुद्ध लोगो को बहुत-बहुत आशाए है। आचार्यश्री ने भी उन सभावनाओ को साकार रूप देने के लिए अपने महाप्रज्ञ शिष्य मुनिश्री नथमल जी को प्रेक्षा-प्रशिक्षक के रूप मे नियुक्त कर दिया है तथा अन्य साधु-साध्वियो को भी विशेष प्रेरणा दे रहे हैं। आने वाला दशक प्रेक्षा ध्यान की उपलब्धियो का जीवन्त प्रतीक होगा, ऐसा प्रतीत होता है।

आचार्यश्री तुलसी एक सुधारवादी आचार्य है। आप मानव सुधार की योजना क्रिया-न्वित करने के लिए जन-जन को जीने की कला सिखा रहे है। जीवन-कला से अनभिज्ञ व्यक्ति दूसरी-दूसरी कलाओ मे निष्णात होकर भी कला-मर्मज्ञ नही बन सकता। इसीलिए आचार्यप्रवर न सर्वोपरि मूल्य जीवन-कला को दिया है। उसके साथ अन्य कलाओ को भी आपने उपेक्षित नही किया, क्योकि कला के प्रति आपका सहज झुकाव है। आपके जीवन की कोई भी गतिविधि कला-शून्य नही है। आप स्वय कलात्मक जीवन जीते ह और अपने धर्म-सघ मे कला-साधना के अभ्युदय पर विशेष ध्यान दे रहे है। यही कारण है कि साधु-साध्वियो मे लिपिकला, चित्रकला, पात्र-निर्माण कला, सिलाई कला, सगीत कला, वक्तृत्व कला, लेखन कला, अध्ययन-अध्यापन की कला और रहन-सहन की कला आदि सभी क्षेत्रो मे उत्तरोत्तर निखार आ रहा है। आचार्यश्री की यह कला-प्रियता व्यावहारिक सुघडता से शुरू होकर जीवन के बहु-आयामी व्यक्तित्व के निर्माण तक एकरूप से प्रवर्धमान रही है। इसके द्वारा आपने तेरापन्थ धर्मसघ को भीतर और बाहर दोनो ओर से प्रगतिशील बनाया है। आचार्य भिक्षु ने दर्शन, ज्ञान और चरित्र की जिस निर्मल साधना के लिए एक धर्मसघ की नीव डाली थी, वह आचार्यश्री तुलसी के प्रयासो से अधिक गहरी हुई है। समय के सागर मे उठा हुआ कोई भी तूफान इसे प्रकम्पित करने मे अक्षम है। आचार्यप्रवर का कुशल और सक्षम नेतृत्व युग-युग तक तेरापन्थ को नई देन देता रहेगा तथा सघ के ओज और तेज को बढाता रहेगा, यह विश्वास है।

— o —

११४।३-२७[1]

मुनि श्री अनोपचन्द जी (नाथद्वारा)

(सयम पर्याय स० १८६२-१६२६)

—मुनि नवरत्नमल

(लय—पीर-पीर क्या ...)

देखो रूप अनूप सत का कर सज्जन सब गौर ।
विकसित होगी तन की कलिया पुलकित मन का मोर ।।देखो
मेदपाट मे नाथद्वारा, राज्य 'गुसाईंजी' का सारा ।
थे तिलेसरा नदलालजी के सुत कुसुम किशोर[2] ।। देखो ।।१।।
परिजन जन का बहु मेल मिला, धन सपद् से गृह कमल खिला ।
तूठ गया है भाग्य देवता आई मगल भोर ।।२।।

दोहा

भगिनी लघु थी आपकी, चपा जिसका नाम ।
दीक्षित पहले आपसे, हो पाई निष्काम[3] ।।३।।

---

१ [स्वामी जी से लेकर अद्यावधि दीक्षित समस्त साधु-साध्वियो की सूची रहती है, उसी सख्याक्रम का सूचक ११४ अक यहाँ दिया गया है । अत सर्वत्र साधु-साध्वियो के नाम के आगे दी गई क्रम सख्या को उक्त प्रकार समझना चाहिए । साधु और साध्वियो की सूची पृथक्-पृथक् है । ३।२७ का तात्पर्य तीसरे आचार्य श्री रायचन्द जी के समय दीक्षित २७वे साधु से है ।]

२ मुनि श्री नाथद्वारा (मेवाड) के नदलाल जी तलेसरा के पुत्र थे । उनकी माता का नाम दोलाजी था ।

जनक नदोजी नीको श्रावक, श्रीजीदुवारै र ।
माता दोला अगज अनोपचदजी वश उद्धारै रे ।।

(मुनि जीवोजी (८६) कृत गुण वर्णन ढाल १, गा० २)

वासी श्रीजीद्वार ना हो मुनिजन, नदराम नो नद कै ।
जाति तलेसरा जेहनी हो गुणिजन, अनोपचद नाम गुण वृ द कै ।।

(मघवागणि रचित ढाल १, गा० १)

३ मुनि श्री की छोटी बहन साध्वी श्री चपाजी (१४०) ने उनसे पहले स० १८९१ मे दीक्षा ली ।

(ख्यात)

लय मूल

फिर विरति अनूप भावना मे, रुचि निखरी आत्म-साधना मे।
मुनि स्वरूप से पाये सयम होकर हर्ष विभोर[1] ।।४।।

---

१ मुनि श्री के दिल मे वैराग्य भावना उत्पन्न हुई तब वे दीक्षा की स्वीकृति पाने के लिए प्रयत्न करने लगे। एक दिन उन्होने अपने चाचा कुशलचद जी से कहा—आप मुझे माता-पिता के द्वारा दीक्षा लेने की अनुमति दिलवाए तो मै आपका बहुत उपकार मानूगा। मुझे यह सारी सासारिक माया स्वप्न की तरह लग रही है, मैं जल्दी से जल्दी सयम लेना चाहता हू, मेरा एक-एक दिन वर्ष के बराबर जा रहा है। जब तक दीक्षा की आज्ञा न मिलेगी तब तक मेरे १ खुले मुह बोलने का २ घर का काम करने का ३ व्यापार करने का ४ कच्चा जल पीने का त्याग है। चाचा ने कहा—तुम धैर्य रखो, मैं वचन देता हू कि अगर तुम्हारा पक्का मन है तो कोशिश करके तुम्हे दीक्षा दिलाऊँगा। उन्होने मुनि श्री (अनोपचद जी) के पिता को शान्तिपूर्वक समझाया तब वे सहमत हो गये।

मुनि श्री के माता-पिता एव पारिवारिक लोगो ने बडी धूमधाम से दीक्षा का उत्सव मनाया। वे साधु वेश पहनकर मुनि श्री सरूपचन्द जी के चरणो मे प्रस्तुत हुए और पिता नदराम जी ने हर्ष सहित अपने पुत्र को दीक्षा प्रदान करने के लिए मुनिश्री से निवेदन किया।

(**मुनि जीवोजी कृत ढाल** १ गा ३ से १२ के आधार से)

इस प्रकार स० १८९२ चैत्र वदि ८ गुरुवार को नाथद्वारा मे पत्नी वियोग के बाद उन्होने भरापूरा परिवार एव बहुत ऋद्धि को छोडकर मुनि श्री सरूपचदजी (६२) द्वारा दीक्षा ग्रहण की।

चैत मास मे चूप सू, श्रीजीद्वारै आय।
अनोप नै चारित दीयो, बड तपसी मुनिराय ।।

(**सरूप नवरसो ढाल** ७ दो ४)

समत अठारै बाणुवै हो, चैत शुक्ल श्रीकार कै।
अष्टमी सयम आदर्यो हो, तजी ऋद्धि परिवार कै।

(**मघवागणि विरचित ढाल** १ गा ४)

स० १८९२ चैत्र सुदि ८ को मुनि सरूपचद जी द्वारा दीक्षा ली।

(**ख्यात**)

सवत् अठारै बाणुवैं, चैत वदि आठम ताय।
रायऋषि रै आगलै, सजम लियो सुखदाय ।।

(**श्रावक द्वारा रचित ढाल** १ दो २)

समत अठारै वरस बाणुअै, चेत मास विध रे ।।
तिथ आठम नै गुरुवार अनोपजी, चारित लै सुध रे ।।

(**मुनि जीवोजी कृत ढाल** १ गा १)

विनयी वैरागी दृढ त्यागी, नय नीति निपुण गुण के रागी ।
साधु क्रिया में जुडे एक रस लो सब शक्ति बटोर ।।५।
लेखन करते थे द्रुत गति से, लिख पाये प्रतिया बहु धृति से ।
कभी कभी ले लेते दिन में चार पत्र का छोर[1] ।।६।।

उक्त सदर्भो के अन्तर्गत **सरूप-नवरसा** मे मुनि श्री की दीक्षा केवल चैत्र महीने मे लिखी है । बाद मे मघवागणी रचित तथा **ख्यात** मे चैत्र शुक्ला ८ है । उसके पूर्व की किसी श्रावक द्वारा कृत ढाल मे चैत्र बदि ८ है तथा मुनि जीवोजी (८६) द्वारा निर्मित ढाल मे चैत्र बदि ८ के साथ वार भी गुरुवार लिखा है । मुनि जीवोजी रचित ढाल सबसे प्राचीन और दीक्षा के दिन ही बनाई हुई है और उसमे दीक्षा मे सबन्धित पूरा विवरण है, अत उसे ही प्रमाणित मानना अधिक सगत होगा ।

इससे यह सिद्ध हो जाता है कि मुनिश्री की दीक्षा तिथि चैत्र बदि ८मी थी । **ख्यात** तथा मघवागणि रचित ढाल मे दीक्षा तिथि चैत्र शुक्ला ८ भूल से लिखी गई मालूम देती है।

मुनि जीवोजी कृत ढाल मे एक विशेष विवरण और भी प्राप्त होता है कि उन्होने भर यौवन के समय स्त्री की विद्यमानता मे ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार कर लिया था ।

चढता जोवन मे सुदर जीवत, सील आदरीयो रे ।
एक चारित चित माहै वसीयो, वैरागी तप सू तिरीयो रे ।।

(मुनि जीवोजी (८६) कृत ढाल १ गा १७)

इससे प्रमाणित होता है कि आप विवाहित थे । कही-कही (सेठिया सग्रह आदि मे) जो ऐसा उल्लेख मिलता है कि आप विवाहित नही थे, वह उक्त आधार से सही नही है ।

मुनि जीवोजी की ढाल तथा अन्य कृतियो मे भी ऐसा उल्लेख नही पाया जाता कि आपने पत्नी के जीवित काल मे दीक्षा ली । इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि आप पत्नी-वियोग के बाद ही दीक्षित हुए ।

१ मुनिश्री ने लाखो पद्य लिखे । मघवागणि रचित ढा० गा० ३ मे है—

"वलि लाखा ग्रथ लिख्यो मुनि हो, वारु उद्यम अधिक उदार के ।"

उनकी लेखनी बहुत द्रुत गति से चलती थी । दिन मे ४,५ पन्नो तक लिख लिया करते थे । उनके अक्षर 'चीडी खोजिए' (टेढे-मेढे) थे, पर अशुद्धिया विशेष नही आती थी । उनकी लेखन गति के विषय मे जयाचार्य एक पद्य फरमाया करते थे ।

"एक पानो रगड्यो, दोय पाना रगड्या तीजो पानो रगडे रे ।
चोथो पिण कर देवै त्यार, पछै पाचवा सू झगडे रे ।।
अनोपचद अणगार उठ्यो कर्मा ने रगडे रे ।।"

(लय-पीलो रंगा छो.....)

तरुण तपस्वी-तरुण तपस्वी, संत अनूप कहाये, साधक जन में। तरुण ।
परम-यशस्वी-परम यशस्वी, स्थान ऊर्ध्वतम पाये, साधक जन में। तरुण ध्रुव।
कलयुग मे सतयुग सी सचमुच, तप की धारा खोली। साध.....।
साहस रस नस-नस मे भरकर, बोली ऊंची बोलो ॥ सा ७॥
वज्रऋषभनाराच सहनन, नही इस समय होता।
किन्तु श्रमण ने कर दिखलाया, उससे भी समझौता ॥८॥
तप की श्रुति से अथवा स्मृति से सबका शिर डोलाता।
अथ से लेकर इति तक सारी, सख्या सम्मुख लाता[1] ॥९॥

---

१ मुनिश्री बड़े उग्र तपस्वी हुए है। उनकी तपश्चर्या का वर्णन रोमाचकारी है। पढने से लगता कि वे तपस्या मे एक रस हो गये थे। खाने-पीने आदि मे रुचि नही रही थी। एक श्रावक द्वारा रचित गीतिका मे वर्षों के क्रम से उनकी तपस्या का विवरण इस प्रकार मिलता है

स० १८९२ मे—२१ दिन, ९ दिन का आछ के आगार से तप किया।
स० १८९६ मे—६३ ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
स० १८९७ मे— ८ ,, पानी ,, ,, ,, ,, ,,
स० १८९८ मे—३७ ,, आछ ,, ,, ,, ,, ,,
स० १९०३ मे— ८ ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
स० १९०५ मे—१०९ ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
स० १९०६ मे— ४ ,, पानी ,, ,, ,, ,, ,,
स० १९०७ मे—७७ ,, आछ ,, ,, ,, ,, ,,
स० १९०८ मे—१३ ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
स० १९०९ मे—१८७ ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
स० १९१० मे—१९३ ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
स० १९११ मे—१८१ ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
स० १९१२ मे—२१८ ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
स० १९१३ मे—५३ ,, पानी ,, ,, ,, ,, ,,
स० १९१४ मे—४८ ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
स० १९१५ मे—१९३ ,, आछ ,, ,, ,, ,, ,,
स० १९१६ मे—३०७ ,, पानी ,, ,, ,, ,, ,,
स० १९१७ मे—३८,४,५,७,१७ और ५ दिन पानी के आगार से किये।
स० १९१८ मे—१० दिन चौविहार, ११,१२ पानी के आगार से किये। १२ मे तीन दिन पानी पिया।
स० १९१९ मे—२१ दिन मे १० दिन चौविहार किये, ७ मे दो दिन पानी पिया एव ४ थोकडे और किये।

स० १९२० मे—१६ दिन मे ९ दिन चौविहार किये तथा १५,१४,१८,१९ पानी के आगार से किये।

स० १९२१ मे—२०,२२,२३ पानी के आगार से किये।
स० १९२२ मे—४१ दिन पानी के आगार से किये।
स० १९२३ मे—३५ „ „ „ „ „ „
स० १९२४ मे—फुटकर तप किया।
स० १९२५ मे— „ „ „
स० १९२६ मे— „ „ „
स० १९२७ मे—५ दिन चौविहार किये।
स० १९२८ मे—५७ दिन गर्म पानी के आगार से किये।
स० १९२९ मे—१५ दिन चौविहार किये फिर सोलहवे दिन पानी पिया,
१७वे दिन तपस्या मे दिवगत हुएँ।

ख्यात तथा **शासन प्रभाकर** मे आपकी चोले से ऊपर की तपस्या का विवरण इस प्रकार है—

४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१५	१६	१७
२	२	२	२	२	२	३	३	१	१	३	३	१

१८	१९	२०	२१	२२	२३	३०	३५	३७	३८	४१	४२	४५
१	१	१	२	२	२	२	१	१	२	१	१	१

४८	५३	५५	५७	६३	७७	९४	९५	१०९	१८१	१८७	१९३	२१८
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१

उपवास से तेले तक की सख्या उपलब्ध नही है। **ख्यात** तथा **ढाल** मे कुछ भिन्नता है—

ख्यात	ढाल
९४	नही
९५	नही
३८ के २	३८ का १
३० के २	३० का १
२३ के २	२३ का १
२२ के २	२२ का १
१६ के ३	१६ का १
१५ के ३	१५ के २
११ के ३	११ का १
१० के ३	१० का १
९ के २	९ का १
६ के २	६ का १
५ के २	५ के ३

चोथ भक्त से तीन बीस तक, लडी बद्ध कर पाये ।
चौदह दिन का अक छोडकर, क्रमश ऊर्ध्व चढाये[1] ॥१०॥
चार साल तक लगातार तप, किया बडा मुनिश्री ने ।
तीन छहमासी, एक बार तो साधिक सात महीने[2] ॥११॥
उनमे पहली एक साथ मे, पचखी है छहमासी ।
नौ की सवत् कोशीथल मे, पाई है स्याबासी[3] ॥१२॥

ढाल मे चार थोकडे करने का उल्लेख है ।

नोट—ख्यात तथा ढाल मे स० १९०९ मे आपकी तपस्या १८७ दिन की लिखी है, पर जय सुजश मे १९१ दिन एक साथ पचखने का उल्लेख है ।

त्या तपसी अनोप सु तत, आय अरज करी ।
दिन एक सौ इकाणु भदत, पचखावो हित धरी ॥
जल आछण आगार, रीति मुनिवर तणी,
पचखायो तप सार, मनुहार कर गण धणी ।
(**जय सुजश** ढा ३८ गा ३)

मघवागणी रचित ढाल मे उनकी बडी तपस्या का वर्णन ख्यात के अनुसार है ।

१ चौथ भक्त थी लेई करी हो गुणी० तेवीस लग सुविचार कै ।
एक चवदै बिना मुनि तप कियो हो, केई एक बार बहु वार कै ॥
(**मघवागणी रचित** ढा १ गा ५)

२ मुनिश्री ने कुल चार छह मासिया एव एक सवा मातमासी की । उनमे तीन छहमासिया और एक सवा सातमासी लगातार चार साल स० १९०९ मे (१८७ अथवा १९१ दिन), स० १९१० मे (१९३ दिन), स० १९११ मे (१८१ दिन) और स० १९१२ मे (२१८ दिन) की ।

३ चार छह मासियो मे पहली छहमासी (१८७ या १९१) स० १९०९ मे कोशीथल मे जयाचार्य द्वारा एक साथ पचखी । इस सबध मे **जय सुजश** ढा ३८ की गा ३ ऊपर दे दी गई है ।

स० १९१० मे की गई दूसरी छहमासी का स्थान प्राप्त नही है ।

दोहा

किया तीसरा छह मासी का, पुण्य 'पारणा' भारी ।
योग मिला श्री जयाचार्य का, मेला लगा प्रियकारी[1] ।।१३।।
चौथी छहमासी चदेरी में, एक साथ फिर पचखी ।
मालव मे जा किया पारणा, आत्म शक्ति को परखी[2] ।।१४।।

---

१ स० १९११ मे मुनिश्री ने तीसरी बार छहमासी (१८१ दिन) की, उसका पारणा जयाचार्य ने झखणावद मे पोष महीने मे करवाया ।

पोष मास झखणावद मे, तपसी अनोप नै ताम ।
आछ आगार षट् मास नो, पारणो करायो स्वाम ।।

(**मघवा सुजश** ढा ५ दो २)

मुनिश्री की छहमासी के पारणे के असवर•पर मुनिश्री शिवजी (७८) भी पेटलावद चातुर्मास कर झखणावद आ गये थे। वहा उन्होने भी ८ दिन का तप किया था। इसका उनके गुण-वर्णन की ढाल मे उल्लेख मिलता है—

मुनि थे तो चरम चौमासो अमद, कियो पटलावद रा। तपसीजी।
मुनि थे तो विहार करी सुखदाया, जखणावदे आया रा। ,,
मुनि तिहा अनोपचद सुविमासी, करी खट मासी रा। ,,
मुनि तिहा थे पिण करी अठाई, पारणो सग लाई रा। ,,
मुनि तिहा अनोप नै पारणो करायो, जीत ऋषि आयो रा। ,,
मुनि तिहा सत सत्या रा थाट, अति गहघाट रा। ,,

(**शिव मुनि गु ब.** ढा १ गा ४६ से ५४ तक)

स० १९१२ मे मुनिश्री का चातुर्मास राजनगर था। फिर वे नाथद्वारा आये। वहा जयाचार्य ने उनको सवा सातमासी (२१८ दिन) का पारणा करवाया।

श्रीजीद्वार पधारिया रे, तिहा तपसी काकडाभूत ।
अनोपचद बे सो अठारा आछ ना रे, पारणो करायो अदभूत ।।

(**मघवा सुजश** ढा ५ गा ६)

जय सुजश ढा २३ गा २७,२८ मे भी इसका उल्लेख है।

२ मुनिश्री की स० १९१५ की चौथी—अन्तिम छहमासी का (१९३ दिन) बडा रोचक सस्मरण है। स० १९१४ के शेषकाल मे जयाचार्य लाडनू विराज रहे थे। तपस्वी मुनि ने गुरुदेव से प्रार्थना की—कल से मै एक महीने की तपस्या करना चाहता हू। आचार्य श्री ने प्रबल भावना देखकर उनको स्वीकृति दे दी। उन्होने सायकाल का भोजन (धारणा) भी कर लिया। वे पचमी समिति के लिए जाने लगे तब साध्वी प्रमुखा सरदाराजी ने उनसे कहा—आज कुछ घी अधिक आ गया है, उसे आपको उठाना (खाना) है। वे बोले मैने आहार कर लिया है, अब मुझे भूख नही है। महासती ने कहा—"आप जैसे तपस्वी सतो के क्या पता लगता है, किसी कोने मे पडा रहेगा।" अच्छा! आपकी जैसी इच्छा हो। साध्वी प्रमुखा ने एक सेर लगभग घी उनको दिया

पत्र चार सौ सग लिये फिर, लेखन स्याही काली ।
प्रतिदिन लिखते पथ मे केवल, गया एक दिन खाली[1] ॥१५॥
उष्ण छाछ का नितरा पानी, 'आछ' नाम से नामी ।
सेर पच्चीस के लगभग दिन मे, पी सकते गुणधामी[2] ॥१६॥

और वे उसे कढी आदि मे मिलाकर पी गये । समय की बात थी कि रात मे अपच हो गया, जिससे उनको काफी दस्त लगे । शरीर बहुत अस्वस्थ और कमजोर हो गया । प्रात काल जब उन्होने जयाचार्य के दर्शन किये तब आचार्यप्रवर ने फरमाया—तपस्वी ! अब वह मासखमण करने का विचार मत रखना, क्योकि रात मे तुम्हारे बहुत अस्वस्थता रही ।" तपस्वी ने कहा—गुरुदेव ! मैने वह विचार छोड दिया है । अब तो आप कृपा कर मुझे छहमासी पचखा दीजिए । तपस्वी के ये पुरुषार्थ भरे वचन सुनकर सब देखने वाले तथा स्वय जयाचार्य विस्मित हो गये । आखिर तपस्वी ने बहुत आग्रह भरे शब्दो मे निवेदन किया तो जयाचार्य ने उनको आछ के आगार मे एक साथ छहमासी पचखा दी । वे बडे प्रसन्न हुए ।

जयाचार्य ने उनसे पूछा—तुम्हे किसी प्रकार की चाह हो तो कहो । उन्होने कहा—मुझे दो, तीन सौ कोश का विहार के लिए आदेश दे । तपस्वी की इस माग को सुनकर सभी आश्चर्य चकित हो गये । सोचा तो यह गया था तपस्वी मनोनुकूल क्षेत्र और अपनी सेवा मे रखने के लिए विशेष साधुओ के लिए निवेदन करेंगे, पर तपस्वी की माग तो निराली ही रही । आचार्यवर ने फरमाया—तपस्या मे इतना लम्बा विहार कैसे होगा ? मुनिश्री बोले—मुझे आहार तो करना नही हैं, चलता रहूगा । तब आचार्यश्री ने उनको मालव प्रान्त मे आने का आदेश दिया ।

गुरुदेव ने उनको दूसरी माग के लिए फिर कहा तो उन्होने कहा—मुझे ४०० पन्ने लिखने के लिए दे दीजिए । आचार्यश्री बोले—इतने लम्बे विहार मे इतना लिखना कैसे सभव होगा ? तपस्वी ने कहा—भगवन् ! मेरे काम क्या है ? खाना तो है नही, यथासमय सुबहशाम चलता जाऊगा और दिन मे आलस्य न आये इसलिए लिखता रहूगा ।" तपस्वी की दूसरी माग भी पूरी की । उन्होने वहा से विहार किया । रास्ते मे निरन्तर लिखना चालू रहा । कभी-कभी ४-५ पन्नो तक लिख लेते थे । इस प्रकार ४०० पन्ने लगभग लिखे एव मालव प्रदेश मे जाकर १६३ दिन का पारणा किया । कहा जाता है कि पारणे के दिन उन्होने १६६ घरो की गोचरी की ।

(अनुश्रुति के आधार से)

१ मुनिश्री रास्ते मे प्रतिदिन लिखते थे । केवल एक दिन खाली गया ।

२ मुनिश्री आछ के आगार से की गई तपस्या के एक दिन मे अधिक से अधिक २५ सेर लगभग आछ का पानी पी लेते थे ।

दु षह परिषह शीतादिक के, सहन किये हैं भारी।
कर्म निर्जरा कर कर भरली, सुकृत सुधा रस क्यारी ॥१७॥
चौविहार पन्द्रह दिन करके, पिया एक दिन पानी।
तन में कृशता आई कुछ पर, चढ़ती भाव जवानी ॥१८॥
सप्त दशम दिन देवरिया में, देवलोक पहुचाये।
सयम तप के शिखरो चढ़कर, नाम अमर कर पाये[1] ॥१९॥

लय-मूल

धन्य-धन्य वे महामना है, खोल दिया तप का झरणा है।
श्रद्धानत ससार झांकता क्षण-क्षण उनकी ओर ॥२०॥
जय-जयकारी भैक्षव शासन जय-जयकारी तरुण तपोधन।
जन-जन मुख से जय-जय ध्वनिया उठती चारो ओर ॥

दोहा

दीक्षा उनके हाथ से, हुई सत की एक[2]।
चातुर्मासिक क्षेत्र का, मिलता कुछ उल्लेख[3] ॥२२॥

---

१ स० १९२९ मे देवरिया (**ख्यात** मे नवैशहर देवरिया लिखा है) ग्राम मे उन्होने १५ दिन चौविहार किये, १६वे दिन पानी पिया और १७वे दिन अचानक **स्वर्ग प्रयाण** कर दिया।

शहर देवरियो दीपतो हो, पडित मरण उछाह।
अनोप तपसी हद लियो हो, पद आराधक लाह ॥

(मघवागणि रचित ढा १ गा १५)

२ **ख्यात** मे उल्लेख है कि मुनिश्री अनोपचदजी ने स० १९०५ मे मुनिश्री ज्ञानजी (१५२) को दीक्षा दी।

३ मुनिश्री के अग्रणी होने का सवत् नही मिलता पर कुछ चातुर्मास इस प्रकार मिलते है।

स० १९११ मे उनका चातुर्मास झकनावद था। **जय सुजश** ढा ४१ गा २ मे चातुर्मास के आदेश का उल्लेख है। वहा उन्होने छहमासी तप किया था। उसका झकनावद मे पोष महीने मे जयाचार्य ने पारणा कराया था, ऐसा **मघवा सुजश** ढा ५ दो २ मे उल्लेख है।

श्रावको द्वारा लिखित प्राचीन चातुर्मासिक तालिका के अनुसार स० १९१२ मे मुनिश्री का ५ ठाणो से चातुर्मास राजनगर था।

स० १९१६ मे ३ ठाणो से जोधपुर चातुर्मास था। साथ मे मुनि कपूरजी (१०९) और घणजी (१३१) थे। ऐसा पचपदरा के श्रावको के प्राचीन पत्रो मे उल्लेख मिलता है।

स० १९२३ मे मुनिश्री जयाचार्य के साथ बीदासर चातुर्मास मे थे। वहा उन्होने ३५ दिन का तप किया।

गुण कीर्त्तन की ढाल दो, ख्यात आदि में बात।
मिलती मुनि संबध मे, करलो पढकर ज्ञात[1]।।२३।।

अनोपचद तपसी अमल, थोकडो तप पणतीस।
उदक आगार चउविहार के, वर तप विश्वावीस।।

(जय सुजश ढा ५१ दो ३)

स० १६२२ के शेषकाल मे भी वे जयाचार्य के साथ थे, इसका जय सुजश मे उल्लेख मिलता है कि जयाचार्य रामपुरा पधारे तब उन्होंने मुनिश्री को सम्बोधित कर एक शिक्षात्मक सोरठा फरमाया था।

दिन-दिन बिनय दिनेश, अतर उजुवालो अधिक।
वाधे सुयश विशेष, ताजक सीख तिलेसरा।।

(जय सुजश ढा ५० सो ३)

शेष चातुर्मास प्राप्त नही है।

१ मुनिश्री के गुण वर्णन की ढाल १ मघवागणी द्वारा स० १६४५ के सरदारशहर चातुर्मास मे रचित है। दूसरी ढाल किसी श्रावक द्वारा स० १६३५ कार्त्तिक बदि १३ को चूरू मे रची हुई है।

उक्त दोनो ढाले प्राचीन गीतिका सग्रह मे सकलित है।

ख्यात तथा **शासन प्रभाकर**, ऋषिराय सत वर्णन गा १२० से १३२ मे भी उनके सबध का विवरण है।

— ० —

पाँच मुक्तक

मुनि मोहनलाल "शार्दूल"

(१)

तोली जाये तो हर बात तुल जाए,
खोली जाये तो हर गाँठ खुल जाए।
यह सब आदमी पर ही निर्भर है,
वह धोए तो हर चद्दर धुल जाए॥

(२)

हार को जीत मे बदलने की कला सीखो,
रुदन को गीन मे बदलने की कला सीखो।
अगर जिंदगी की असलियत को पाना है तो
बैर को प्रीत मे बदलने की कला सीखो॥

(३)

कर्म नही है तो नारो से क्या होगा,
आदर्श नही है तो आकारो से क्या होगा।
बलिदान की घडी मे तो भाग खडे होते हो,
वीर काव्यो मे लिखी हुकारो से क्या होगा॥

(४)

काम धोखे का है, बात ईमान की है,
पूजा शैतान की है, चर्चा भगवान् की है।
दुनियाँ की दु ख दुविधा, मिटे तो कैसे मिटे,
सीरत हैवान की है, सूरत इन्सान की है॥

(५)

समझ कम है लेकिन समझ का भार ज्यादा है,
प्यार कम है पर प्यार का इजहार ज्यादा है।
दिखावे के इस जमाने मे जन्नत में भी देखो,
काम कम है पर काम का प्रचार ज्यादा है॥

—.०—

श्रीमज्जयाचार्य रचित 'झीणी चर्चा'

(मूल एव हिन्दी अनुवाद)

सम्पा० एव अनु०—मुनि नवरत्नमल

(गताङ्क से आगे)

ढाल—३

दोहा

१ उदै निपन उपशम निपन, खायक निपन पिछाण।
बले खयोपशम निपन तणो, निरणय तीजी ढाले जाण।।

उदय-निष्पन्न, उपशम-निष्पन्न, क्षायक-(क्षय) निष्पन्न तथा क्षयोपशम-निष्पन्न का विवेचनात्मक निर्णय तीसरी ढाल मे किया जा रहा है।

[लय—प्रभवो मन में चितवै]

१ उदै निपन कर्म आठ नो, उपशम निपन एक सार।
खायक निपन आठा तणो, खयोपशम निपन च्यार।।

उदय-निष्पन्न आठ कर्मों का, उपशम-निष्पन्न एक कर्म (मोह) का, क्षय-निष्पन्न आठ कर्मों का और क्षयोपशम-निष्पन्न चार कर्मों (ज्ञानावरणीय, दर्शणावरणीय, मोहनीय, अतराय) का होता है।

२ छ कर्म उदै निपन सुणो, छ द्रव्य मे जीव ताहि।
नव तत्त्व मे पिण जीव इक, सावद्य निरवद्य नाहि।।

छह कर्मों (मोह और नाम को छोडकर) का उदय-निष्पन्न छह द्रव्यो मे एक जीव और नव तत्त्वो मे भी एक जीव हे। पर वह सावद्य (पाप सहित) और निरवद्य (पाप रहित) नही है।

३. मोह कर्म उदै निपन ते, छ द्रव्य माहि जीव।
नव मे जीव आश्रव अशुभ छे, सावद्य कह्यो सदीव।।

मोह कर्म का उदय-निष्पन्न छह द्रव्यो मे एक जीव और नव तत्त्वो मे दो—जीव और आश्रव है। आश्रव मे मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और अशुभ योग आश्रव है। उसे सदैव सावद्य ही कहा है।

४. नाम कर्म उदै निपन ते, छ द्रव्य मांहि जीव।
नव में जीव आश्रव कह्यो, शुभ जोग आश्रव कहीव ॥

नाम कर्म का उदय-निष्पन्न छह द्रव्यो मे एक जीव और नव तत्त्वो मे दो—जीव और आश्रव हैं। आश्रव मे उसे शुभ योग आश्रव कहा गया है।

५ मोह कर्म उपशम निपन ते, छ द्रव्य मांहि जीव।
नव मे जीव सवर कह्यो, उत्तम गुण है अतीव ॥

मोह कर्म का उपशम-निष्पन्न छह द्रव्यो मे एक जीव और नव तत्त्वो मे दो—जीव और सवर है। जो आत्मा के श्रेष्ठतम गुण है।

६ उदै निपन उपशम निपन, दाख्यो है दिल पाक।
खायक निपन कहू हिवै (ते) निसुणो तज छाक ॥

उदय-निष्पन्न तथा उपशम-निष्पन्न का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन कर दिया गया है। अब क्षय-(क्षायक) निष्पन्न का उल्लेख कर रहा हू, उसे सभी आलस्य और प्रमाद को छोडकर सुनें।

७ ज्ञानावरणी खायक निपन ते, छव मे जीव पिछाण।
नव मे जीव ने निर्जरा, केवलज्ञान सुजाण ॥

ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय-निष्पन्न छह द्रव्यो मे एक जीव और नव तत्त्वो मे दो-जीव और निर्जरा है। ज्ञानावरणीय के क्षय से केवलज्ञान की उपलब्धि होती है।

८ दर्शणावरणी खायक निपन ते छव मे जीव पिछाण।
नव मे दोय जीव निर्जरा, केवल दर्शण जाण ॥

दर्शणावरणीय कर्म का क्षय-निष्पन्न छह द्रव्यो मे एक जीव और नव तत्त्वो मे दो—जीव और निर्जरा है। अर्थात् दर्शनावरणीय कर्म के क्षय से केवलदर्शन की प्राप्ति होती है।

९ वेदनी खायक निपन ते, छव मे जीव पिछाण।
नव मे दोय जीव मोख छै, ते खय सहु खय जाण ॥

वेदनीय कर्म का क्षय-निष्पन्न छह द्रव्यो मे एक जीव और नव तत्त्वो मे दो—जीव और मोक्ष है। वेदनीय कर्म के क्षय होने के साथ-साथ अवशेष सब कर्मों (आयुष्य, नाम, गोत्र) का क्षय हो जाता है।

१० मोह कर्म खायक निपन ते, छ मे जोव सुजोय।
नव मे जीव सवर निर्जरा, दर्शण चारित्र दोय ॥

मोहनीय कर्म का क्षय-निष्पन्न छह द्रव्यो मे एक जीव और नव तत्त्वो मे तीन—जीव, सवर और निर्जरा है। मोह कर्म के दो भेद है—दर्शणमोह और चारित्रमोह।

११ दर्शण मोह खायक निपन ते, छ में जीव ताम।
नव मे जीव सवर निर्जरा, खायक सम्यक्त्व पाम ॥

दर्शनमोह का क्षय-निष्पन्न छह द्रव्यो मे एक जीव और नव तत्त्वो में तीन—जीव, सवर और निर्जरा है। दर्शनमोह के क्षय होने पर क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

१२. खायक सम्यक्त्व चौथा गुणठाणा तणी, छ में जीव विख्यात।
नव मे दोय जोव निर्जरा, संवर नही तिलमात ।।

चौथे गुणस्थान वाले प्राणी का क्षायिक-सम्यक्त्व छह द्रव्यो में एक जीव और नव तत्त्वो मे दो-जीव ओर निर्जरा है, पर सवर किंचित् मात्र भी नही है।

१३. खायक सम्यक्त्व विरत व्रत री, छ मे जीव सुजाण।
नव मे जीव सवर कह्यो, पाचमा सू पिछाण ।।

देशव्रती और सर्वव्रती का क्षायिक-सम्यक्त्व छह द्रव्यो मे एक जीव और नव तत्त्वो मे दो-जीव और सवर[1] है, जो पाँचवे गुणस्थान से चौहदवे गुणस्थान तक होते है।

१४ चारित्र मोह खायक निपन, छ मे जोव सुजाण।
नव मे जीव सवर विरत ते, खायक, चारित्र पिछाण ।।

चारित्र मोह का क्षय-निष्पन्न छह द्रव्यो मे एक जीव और नव तत्त्वो मे दो—जीव और सवर है। उन्हे विरत और क्षायिक-चारित्र (यथाख्यात चारित्र) कहा जाता है।

१५ आउखो कर्म खायक निपन ते, छ मे जीव सुजोय।
नव मे दोय जीव मोख छै, ते ससारी मे न होय ।।

आयुष्य कर्म का क्षय-निष्पन्न छह द्रव्यो मे एक जीव और नव तत्त्वो मे दो—जीव और मोक्ष है। वे सांसारिक जीवो मे नही होते। (आयुष्य कर्म के क्षय से अटल-अवगाहना (आत्म प्रदेशो का स्थिर होना) गुण प्रकट होता है, जो सिद्धो मे ही पाया जाता है।)

१६ नाम कम खायक निपन ते, छ मे जीव पिछाण।
नव मे दोय जीव मोख छे, ते पिण सिद्धा मे जाण ।।

नाम कर्म का क्षय-निष्पन्न छह द्रव्यो मे एक जीव और नव तत्त्वो मे दो—जीव और मोक्ष है। वे सिद्धो मे ही होते है। (नाम कर्म के क्षय से अमूर्त्तित्व (अशरीरीपन) गुण उपलब्ध होता है, वह सासारिक प्राणियो मे नही मिलता।)

१७ गोत कर्म खायक निपन ते, छ मे जीव है सोय।
नव मे दोय जीव मोख छै, अगुरुलघु अवलोय ।।

गोत्र कर्म का क्षय-निष्पन्न छह द्रव्यो मे एक जीव और नव तत्त्वो मे दो—जीव और मोक्ष हैं। गौत्र कर्म के क्षय से अगुरुलघुत्व (न छोटापन न वडापन) गुण की प्राप्ति होती है (वह सिद्धो मे ही होता है)।

१८ अतराय खायक निपन ते, छ मे जीव पिछाण।
नव मे दोय जीव निर्जरा, पाँच खायक लब्ध जाण ।।

अतराय कर्म का क्षय-निष्पन्न छह द्रव्यो मे एक जीव और नव तत्त्वो मे दो—जीव और निर्जरा हैं। अतराय कर्म के क्षय से पाँच क्षायिक लब्धियाँ (दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य) मिलती है।

---

१ यहाँ सवर सम्यक्त्व सवर की अपेक्षा से है।

१९ कर्म अघाति चिहु खायक निपन, ते इक इक आश्री पूछिद ।
छ मे जीव नव में जीव छै, केइ गणी एम कथिद ॥
२० अघाति चिहु खायक निपन ते, केइ कहे एक जीव ताय ।
केइ जीव ने मोख कहे, बेहू नय वचन जणाय ॥

चार अघाती कर्मों (वेदनीय, नाम, गोत्र, आयु) के क्षय-निष्पन्न के सबध मे पृथक्-पृथक् रूप से एक-एक कर्म की पृच्छा की जाये तो वह छह द्रव्यो मे एक जीव और नव तत्त्वो मे भी एक जीव है। ऐसी कुछ आचार्यों की मान्यता है।

कई आचार्य चार अघाती कर्मों के क्षय-निष्पन्न को छह द्रव्यो मे एक जीव और नव तत्त्वो मे दो—जीव और मोक्ष कहते है। उक्त आचार्यो का कथन पृथक्-पृथक् नय की अपेक्षा से है, ऐसा प्रतीत होता है।

सोरठा

२१ खायक निपन गुणखाण रे, आख्यो अधिक उमंग सू ।
खयोपशम निपन जाण रे, अभिलाषा कहिवा तणी ॥

गुणोत्पादक क्षय-निष्पन्न का परम उमग से उल्लेख कर दिया गया। अब क्षयोपशम-निष्पन्न को अभिव्यक्त करने की इच्छा हो रही है।

ढाल

२२ ज्ञानावरणी खयोपशम निपन ते, छव मे जीव नव मे दोय ॥
चउनाण अनाण भणवो कह्यो जीव निर्जरा जोय ॥

ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम-निष्पन्न छह द्रव्यो मे एक जीव और नव तत्त्वो मे दो—जीव और निर्जरा है। इससे आठ बोल—चार ज्ञान (मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यव), तीन अज्ञान (मति, श्रुत, विभग) और भणन-गुणन की प्राप्ति होती है।

२३ दर्शणावरणो क्षयोपशम निपन ते, छ मे जीव सुचीन ।
नव मे दोय जीव निर्जरा, इन्द्रिय दर्शण तीन ॥

दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम-निष्पन्न छह द्रव्यो मे एक जीव और नव तत्त्वो मे दो—जीव और निर्जरा है। इसमे आठ बोल—पाँच इन्द्रियाँ (स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र) और तीन दर्शन (चक्षु, अचक्षु, अवधि) उपलब्ध होते है।

२४ मोहणी क्षयोपशम निपन ते, छ मे जीव सु इष्ट ।
नव मे जीव सवर निर्जरा, चिहु चरण देशव्रत दृष्ट ॥

मोहनीय कर्म का क्षयोपशम-निष्पन्न छह द्रव्यो मे एक जीव और नव तत्त्वो मे तीन—जीव, सवर और निर्जरा है। इससे आठ बोल—चार चारित्र (सामायिक, छेदोपस्थाप्य, परिहारविशुद्धि सूक्ष्मसपराय) एक देशव्रत (श्रावक व्रत) और तीन दृष्टि (सम्यग् दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्या दृष्टि) प्राप्त होते है।

२५ अतराय क्षयोपशम निपन ते, छ में जीव सुचीन ।
नव मे दोय जीव निर्जरा, पाच लब्ध वीरज तीन ॥

अतराय कर्म का क्षयोपशम-निष्पन्न छह द्रव्यो मे एक जीव और नव तत्त्वो मे

[शेष पृष्ठ ४४६ पर]

एक युवा श्रमणी : महाश्रमणी*

साध्वी यशोधरा

तेरापथ साध्वी-सघ एक प्राणवान् साध्वी-सघ है। सुनियोजित, सुव्यवस्थित, सुसगठित, अनुशासित, सर्वात्मना समर्पित और श्रद्धानिष्ठ साध्वी-सघ को देखकर स्वय आचार्यप्रवर कई बार फरमाते है—"साध्वियाँ हमारे सघ का गौरव है, अमूल्य निधि है और है महान् शक्ति।" षष्टि-पूर्ति के अवसर पर विशाल श्रमणी परिवार की अभ्यर्थना झेलते हुए उसके प्रत्युत्तर मे आचार्यप्रवर ने मधुर मुस्कान बिखेरते हुए कहा—

"तुम्हारा विकास ही मेरा सच्चा अभिनदन है।"

जिस साध्वी-सघ के अभ्युदय के लिए स्वय आचार्य अहर्निश प्रयत्नशील हो। जो अपनी एक-एक साँस और एक-एक पल, जिसके निर्माण मे होमते हो, जिसके लिए अनन्त करुणा और अपरिमेय वात्सल्य का निर्झर सतत प्रवहमान हो वह साध्वी-सघ भला प्रबुद्ध, प्रभास्वर और उदितोदित कैसे नही होगा।

उसी साध्वी-सघ की वर्तमान मे एक अप्रतिम उपलब्धि है महाश्रमणी साध्वी प्रमुखा श्री कनकप्रभा जी। तेरापथ धर्मसघ के क्षितिज पर उभरकर आने वाली अनेक गरिमामयी सभावनाओ मे आप एक समुज्ज्वल सभावना है। आचार्यप्रवर की हीरकनी मेधा ने ऐसे हीरे को तराशा, जिसमे एक साथ अनेक प्रतिभाओ की ज्योति-किरणे उद्भाषित हो रही है। आप एक भास्वर और ग्रहणशील चेतना की प्रतीक है। नारीजगत ऐसी अपूर्व उपलब्धि से उपकृत, अनुग्रहीत हुआ है।

चमकती आँखे, भव्य ललाट, गेहुआ रग, मुस्कान बिखेरता हुआ सौम्य चेहरा, लबा कद, फुर्तीली चाल, इन सब मे झलकता उनका बाह्य व्यक्तित्व जितना आकर्षक है, उससे भी कही अधिक समृद्ध है उनका अन्तर व्यक्तित्व।

कितना अलकृत है, उनका जीवन-काव्य। जिसकी एक-एक पक्ति मे अकित है—सहज समर्पण, श्रमनिष्ठा, कला की कमनीयता, भावो का गाम्भीर्य, वाणी का माधुर्य, हृदय का औदार्य, भाषा की प्राञ्जलता, बुद्धि की कुशाग्रता, तत्त्वज्ञान की तलस्पर्शिता और कर्मयोग की गरिमा। आपके गतिशील जीवन के प्रतीक है—

---

*साध्वीप्रमुखा श्री कनकप्रभा जी को आचार्यश्री द्वारा प्रदत्त 'महाश्रमणी' अलकरण के उपलक्ष्य मे विशेष लेख।

(i) ज्ञान की गहरी पिपासा
(ii) लक्ष्य के प्रति निष्ठा
(iii) चरित्र की निर्मलता

ठीक समय पर ठीक काम करने की पक्षधर है आप। सकल्प की अद्वितीय अविचलता, नियमित कार्य पद्धति, योजनाबद्ध प्रवृत्तियाँ, अप्रमत्तता, सतत जागरूकता प्रभृति विरल विशेषताओ ने आपके व्यक्तित्व और कर्तृत्व को सजाया-सवारा है।

आचार्यप्रवर के हर चिन्तन, इगित, दृष्टि, आज्ञा और निर्देश के प्रति आप सर्वात्मना समर्पित है। कौन क्या कह रहा है, इस पर बिना ध्यान दिए आप अविलम्ब उसकी पूर्ति के लिए पूरी ताकत से जुट जाती है।

इन्ही सब विशेषताओ का आकलन कर वि० सम्वत् २०२८ मे गगाशहर मर्यादोत्सव के अवसर पर महामहिम आचार्यप्रवर ने आपको **'साध्वीप्रमुखा'** के महिमा मडित पद पर प्रतिष्ठित किया है। इस गरिमामय पद से आप विभूषित हुई और आप से यह महनीय-पद गौरवान्वित हुआ।

युग-युग अत्यन्त आभारी रहेगा साध्वी-समाज, युगप्रधान आचार्यप्रवर का। जिन्होने एक युवा साध्वी को विशाल श्रमणी परिवार का नेतृत्व सौप कर युगीन अपेक्षा की सम्पूर्ति की है।

राजस्थान मे एक गाँव है लाडनू, वहाँ के वैद (बम्बूवाला) परिवार मे आपका जन्म हुआ। प्राथमिक शिक्षा सम्पन्न की।

आचार्यवर की जन्मभूमि, तीर्थभूमि लाडनू मे शताधिक वर्षो से स्थविर साध्वियो का सतत स्थिरवास। सादगी और निश्छलता का निर्मल वातावरण, सर्वत्र चाँदनी से हिम धवल सस्कार और साध्वियो से मिलने वाली त्याग और तितिक्षा की जीवन्त प्रेरणाओ ने आपके मानस मे विरक्ति का बीज-वपन कर दिया।

किन्तु बचपन से ही सकोचशील वृत्ति, कम बोलने की प्रवृत्ति और अपने आपको अनभिव्यक्त रखने की मनोवृत्ति ने आपके भीतर मे विरक्ति के बावजूद भी शादी की आयोजना करवा दी। आपकी ही शादी पर आ रहे चाचा जी की ट्रेन मे ही मृत्यु हो गई। सहसा लगा जैसे मनुष्य की उम्र अजली का जल है, जो हर साँस के साथ रीत रहा है। यहाँ जो उगा है, अस्त होगा, जला है, वह बुझेगा, खिला है, वह बिखरेगा। जन्म जिसका हुआ है उसका मरण अनिवार्य नियति है।

इस अप्रत्याशित दुर्घटना ने ससार के प्रति सार्थक विकर्षण को और अधिक पुष्ट कर दिया। रचे हुए ब्याह को ठुकरा पन्द्रह वर्ष की वय मे ही आपने प्रवेश पाया श्री पारमार्थिक शिक्षण सस्था मे, जो सस्था साध्वी-जीवन की पूर्वभूमिका का निर्माण करती है। आध्यात्मिक सस्कारो का पल्लवन करती हुई ज्ञान-गगा मे अभिष्णात होती है, जहाँ मुमुक्षु छात्राएँ। आपने उस सस्था मे चार वसन्त बिताए। ज्ञान के क्षेत्र मे अपनी बहुमुखी प्रतिभा-प्रस्फुरणा से उदीयमान छात्रा के रूप मे सम्मान पाया।

उन्नीस वर्ष की वय मे सम्वत् २०१७, तेरापथ द्विशताब्दी समारोह के ऐतिहासिक अवसर पर तेरापथ की उद्भव स्थली **'केलवा'** मे आचार्य तुलसी के कर कमलो द्वारा आपका दीक्षा-सस्कार सम्पन्न हुआ।

आचार्यप्रवर के पावन सान्निध्य मे ज्ञान, दर्शन और चरित्र की त्रिपथगा मे आपने अवगाहन किया। चारित्रिक उज्ज्वलता के साथ-साथ स्वल्प समय मे ही व्याकरण, शब्दकोश, काव्य, साहित्य, आगम आदि का तलस्पर्शी—अध्ययन किया। अपने यहाँ प्रचलित पाठ्यक्रम की स्नातकोत्तर परीक्षाओ मे विशिष्ट योग्यता प्राप्त कर नए कीर्तिमान स्थापित किए। हिन्दी, सस्कृत एव प्राकृत आदि भाषाओ की आप अधिकृत विदुषी है तथा कुशल लेखिका और कवयित्री भी है।

"**सरगम**" नामक काव्य सकलन प्रकाशित हो चुका है, जिसमे आपकी काव्य-प्रतिभा मुखर हुई है। आगमवाचनाप्रमुख आचार्यप्रवर के नेतृत्व मे चल रहे आगम अनुसधान कार्य मे आप वर्षों से सलग्न है। **अनुयोगद्वार** और **राजप्रश्नीयसूत्र** हिन्दी मे अनूदित कर चुकी है और **भगवती** जैसे विशालकाय आगम का हिन्दी अनुवाद कर रही है।

युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रणीत **कालूयशोविलास, डालम चरित्र, माणक-महिमा, चन्दन की चुटकी भली नन्दन निकुञ्ज** जैसे काव्य ग्रन्थो का और **उद्बोधन, अनैतिकता की धूप और अणुव्रत की छत्तरी, अणुव्रत के आलोक मे, अणुव्रत गति प्रगति, मुक्ति-पथ, वचनवीथी** आदि पुस्तको का कुशलता से सम्पादन किया है।

भगवती सूत्र की जोड का निर्माण करते समय तेरापथ के चतुर्थ आचार्य श्रीमज्जयाचार्य बोलते और साध्वीप्रमुखा गुलाबसती लिखती। उनकी स्मरण-शक्ति और ग्रहणशक्ति इतनी तीव्र थी कि उन्हे लिखने के लिए दूसरी बार पूछना नही पडता। ठीक उसी इतिहास की पुनरावृत्ति कर रही है वर्तमान साध्वी प्रमुखाश्री जी।

आचार्यश्री तुलसी की दक्षिण यात्रा को एक हजार पृष्ठो मे आलेखन कर आपने यात्रा-साहित्य मे एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है। सृजनधर्मिता आपकी प्रशस्य मनोवृत्ति है। सृजन के क्षण को ही आप जीवन का सर्वोत्कृष्ट क्षण मानती है।

अपने विनम्र व्यवहार, मिलन सारिता, कार्य पटुता, व्यवस्था सुघडता और अनुशासन कौशल से आपने न केवल साध्वीसघ की प्रत्युत्तर हजारो-हजारो लोगो की अगाध श्रद्धा आर हार्दिक सम्मान प्राप्त किया है।

सघ मे अग्रगणी साध्वियो मे सबसे अल्पवयस्क साध्वी को साध्वी-सघ का बृहत्तर उत्तरदायित्व सौपकर महामना आचार्यप्रवर ने आपके प्रति अनन्त विश्वास की अभिव्यक्ति दी है। दीक्षा पर्याय मे मात्र ग्यारह वर्षीया साध्वी का आचार्य के दिल मे इतना विश्वास पाना एक विरल विशेषता है।

बीसवी सदी की सबसे बडी त्रासदी है—आस्था का अभाव। ऐसे बौद्धिक युग मे छोटी-बडी पाँच सौ से अधिक सभी साध्वियो के दिल को जीतना और उनसे प्रगाढ श्रद्धा और सम्मान का पाना अपने आप मे अपूर्व उपलब्धि है। इसी से प्रसन्न हो महाप्राण आचार्यप्रवर ने इस वर्ष के मर्यादोत्सव के पुण्य अवसर पर आपको '**महाश्रमणी**' के अलकरण

से अलकृत किया है। मर्यादा महोत्सव के अवसर पर विशाल जनमेदिनी को सम्बोधित करते हुए आचार्यप्रवर ने कहा—"साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा ने सात वर्ष के स्वल्प समय मे समूचे समाज के हृदय को जीत लिया, यह प्रत्यक्ष है। इसकी सहज विनम्रता, आचार कौशल और सेवा-भावना से प्रसन्न हू। अतएव इसे आज **महाश्रमणी** विशेषण से समलकृत करता हू।"

आचार्यप्रवर के एक-एक शब्द मे आपका कर्तृत्व और व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित हो रहा है।

परमश्रद्धेय आचार्यप्रवर और महाश्रमणी साध्वी प्रमुखा श्री जी के कुशल नेतृत्व और मार्गदर्शन मे साध्वी समाज तीव्रगति से विकास के नए-नए आयाम उद्घाटित करता रहे इसी शुभाशसा के साथ।

शतश अभिनन्दन-वन्दन।

[पृष्ठ ४४५ का शेषाश]

दो—जीव और निर्जरा है। इसमे आठ बोल—पाँच लब्धि (दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य) और तीन वीर्य (बाल वीर्य[1], पडित वीर्य[2], बाल-पडित वीर्य[3]) पाये जाते है।

२६ वेदनी आउ नाम गोत नो, क्षयोपशम नहि होय।
तिण कारण ए च्यारु ना कह्या, जाणे विरला कोय॥

वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र का क्षयोपशम-निष्पन्न नही होता इसलिए इन चारो का कथन नही किया गया है। इस मर्म को विरले व्यक्ति ही समझ सकते है।

१ पहले से चतुर्थ गुणस्थान वाले प्राणियो की शक्ति।
२ छठे से चौदहवे गुणस्थान वाले प्राणियो की शक्ति।
३ पाँचवे गुणस्थान वाले प्राणियो की शक्ति।

२७ ढाल भली ए तीसरी, कह्या निपन तज धद।
भीक्खू भारीमाल ऋषराय थी, जयजश अधिक आनंद॥

तीसरी ढाल मे निर्विघ्न रूप से कर्मों के उदय-निष्पन्न आदि की चर्चा की गई है। आचार्य भिक्षु, भारीपाल ऋषिराय के प्रभाव से जयजश (जयाचार्य) के आनद ही आनद है।

(क्रमश)

आदर्श श्रावक : महावीर की कल्पना

—मुनि किशनलाल

भगवान महावीर किसी एक वर्ग के आदर्श की परिकल्पना के पक्ष मे कभी नही थे। उन्होने आदर्श श्रावक की क्या आदर्श भगवान् की भी कभी कल्पना नही की। उनका विलक्षण व्यक्तित्व इस प्रकार निर्मित था कि वे सर्वत्र समता के ही दर्शन करते थे। साम्य-भाव उनके रोम-रोम से प्रस्फुटित होता था। वे प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार मे समत्व का दर्शन करना चाहते थे। उनकी साधना की उत्क्रान्ति का एक ही सूत्र था—समता—

"समया धम्ममुदाहरे मुणी"।

समता की इस सृष्टि के लिए सम्यक्-दर्शन अत्यन्त अपेक्षित है। भगवान् महावीर के धर्म और दर्शन का मूल आधार सम्यग्-दर्शन है। साधना की दृष्टि से सम्यग्-दर्शन विकास की प्रथम भूमिका है। श्रावक का कोई पहला आदर्श अथवा पहिचान का कारण हो सकता है, तो वह है सम्यग्-दर्शन। यह जैन परम्परा का ऐसा महत्त्वपूर्ण आदर्श है, जिसे प्राप्त किए बिना व्यक्ति विमुक्त हो ही नही सकता है। चचल महिप के नुकीले शृग पर टिके हुए मूग के दाने के बराबर स्वल्प समय तक प्राप्त सम्यक्त्व भी व्यक्ति को मुक्तावस्था तक पहुचाने मे सहायक बन जाता है।

विश्व मे पीडा, अशान्ति, क्लेश का यदि कोई एक कारण हो सकता है, तो वह है मिथ्या-दृष्टि। व्यक्ति इससे यथार्थ को अयथार्थ देखता है। वस्तु के प्रति प्रिय-अप्रिय, राग-द्वेष के भावो से कर्मों का अनुबन्ध करता है। कर्मों के अनुबन्ध से कषायो मे तीव्रता आती है। तीव्र कषायो के कारण प्राणी पुन पुन जन्म-मरण को धारण करता है।

सम्यग्-दर्शन की उपलब्धि की भूमिका देह और आत्मा का भिन्न साक्षात्कार है। कोई प्राणी जब एक बार भेद-विज्ञान को उपलब्ध हो जाता है, तब उसकी मुक्ति निश्चित होती है। वह क्रमश मोक्ष की ओर गति करने लगता है। भेद-विज्ञान उन्हे ही उपलब्ध होता है, जिनकी कषाय मन्द होती है। कषाय की तीव्रता मे सम्यक्-दर्शन उत्पन्न नही हो सकता।

मिथ्या-दर्शन का परिणाम मूर्च्छा एव सम्यक्-दर्शन का परिणाम जागरण है। मूर्च्छा से चैतन्य विमूढ बनकर क्लेश के आवर्त मे गिरता है। जागरण से मूर्च्छा टूटती है, व्यक्ति

चैतन्य को उपलब्ध होता है। सम्यक्-दर्शन के साथ जो व्यक्ति व्रत की ओर गति करता है, अथवा अपने जीवन की आकाक्षाओ को व्रत से सीमित करता है—वह श्रावक है। आकांक्षा व्यक्ति को आसक्ति मे नियोजित करती है, जिससे आहार, भय, मैथुन, परिग्रह आदि सज्ञाओ मे प्रवृत्ति होता है। यह प्रवृत्ति ससार मे परिभ्रमण का कारण बनती है।

अर्हत् कैवल्य की उपलब्धि होते ही तीर्थ की स्थापना करते है। तीर्थ मे दो वर्ग हैं—अणगार और उपासक। साधु-साध्विया महाव्रत का अनुपालन करते है। उपासक एव उपासिकाए अणुव्रत, गुणव्रत एव शिक्षाव्रत का अनुपालन करते है।

भगवान् महावीर की परिकल्पना मे धर्म अर्थात् मोक्ष का मार्ग सम्यग्-दर्शन, सम्यग्-ज्ञान एव सम्यक्-चारित्र है। सम्यग्-दर्शन को उपलब्ध होने वाले व्यक्ति को सम्यक्त्वी कहा है। श्रमण अथवा श्रावक होने के लिए सम्यक्त्व की उपलब्धि अनिवार्य है। सम्यक्त्व के पाच लक्षण है—१ शम २ सवेग ३ निर्वेद ४ अनुकम्पा और ५ आस्तिक्य।

सम्यक्त्वी का चित्त तीव्र कषाय से उपशान्त एव विमुक्त रहता है। उसका चित्त आसक्ति से विरत और करुणा से पूर्ण रहता है। वह आत्मा के अस्तित्व, कर्तृत्व तथा कर्म के विमोक्ष को मानता है।

कषाय की उपशान्ति, चित्त की अनासक्ति एव आत्मा के अस्तित्व की अनुभूति से जो ज्ञान उपलब्ध होता है, वह सम्यक्-ज्ञान कहलाता है। सम्यग्-दर्शन और ज्ञान के पश्चात् अगला चरण सम्यक् चारित्र का है।

भगवान् महावीर ने सम्यक्त्व को श्रावक की प्रथम भूमिका के रूप मे स्वीकार किया है। सम्यक्त्वी ही अणुव्रत, गुणव्रत एव शिक्षाव्रत को स्वीकार कर सकता है। व्रतधारी श्रावक अथवा आदर्श श्रावक बन सकता है।

साधना की दृष्टि से श्रावक की तीसरी भूमिका प्रतिमाधारी श्रावक के रूप मे हो सकती है। श्रावक प्रतिमाओं को क्रमश स्वीकार कर अन्त मे श्रमणभूत ग्यारहवी प्रतिमा स्वीकार कर साधना की विशिष्ट भूमिका का अनुसरण करता है। श्रमण भूत प्रतिमा मे समस्त चर्या साधु के अनुरूप ही होती है। केवल भिक्षा अपने पारिवारिक सदस्यो से स्वीकार करता है।

साधना के प्रयोगो मे एक महत्वपूर्ण प्रयोग श्रावक के लिए सलेखना है, जिसे समाधि-मरण कहते है। श्रावक अन्तिम समय को सन्निकट जान जीवन पर्यन्त भोजन पानी आदि का परित्याग कर क्रमश रागद्वेष रहित समता की अवस्था मे स्थिर होकर करता है, जिसे सलेखना अथवा सथारा भी कहते है।

भगवान् महावीर ने आदर्श श्रावक की परिकल्पना के बदले श्रावक के आदर्श को जरूर प्रस्तुत किया था। उनकी दृष्टि मे श्रावक का पहला आदर्श समता, दूसरा सयम और तीसरा विवेकपूर्ण व्यवहार है। इन तीन आदर्श बिन्दुओ पर महावीर के श्रावक स्वय के लिए ही नही, अपितु समाज, राष्ट्र एव विश्व के लिए कल्याणकारी सिद्ध हो सकते है।

नटकन्या और श्रेष्ठिपुत्र

— सोहनराज कोठारी

अभी तक आपने पढ़ा –

नगर श्रेष्ठि कुबेरपाल के जमाता अरुण का रूप-लावण्य देख कर महाराज रूपीराय मन्त्र मुग्ध हो गएं। उन्होने एकान्त मे अरुण को अपने जीवन का भेद बताया, जिसे सुनकर अरुण चकित हो गया। अगले दिन दोनो चुपचाप भ्रमण को निकल पडे। राज्य की सीमा आते ही अरुण ने राजसी वैभव से विदाई ली और ध्यान-मग्न होकर बैठ गया। आँख खोलने पर उसे एक तेजस्वी सन्त दिखे, जिन्होने उसे जीवन का शाश्वत सत्य बताया।

अब आगे पढिए।

(गताङ्क से आगे)

महाराज रूपीराय ने श्रेष्ठिपुत्र के पुनरागमन की सूचना देन के लिए भृत्यो को नियुक्त कर दिया था। समय बीतता गया, दिन चढता गया, किन्तु निराशाजन्य सूचना ही उन्हे प्राप्त होती रही। उधर श्रेष्ठि के घर मे सन्नाटा छाया हुआ था। राजमहल मे भी इसकी सूचना भेजी गई। महाराज ने अश्वारोहियो को खोजने के लिए भेजा। सध्या समय वे अरुण का घोडा लेकर आगये, पर उससे तो चिन्ता का कोई पार ही न रहा। क्या वह कोई हिंसक पशु का शिकार हो गया ? या उसने कही आत्म-हत्या कर ली ? किसी को पता नही लग सका कि कौनसी ऐसी घटना हुई कि अरुण इस प्रकार से अतर्धान हो गया। श्रेष्ठि-पुत्र करुण के लोप होने से उसके परिजनो को जो शोक हुआ, वह तो स्वाभाविक था, किन्तु जो सताप महाराज को हुआ, उसे कोई नही जान सका। वे अपने को इस दुर्घटना के लिय उत्तरदायी मानते थे।

खोज क्रम चलता रहा, किन्तु अरुण भी कम सावधान नही था। वह जहाँ तक बन पडता, बहुत कम बाहर जाता, दृष्टि बचाकर चलता, किन्तु एक दिन महाराज के एक दूत ने उसे देख ही लिया। फिर क्या था, महाराज को विद्युत् वेग से सूचना हो गई और वे अपने विश्वस्त दल सहित वहा पहुच गये।

व्याख्यान का आयोजन हो रहा था। जन-समूह की भीड थी। महाराज रूपीराय को प्रमुख पक्ति मे स्थान दिया गया था। महाश्रमण ने पदार्पण किया। उनके पीछे सतो की टोली थी, जिसमे श्रमण अरुण को महाराज ने पहचान लिया, दोनो की आँखे एक क्षण को मिल गई। अरुण एक बार तो मानो आकाश से गिरा। उसे कितनी आशा से महाराज ने सम्मान दिया था, मित्रता स्थापित की और एक मित्र के नाते जीवन का महान् गोपनीय रहस्य प्रकट किया व उसकी सहायता चाही। किन्तु वह विश्वासघात करके धोखा देकर, कायर की भाँति भाग खडा हुआ। एक चोट उसके तन-मन को झकझोर गई।

महाश्रमण एक काष्ठ-पट्ट पर विराजमान हो गये। उनके दाहिनी ओर अन्य साधु-ओ के साथ श्रमण अरुण भी आसीन हो गया।

प्रवचन प्रारम्भ हुआ, प्रार्थना के साथ।

"जीवन द्वद्वात्मक है। सुख-दुख, शीत-उष्ण, ऊँच-नीच, मैत्री-वैर, मोह-वैराग्य, राग-द्वेष, इन्ही द्वद्वो मे ससार की समस्त रचना है। मनुष्य सृष्टि की सर्वोत्कृष्ट रचना है। मनुष्य अपनी साधना व तप से भगवान् बन सकता है। कहने मे जितना सहज यह तथ्य है, कार्य रूप मे परिवर्तन करने मे उतना ही कठिन। बहुत सकीर्ण व दीर्घ मार्ग है। जन्म-जन्मान्तर इसमे लग सकते है, किन्तु एक साधारण सत्य यह भी है कि जो प्रथम चरण नही उठाता, वह कही नही पहुच पाता, वह स्थिर होकर रह जाता है। गतिहीन बनकर कोई लक्ष्य तक नही पहुचा। इसलिये कितना ही नगण्य होते हुए भी प्रथम चरण बहुत महत्त्व रखता है, इसलिये दृढ सकल्प होकर पूरी शक्ति के साथ प्रथम चरण उठाले तो लक्ष्य एक चरण समीप आ जायेगा। लक्ष्य प्राप्ति का कार्य प्रारम्भ हो जायेगा। परिणाम कही दूर नही—कर्म का फल कही भविष्य मे नही, कर्म के साथ ही उपलब्ध है।" महाश्रमण ने महाराज की ओर देख कर कहा—"प्रश्न यह है कि यह प्रथम चरण कौनसा हे व किस ओर उठाना है। द्वद्वात्मकता से बाहर होना ही वह चरण हे। रागद्वेष से ऊपर उठना ही वह चरण हे। इमलिए भगवत्सत्ता की साधना वीतरागता का मार्ग ही है। केवल द्वेष से मुक्ति नही, अपितु राग से भी मुक्ति आवश्यक है। दोनो ही समान रूप से बन्धन है। इसलिये दोनो से विमुक्त होना है।"

व्याख्यान चल रहा था। उधर अरुण और रूपीराय अपन विचारो मे खो रहे थे। वे महाश्रमण के भाषण को अपने जीवन पर घटित करके देख रहे थे कि उनमे क्या कमी थी, उनका प्रथम चरण उठा या नही।

व्याख्यान समाप्त हुआ। महाश्रमण ने महाराज को विशेष रूप से एकान्त मे समय दिया। अरुण द्वारा, वे सारी स्थिति से अवगत हो चुके थे। महाराज के साथ उन्हे हार्दिक सहानुभूति हो गई थी।

"महाराज! अरुण के जीवन मे एक अभिन्न मोड आया। इसका श्रेय आपको है। मै इसे पूर्वजन्म का महान् साधक मानता हूँ, अन्यथा इस उम्र मे सासारिक सुख व वैभव से मुह मोडना सहज बात नही है।"

"मै श्रेष्ठिपुत्र को साधु वेष मे देख कर विस्मित ही नही, स्तम्भित हू। साथ ही उसका इस प्रकार त्याग करना एक अद्भुत व अप्रत्याक्षित घटना है। मैं उसके प्रति श्रद्धा से नतमस्तक हू, मै उसका जीवन आदर्श एव अनुकरणीय मानता हू और महाश्रमण के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत ग्रहण करता हू।"

महाश्रमण ने इस महान् त्याग की बहुत प्रशसा की एव अपनी साक्षी से उन्हे सकल्प करवा दिया।

"पूर्व जन्म के सस्कारो ने अरुण को एक साथ इतनी शक्ति दे दी कि उसने एकदम सासारिक बन्धन त्याग दिये, पर इतना बल मुझमे नही है। मेरा उत्तरदायित्व सारे राज्य के प्रति है, इसलिये मै इतनी शीघ्र परिवर्तन नही ला सकता।'

"आपका कर्त्तव्य अभी राज्य शासन को सँभालना है। जब तक उसका किसी प्रकार उत्तराधिकारी आप न बना सकें, तब तक आपको अपनी भूमिका निभानी ही चाहिये।"

"मैं फिर दर्शन करूँगा। आज्ञा दीजिये।"

महाश्रमण ने महाराज को विदा किया व अरुण को आदेश दिया कि वह महाराज को द्वार तक छोड आये।

"श्रमण प्रवर को सादर वदना।" महाराज ने सयत स्वर मे कहा।

"धर्म लाभ ! काल की गति को कोई न तो जानता है, न रोक सकता है। अनोखी बात लगती है! आपकी समस्या मुझे साधु बना गई। वैसे वह एक झटका था, प्रवृत्ति मेरी वैराग्य की ओर पहले से थी, ऐसा अब स्पष्ट प्रतीत होता है। फिर भी व्यवहारिक दृष्टि से आपको धन्यवाद देना मैं अनुचित नही समझता।" श्रमण अरुण ने कहा।

"धन्यवाद देकर मुक्त हो जाना चाहते हो। क्या यह आवश्यक नही कि पूर्व जन्म के मित्र का भी कल्याण करो। साधु तो नि स्वार्थभाव मे सेवा करते है। जन-कल्याण ही उनका जीवन का लक्ष्य होता है।" महाराज ने उत्तर मे कहा।

"आत्म-कल्याण के पश्चात्" अरुण ने महाराज को बीच मे ही रोक दिया। "बिना ज्ञान को प्राप्त किये दूसरो को ज्ञान के मार्ग-दर्शन का कोई अधिकार नही होता। जब तक कोई स्वय लक्ष्य की प्राप्ति न कर ले, तब तक उसे किसी को राह दिखाने का अधिकार नही होता। मैंने अभी प्रथम चरण उठाया है, गतव्य स्थान दूर है।"

"मैं गुरुदेव व आपके दर्शन यथाशीघ्र करता रहूगा" महाराज विदा हुये। अरुण एक टक दृष्टि से उसे आँखो मे ओझल होने तक देखता रहा।

"अरुण ! समय बीत रहा है, समय-मात्र प्रमाद मत करो" अरुण न घूम कर देखा कि महाश्रमण पीछे खडे थे, अरुण ने पाव छू कर वदना की। "मनुष्य अपनी गति रोककर स्थिर हो सकता है, किन्तु समय गतिमान् रहता है।"

"पूर्व जन्म के सस्कारो से इस आयु मे इस मार्ग पर आ गये हो। इस जन्म की उपलब्धि ही आगे बढायेगी। इसलिये ध्यान रहे कि प्रगति मे गतिरोध उत्पन्न नही हो जाय। मुझे विश्वास है, तुम्हारा उत्थान होगा, पर देखना यह है कि कितना। मुझे यह भी विश्वास है कि तुम मेरा पद ग्रहण कर सकोगे। इसलिये दृढ सकल्प से साधनारत हो जाओ।"

सूचना मिलते ही अरुण के सभी परिजन महाश्रमण की सेवा मे उपस्थित हो गये। अरुण उस स्थान पर पहुच चुका था, जहा से लौटने का प्रश्न नही था। विधि का विधान मान कर सबने अरुण को श्रमण वेश मे स्वीकार किया।

महाश्रमण मणिभद्र का देहावसान हो चुका था। वे अपना उत्तराधिकारी श्रमण अरुण को मनोनीत कर गये थे। श्रमण अरुण ने भी उस पद के उपयुक्त साधना करके अपना स्थान बना लिया था। तपस्या के कई नवीन कीर्तिमान् उन्होने स्थापित किये थे। कई दिनो के उपवास, घटो ध्यान व अपूर्व स्वाध्याय से उसका शरीर कृश हो चला था, पर उनके मुख-

मडल पर आभा खिल उठी थी। प्रवचनो मे सहस्रो की भीड होने लगी थी। उनके व्यक्तित्व का आकर्षण कई राजाओ और श्रेष्ठि-पुत्रो को खीच लाता था, उनकी यशोगाथा दूर-दूर तक फैल चुकी थी।

इस प्रसिद्धि से महाराज रूपीराय को कितनी प्रसन्नता हुई, इसका अनुमान नही लगाया जा सकता। वे समय-समय पर श्रमण अरुण के दर्शनार्थ आते थे। उनको श्रमण के सान्निध्य मे एक अप्रकट आनन्द का अनुभव होता था। वे जानते थे कि इस जीवन मे श्रमण त्याग के पथ पर अग्रसर हो रहे थे और उन्होने भी आजीवन शीलव्रत का सकल्प लिया था, इसलिये कोई भी शारीरिक सम्बन्ध इस जीवन मे सभव नही था। फिर भी उनका अनुराग अरुण के प्रति दिन-दिन बढता जा रहा था, उसमे न्यूनता कभी नही आई।

श्रमण अपनी तपस्या के बल पर विश्वस्त थे कि रूपीराय का उनसे मिलना उन्हे प्रभावित नही कर सकता। किन्तु उनके मन मे भी कही गहराई मे एक अतृप्त वासना दब कर रह गई थी जो उन्हे बरबस महाराज रूपीराय की ओर देखने को विवश करती और वे अपने एकान्त चिन्तन के समय इसे अनुभव करते। महाराज ने कितना विश्वासपात्र समझ कर व अपना मित्र मानकर उसके समक्ष अपने जीवन का भेद खोला था, किन्तु वह उनकी कोई सहायता नही कर सका। चोरो की तरह चुपचाप भाग आया। यह विचार श्रमण को आतरिक पीडा पहुचाता था। नारी का समर्पण पुरुष अस्वीकार कर दे, यह कितना अपमानजनक होता है। श्रमण यह जानकर कि रूपीराय एक स्त्री है, उसे एकान्त मे समय नही दे सकते थे, अत उन्हे अपनी यह विवशता बहुत खलती थी, कचोटती थी। साधु जीवन के नियमो का पालन उसके लिये अनिवार्य था, इसलिए रूपीराय को अतरग भाव प्रकट करने का सुअवसर भी वे नही दे पाते थे, अच्छा होता, वे इस पथ पर बढने से पूर्व एक बार महाराज रूपीराय से मिल लेते, तो मन का एक बोझ हल्का हो जाता।

श्रमण के मन मे यह सतत भाव एक अशान्ति उत्पन्न कर देता और वे सोचते कि कर्मो का यही चक्कर कही उसकी साधना की निष्पत्ति मे बाधक न बन जाय। वासना का श्रोत केवल रोक देने से सूखता नही। अगारे पर राख डालने से वह बुझता नही, बल्कि अनुकूल परिस्थिति प्राप्त होते ही प्रज्वलित हो जाता है। महाराज तो यह भेद प्रकट करते ही अश्वारूढ होकर प्रस्थान कर गये कि वे एक नारी हैं। शायद, इस रहस्योद्घाटन की प्रतिक्रिया को वे स्वय उपस्थित रह कर सहन नही कर सकते थे, पर अरुण को भी प्रतिक्रिया प्रकट करने का अवसर नही मिला और इस प्रकार भावनाओ को उद्गार का अवसर न मिलने मे एक नई समस्या खडी हो गई। ध्यान की मुद्रा मे स्थित होकर बैठने पर उन्हे स्पष्ट बोध होता कि वे रूपीराय के आकर्षण से मुक्त नही है।

वे प्रभु से प्रार्थना करते कि उनकी तपस्या मे यह बाधा मिट जाय, अन्यथा उनका कल्याण सभव नही। रूपीराय ने उनकी साधना मे बाधक न बनने के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य का कठोर व्रत ग्रहण करके उन पर कितना बडा आभार डाल दिया था, जिसका धन्यवाद भी वे नही दे सकते थे। सत्ता, सपदा के फलस्वरूप सहज प्राप्य जीवन के मन आमोद-प्रमोद को इस प्रकार त्यागना, कोई सहज कार्य नही था। अन्य किसी से प्रणय-बन्धन मे बन्धने की अपेक्षा उन्होने भीष्म प्रतिज्ञा कर ली। कितना नि स्वार्थ निश्छल उनका प्रेम था, जिसका प्रत्युत्तर देना उनके लिये सभव नही था।

[शेष पृष्ठ ४६० पर]

शोध लेख

गृहस्थ-धर्म का अध्यात्मिक महत्त्व

(उत्तराध्ययनसूत्र पर आधारित एक अध्ययन)

प्रो० कैलाशचन्द्र जैन

कुछ विचारक और दार्शनिक जैनधर्म एव दशन को साधुओ-तपस्वियो का धर्म बताकर गृहस्थ जीवन को निरर्थक कह देते है। परन्तु जैन-दर्शन मे गृहस्थ जीवन का महत्त्व किसी भी रूप मे कम अभिव्यक्त नही हुआ है। जैन आगमो मे निर्दशित गृहस्थ धर्म का पालनकर मानव मनुष्य-योनि मे जन्म पान के सभी दार्शनिक, आध्यात्मिक एव लौकिक उद्देश्यो की पूर्ति कर सकता है। लगभग सभी हिन्दू दर्शनो मे गृहस्थ धर्म के महत्त्व को आवश्यक स्वीकार करते हुए उसे मानवीय, नैतिक, सन्तोषी, गृहस्थ-जीवन यापन का मार्ग निर्देशित किया गया है। गृहस्थ-धर्म के महत्त्व को स्वीकार करने वाले धर्म-शास्त्र वेत्ताओ के विचारो को स्पष्ट करते हुए पी० वी० काणे लिखते है कि—"इस पक्ष वाले विवाह एव सम्भोग को अपवित्र एव तप के लिये बुरा नही मानते, प्रत्युत विवाह एव सम्भोग को तप जीवन से उच्च मानते है।"[1] गृहस्थ-आश्रम वास्तव मे जीवन यात्रा का मुख्य दूसरा व्यवस्थित पडाव है। ब्रह्मचर्य एव शिक्षा की नीव पर रचित गृहस्थ आश्रम एक सुदृढ मानवीय जीवन की यथार्थता, कृतार्थता का प्रमुख पीठ है। शिक्षाविदुषी शकुन्तला तिवारी लिखती है—"भारतीय शास्त्रो मे गृहस्थ आश्रम को अत्यन्त श्रेष्ठ तथा अन्य सभी आश्रमो का उपजीव्य माना गया है। दान, आतिथ्य, भिक्षा आदि के द्वारा वह तीनो आश्रमो का पोषण करता है। तीनो आश्रमो को धारण करने के कारण गृहस्थाश्रम ज्येष्ठ अथवा सबसे बडा है।"[2]

जैन आगमो मे गृहस्थ को भिक्षु के समकक्ष ही रखते हुए कहा गया है कि—जो उपशान्त होते है, वे सयम और तप का अभ्यास कर उन देव-आवासो मे जाते है, भले ही फिर वे भिक्षु हो या गृहस्थ।[3] गृहस्थ जीवन का परिपालन कर स्वर्ग पाने का निर्देश **आपस्तम्ब धर्मसूत्र**[4] मे देते हुए उपदेशित किया गया है कि—जो धर्म-निर्दिष्ट कर्मों का सम्पादन

१ पी० वी० काणे, 'धर्मशास्त्र का इतिहास', प्रथम सस्करण लखनऊ, पृष्ठ २६७।

२ शकुन्तला तिवारी, "महाभारत मे धर्म", प्रथम सस्करण १९७०, आगरा, पृष्ठ ३३६।

३ उत्तरज्झयणाणि (उत्तराध्ययन सूत्र) स०—मुनि नथमल, सस्करण १९६७, कलकत्ता, ५/२८।

४ आपस्तम्ब धर्मसूत्र—सम्पादक उमेश चन्द पाण्डेय, सस्करण १९६९। चौखम्बा सस्कृत सीरीज वाराणसी, २/९/४/३-४-५।

करते हुए, जीवन व्यतीत करते है, वे अपने दिवगत पूर्वजो के यश तथा स्वर्गिक सुखो की अभिवृद्धि करते है। अगली पीढी अपनी पूर्ववर्ती पीढी के पुरुषो के सुख और यश को बढाती है। पुत्र वाले दिवगत पुरुष महाप्रलय तक स्वर्ग मे निवास करते है और स्वर्ग के जेता होते हैं। **उत्तराध्ययन सूत्र**[5] मे भी उल्लेख है कि शिक्षा से समापन्न सुव्रती मनुष्य गृहवास मे रहता हुआ भी औदारिक शरीर से मुक्त होकर देवलोक मे जाता है। पुन सुव्रती धर्मपालक गृहस्थ को भिक्षु के समान स्वीकार करते हुए उपदेशित किया गया है कि भिक्षु हो या गृहस्थ, यदि वह सुव्रती है तो स्वर्ग मे जाता है।[6]

गृहस्थ को मानव-धर्म का पालन करना चाहिए। मानवधर्म से स्वजीवन मे ही नही, अपितु सर्वत्र शान्ति और सन्तोष की धारा बहती है तथा परिवार एव राष्ट्र की समृद्धि भी होती जाती है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भी मानव कर्मों का क्षय करके मुक्ति मार्ग की ओर प्रवृत्त होता है। मनुष्यत्व को प्राप्त कर, जो धर्म को सुनता है, उसमे श्रद्धा करता है, वही तपस्वी सयम मे पुरुषार्थ कर, सवृत हो, कर्मरजो को धुन डालता है।[7] अमानीय प्रवृत्तियो का अन्त सदैव दुखदायी ही होता है। जो मनुष्य कुमति को स्वीकार कर पापकारी प्रवृत्तियो से धन का उपार्जन करते है, उन्हे देखे, वे धन को छोडकर मौत के मु ह मे जाने को तैयार है। वे वैर (कर्म) से बधे हुए नरक मे जाते है।[8]

गृहस्थ-धर्म का पालन करते हुए मनुष्य को परम सिद्धि प्राप्ति का निर्देश भारत के दार्शनिक साहित्य में किया गया है। **महाभारत** मे गृहस्थ आश्रमो को सब धर्मों का मूल बताते हुए, भीष्म जी ने युधिष्ठर से कहा —"गृहस्थाश्रम सभी धर्मो का मूल कहा गया है, इसमे रह कर अन्त करण के रागादि दोष पक जाने पर जितेन्द्रिय पुरुष को सर्वत्र सिद्धि प्राप्त होती है।[9] बौद्ध-दर्शन मे तो यह भी स्वीकार किया गया है कि—गृहस्थ व्यक्ति निर्वाण की प्राप्ति कर मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है। **मज्झिमनिकाय**[10] मे बुद्ध कहते हैं कि "एक ही नही पाँच सौ से अधिक ही मेरे गृहस्थ उस लोक से न लौटकर आने वाले हैं।" इस तरह बौद्ध-दर्शन मे गृहस्थ अवस्था मे मोक्ष प्राप्ति को स्वीकार किया गया है। परन्तु **मिलिन्द प्रश्न**[11] ग्रथ मे स्पष्ट किया गया है कि गृहस्थ रहना अर्हत् के अनुकूल नही

---

५ एव सिक्खा-समावन्ने गिह्-वासे वि सुव्वए।
मुच्चई छवि-पव्वाओ, गच्छे जक्ख-सलोगय।
उत्तरज्झयणाणि, ५/२४।

६ भिक्खाए वा गिहत्थे वा सुव्वए कम्मई दिव।
वही ५/२२।

७ वही—३/११।

८ वही—४/२।

९ गृहस्थस्त्वेष धर्माणा सर्वेषा मूलमुच्यते,
यत्र पक्व कषायो हि दान्त सर्वत्र सिद्धयति।
महाभारत, शान्तिपर्व—२३४/६।

१० मज्झिमनिकाय (हिन्दी अनुवाद—महापडित राहुल साकृत्यायन), महावच्छगोत-सुत्त, २/३/३ पृ० २८८।

११ मिलिन्द प्रश्न—४/७/६३ पृ० ३२५।

हैं। अर्हत् होते ही या तो प्रव्रजित हो जाता है, या महा परिनिर्वाण को प्राप्त करता है।

गृहस्थ आश्रम का महत्त्व किसी भी दर्शन मे किसी भी रूप मे कम नहीं है। गृहस्थो को मुनियो-साधुओ के समकक्ष रखकर भारतीय दर्शन मे गृहस्थ धर्म के आध्यात्मिक महत्त्व को स्वीकार किया गया है। परन्तु एक गृहस्थ तभी एक अच्छा जीवन गुजार सकता है, जब वह धर्म-निर्दिष्ट जीवन का पालन करे। वैसे यह व्यवहार मे भी सत्य है। भौतिक वस्तुओ का सग्रह, कामभोगो की आकाक्षाए और पापमयी प्रवृत्तियाँ मानव-जीवन मे अशान्ति उत्पन्न कर उसके जीवन को कष्टो से भर देती है। निरर्थक कामभोगो के परित्याग का निर्देश **उत्तराध्ययन सूत्र** मे बार-बार किया गया है। कामभोग शल्य है, विष हैं और आशीविष सर्प के तुल्य है, कामभोग की इच्छा करने वाले उनका सेवन न करते हुए भी दुर्गति को प्राप्त होते है।[१२] जैसे कोई मनुष्य काकिणी (प्राचीन मुद्रा का सबसे छोटा सिक्का) के लिए हजार कार्षापण गवा देता हे, जैसे कोई राजा अपथ्य आम को खाकर राज्य से हाथ धो बैठता हे, वैसे ही जो व्यक्ति मानवीय भोगो मे आसक्त होता है, वह दैवी भोगो को हार जाता हे।[13] व्यवहार रूप से भी देखने मे आया हे कि मानव भौतिक वस्तुओ की कामनाये करते हुए, काम भोगो मे आसक्ति रखते हुए, निरर्थक राग-द्वेष से ग्रसित होकर दीवानो की भाँति पापमयी क्रियाओ मे लगे रहते हैं। अपने कर्तव्यो से विमुख होकर भौतिक वस्तुओ की प्राप्ति मे अपना सर्वस्व बलिदान कर देते हे।

भौतिकता मनुष्य को कभी शान्ति न देकर, नारकी की भूख-प्यास बढाने की भाँति सदैव ही भटकाने वाले मार्ग म प्रवृत्त करती जाती ह। कामभोगो से मूर्च्छित होकर मूढ लोग यह नही समझ पाते कि यह समूचा ससार राग-द्वेष की अग्नि से जल रहा है।[१४] कितनी भी धन सम्पत्ति प्राप्त हो जाये, मानव शान्ति प्राप्त नही कर सकता है। जैन आगम **उत्तराध्ययन सूत्र** मे भी कहा गया कि यदि समूचा जगत् तुम्हे मिल जाये अथवा समूचा धन तुम्हारा हो जाये तो भी यह तुम्हारी इच्छा पूर्ति के लिए पर्याप्त नही होगा और वह तुम्हे त्राण भी नही दे सकेगा।[१५] इस तरह काम-भोगो, वासनाओ से मुक्त होकर नैतिक आदर्शों से युक्त जीवन ही सफल जीवन हे। वासनाओ से शून्य व्यक्ति मुक्ति मार्ग की ओर प्रवृत्त होता है।[१६]

मानव को राग-द्वेष का परित्याग कर सभी मे समान भाव से प्रवृत्त होकर उत्तम गुणो को धारण करना चाहिए। राग-द्वेष मनुष्य को निरर्थक हानि पहुचाते है। राग-द्वेष से मनुष्य चिता मे घुलता हुआ व्यथ ही अपने शरीर ओर स्वास्थ्य का विनाश करता है। पाप कर्मों का बन्ध करता हे। राग और द्वेष—ये दो पाप कर्मों के प्रवर्तक है।[१७] राग और द्वेष

१२ उत्तरज्झयणाणि—९/५३।

१३ वही—७/११।

१४ वही—१४/४३।

१५ वही—१४/३९।

१६ सग्ग सुगतिनो यन्ति परिनिब्बन्ति अनासवा।
धम्मपद, सम्पादक सत्यप्रकाश शर्मा, सस्करण १९७२ मेरठ, ९/१२६ पृ० ५६।

१७ रागद्दोसे य दो पावे पावकम्मपवत्तणे।
उत्तरज्झयणाणि—३१/३।

कर्म के बीज हैं। कर्म मोह से उत्पन्न होता है और वह जन्म-मरण का मूल है।[18] जहाँ राग-द्वेष से कर्मों का बन्ध होता है, वहाँ व्यवहार मे यह भी स्पष्ट है कि राग-द्वेष से मनुष्य व्यर्थ ही चिन्तित रहता है।

मानव को पापमयी प्रवृत्तियो का परित्याग कर अपने जीवन को नैतिक पुष्पो की सुगन्धि से आच्छादित कर आध्यात्मिकता की विमल गगा के समान पवित्र बनाना चाहिए, जहाँ पाँच महाव्रतो के सुमन खिल सके। प्राकृतिक मानसिक बुराइयाँ क्रोध, मान, माया, लोभ, व्याभिचार मानव के लिए बहुत घातक है। जैन आगम **उत्तराध्ययन सूत्र**[19] मे स्पष्ट किया गया है कि जिस मानव मे क्रोध है, मान है, हिंसा है झूठ है, चोरी है और परिग्रह है, वह जाति-विहीन, विद्या-विहीन और धर्म-विहीन है। इन विभिन्न पापो के दुष्परिणामो को भी स्पष्ट किया गया है। असत्यवादी के लिए कहा गया है कि असत्य बोलने के पश्चात्, पहले और बोलते समय वह दुखी होता है। उसका पर्यवसान भी दुखमय होता है। इस प्रकार वह रस मे अतृप्त होकर चोरी करता हुआ दुखी और आश्रयहीन हो जाता है।[20] क्रोध के दुष्परिणाम को स्पष्ट करते हुए कहा है कि—जो क्रोध को सतत बढावा देता रहता है और निमित्त कहता है, वह अपनी इन प्रवृत्तियो के कारण आसुरी भावना का आचरण करता है।[21] इसके अतिरिक्त मनुष्य क्रोध मे अधोगति मे जाता है, मान मे अधम गति होती है, माया से सुगति का विनाश होता है, लोभ से इस लोक और परलोक दोनो का ही विनाश होता है।[22] परिग्रही पुरुष के लोभ-लालच को स्पष्ट करते हुए बताया गया है कि कदाचित् सोने और चाँदी के कैलास के समान असख्य पर्वत हो जाएँ तो भी लोभी पुरुष को उनसे सन्तोष नही होता, क्योकि इच्छा आकाश के समान अनन्त है।[23]

इस तरह ये पापमयी प्रवृत्तियाँ मनुष्य के जीवन मे अशान्ति उत्पन्न कर उसे मृग-मरीचिका के समान ससार के भौतिक साधनो की प्राप्ति के लिए भटकाती है। मानव स्वार्थ मे लीन होकर दूसरो का अहित करते हुए सदैव निरर्थक और पापमयी क्रियाओ मे लगा रहता है। फलस्वरूप नरक मे जाकर अपार कष्ट भोगता है। तात्पर्य यह है कि क्रोध, मान, माया, हिंसा, लोभ, अनैतिकता और परिग्रह आदि प्रत्येक अवस्था मे कष्टकारी है। अत इनका परित्याग करके ही मनुष्य परम आनन्द की प्राप्ति गृहस्थ आश्रम मे कर सकता है।

मानव को दुख-सुख मे समान रहने का विवेचन करते हुए **उत्तराध्ययनसूत्र** मे कहा गया है कि—मानव को ममत्वरहित, अहकार रहित, निर्लेप, गौरव को त्यागने वाला, त्रस

---

१८ रागो य दोसो वि य कम्मबीय कम्म च मोहप्पभव वयन्ति।
वही—३२/७।

१९ वही—१२/१४।

२० वही—३२/७०।

२१ वही—३६/२६६।

२२ वही—९/५४।

२३ वही—९/४८।

और स्थावर सभी जीवो मे समभाव रखने वाला होना चाहिए।[२४] लाभ, अलाभ, सुख दुख, जीवन-मरण, निन्दा-प्रशसा, मान-अपमान मे सम रहने वाला होना चाहिए।[२५] गौरव, कषाय, दण्ड, शल्य, भय, हास्य और शोक से निवृत्त निदान और बन्धन से रहित होना चाहिए।[२६]

इस तरह गृहस्थ व्यक्ति को सुख-दुख मे समभाव रखते हुए आशावान् होकर निःस्वार्थ भाव से कार्य करते हुए जीवन यापन करना चाहिए। वही सुख का देने वाला है। आशावान् होकर मन मे दृढता लाकर, पराक्रमी गुणो को धारण कर पुरुषार्थी होना चाहिए, यही सफलता के दायक है। 'चुलकलिंग जातक'' की गाथा[२७] मे मनुष्य को सफलता प्राप्त करने के लिए उपदेशित किया गया है—"सयम, समाधि, मन की एकाग्रता, अव्यग्रता, समय पर निष्कर्मण, दृढ वीर्य तथा पुरुष पराक्रम गुणो का होना आवश्यक है। इस तरह गृहस्थ सयम, शान्ति के जीवन को धारण कर बुराइयो का परित्याग कर परमानन्द की निःसन्देह प्राप्ति कर सकता है। सुख-दुख मे समभाव रखते हुए मुस्कराते रहना चाहिए, जैसे कृष्ण नाग शैया पर लेटे हुए भी खुश रहने के भाव को द्योतित करते है।

गृहस्थ-आश्रम इस प्रकार हर दृष्टिकोण से अपना आध्यात्मिक महत्त्व रखता है। गृहस्थ आश्रम मे मनुष्य शान्ति पूर्वक जीवन-यापन कर परिवार, समाज, राष्ट्र, सभी के प्रति अपने कर्तव्यो की पूर्ति कर सकता है।

---

२४ उत्तरज्झयणाणि १९/८९।
२५ वही १९/९०।
२६ वही १९/९१।
२७ जातक सम्पादक वी० फासबल, सस्करण १९६० लन्दन, गा० ४, पृ० ७।

———

[पृष्ठ ४५५ का शेषाश]

महाराज के दर्शनार्थ आये कभी-कभी अधिक समय व्यतीत होने पर श्रमण को उनकी कमी खटकने लगती, सर्वत्र सूना सा लगता, जीवन निरर्थक लगता। अब महाश्रमण तो रहे नही कि वे उनके चरणो मे शीश रखकर अपनी राह का पता पूछते। अब तो उनको ही अपना मार्ग निर्देशक बनना था और इसके लिये वे अपने को अयोग्य पा रहे थे।

समय अपनी निर्बाध गति से आगे बढता गया। श्रमण की ख्याति बढती गई व साथ ही आयु भी। शरीर यौवन से प्रौढ व प्रौढ से वृद्धावस्था की क्षीणता की ओर चलने लगा और एक दिन यात्रा का अन्त आ गया—एक नई यात्रा का प्रारभ, अपनी गोद मे छुपाये।

(क्रमश)

—,०,—

चाय-युग

—डा० जेठमल भसाली

जैन-दर्शन का मौलिक सिद्धान्त है—स्याद्वाद अर्थात् किसी भी विषय के दो अन्तो (Extremes) के बीच का मध्यम मार्ग। आधुनिक युग का सर्व प्रिय पेय चाय-पान को भी हमे इसी दृष्टि मे देखना चाहिए। सर्वथा उपयोगी और सर्वथा निरुपयोगी तो ससार की कोई भी वस्तु होती नही।

आज के सभ्य युग मे चाय पीना अधिकाश मानवो के जीवन की एक साधारण सी आदत बन गई है। क्या गृहस्थ, क्या सन्यासी, सभी चाय पीना एक निर्दोष पेय मानते हैं। एक बार चाय की आदत बन जाने पर यह चिर-सगिनी बन जाती है। सभ्य सुशिक्षित समाज के समारोह का रस-आनन्द या अपने घर पधारे मेहमानो का स्वागत सत्कार चाय-पान के अभाव मे सूना-सा लगता है। जहा भी हम जरूरी कार्य-वश मिलने-जुलने जाते है, वहा गरमा-गरम चाय तो बिना मागे मिल जाती है, पर पानी तो माग कर ही पीना पडता है। कवि "काका हाथरसी" ने ठीक ही कहा है—

प्लेट फार्म पर यात्री पानी को बिल्लाय।
पानी वाला है नही—चाय पिओ जी चाय॥

वास्तव मे आज का युग चाय युग है। शहरो मे तो हर गली, हर सडक पर आर्डर देते ही गरमा-गरम चाय का प्याला आपकी सेवा मे तैयार। आज के युवक को तो सुबह-सुबह बिछौने पर ही गरम चाय मिलनी जरूरी है—Bed Tea, इसे पिये बिना तो वह बिछौने से उठ ही नही पाता।

सुबह चाय, दोपहर मे चाय, सन्ध्या-समय चाय और शायद रात मे सोते समय भी चाय—यह तो आज साधारण सा कार्यक्रम बन गया है। फिर जरूरी कार्यवश दिन मे कही भी मिलने जाये, तो चाय की मनुहार तैयार। चाय पीना इन्कार करे, तो हम ग्रामीण, असभ्य, अशिक्षित समझे जाये।

गृहस्थो की देखा-देखी साधु समाज मे भी चाय का प्रचलन बढा है। कई साधु-साध्वियो को तो चाय पीने की आदत भी बन गई है। सुना है, आचार्य श्री तुलसी ने चाय-पान की आदत को रोकने हेतु साधु-समाज पर कुछ प्रतिबन्ध भी लगाये है। पर आज तो

चाय-पान पानी की तरह गृहस्थ समाज मे सर्वत्र सुलभ है और इसे एक निर्दोष पेय माना जा रहा है।

अनुभव के आधार पर चाय के रसिको का कहना है, मानना है—कि चाय की एक-एक पत्ती मे चुस्ती है, फुरती है। यह चेतना लाती है, तरो-ताजा बनाती है, स्फूर्ति लाती है। यह भयकर सर्दी मे शरीर को गरम और असह्य गर्मी मे शरीर को ठडा रखती है। भयकर से भयकर गरमी मे भी चाय तुरन्त पसीना निकाल कर शरीर को सुखद शीतलता का अनुभव कराती है। दिमाग रूपी कार (Car) के लिए चाय पेट्रोल का काम करती है। यह दिमाग को तरो-ताजा बनाकर थकावट-सुस्ती दूर करती है। चिन्तन करने की क्षमता मे वृद्धि करती है।

आधुनिक वैज्ञानिक प्रयोगशालाओ मे चाय का परीक्षण करने पर उसमे निम्न रसायनिक द्रव्य पाये गये —

केफीन — (Caffeine)

केफीन एक प्रकार का विष है। शुद्ध केफीन का एक छोटा-सा बिन्दु इजेक्शन द्वारा शरीर मे प्रविष्ट कराया गया तो चन्द मिनटो मे प्राणान्त हो गया। मस्तिष्क मे केफीन सीधा प्रविष्ट कराया गया तो शरीर मे तीव्र झटके आने लगे। तीव्र विष प्रमाणित होने पर भी चाय मे केफीन की मात्रा २ से ४ प्रतिशत ही होती है, अत चाय-पान से शरीर को विशेष हानि नही पहुचती। हम जो चाय पीते है उनका केफीन शरीर मे अपना कार्य-सम्पादन कर गुर्दो (Kidneys) मे आकर मूत्र-मार्ग द्वारा पेशाब के रूप मे बाहर निकल जाता है तो केफीन जन्य जहर के विषैले प्रभाव की यह प्रक्रिया एक प्रकार से शरीर का प्राकृतिक सरक्षण है। यदि केफीन पेशाब के साथ मिलकर मूत्र-मार्ग द्वारा शरीर मे बाहर न निकले और शरीर मे इकट्ठी होने लगे तो हालत सोचनीय बन जाये।

सामान्य स्थिति मे चाय मे अति अल्प मात्रा मे मौजूद केफीन शरीर मे ताजगी एव स्फूर्ति लाती है। रात्रि-जागरणजन्य आलस्य व सुस्ती को दूर करती है। दिमाग मे ताजगी लाकर उसमे नये विचार, नये चिन्तन को उत्पन्न करती है। यह जलवायु परिवर्तनजन्य विकृतियो से शरीर की रक्षा करती है। केफीन पेट की गैस सम्बन्धी शिकायतो को भी मिटाती है। शरीर मे सन्धिस्थलो-जोडो के दर्द-गठिया (Rheumatism) मे भी केफीन लाभप्रद सिद्ध हुई है।

चाय की पत्ती मे Theine नामक रासायनिक भी पाया गया है, जो सिरदर्द, शरीर के दर्द और स्नायुजन्य पीडा मे भी उपयोगी सिद्ध हुआ है।

चाय मे टैनीन (Tannin) नामक एक कषैला (Astringent) द्रव्य भी पाया जाता है। जब चाय लम्बे समय तक पानी मे उबाली जाती है, अथवा ठडी होने पर चाय को पुन-उबाला जाता है, तो ऐसे चाय के पानी मे टैनीन की मात्रा अत्यधिक घुल जाती है। ऐसी टैनीन युक्त चाय शरीर मे विष का सा काम करती है। अत चाय को लम्बे समय तक पानी मे उबाल कर पीना हानिप्रद है। इससे भूख बद सी हो जाती है। हाजमा बिगड जाता है।

पानी मे अधिक देर तक चाय को उबालने से टैनीन का काढ़ा सा बन जाता है। ऐसा काढा टॉन्सील (Tonsils) के बढ जाने या गले मे बढे हुए दानो के लिए कुल्ले (Gargle) के रूप मे उपयोगी माना गया है। इसके कसैले प्रभाव से टॉन्सील या गले के सूजनमय दाने सिकुडने लगते है। टॉन्सील व दानेजन्य खासी शान्त होने लगती है।

चाय मे कई प्रकार के विटामिन भी पाये जाते हैं। इनसे चर्म का रग निखरता है। वह लचीला एव सुन्दर बनता है। चाय पसीना लाकर चर्म के रोम-छिद्रो की सफाई कर डालती है।

चाय बनाने का तरीका

पानी के अच्छी तरह से उबल जाने के पश्चात् उसमे चाय की पत्तिया डाल कर उस बर्तन के मु ह को अच्छी तरह ढक दे और उसे तुरन्त चूल्हे से नीचे उतार लें। उबले हुए इस पानी की भाप से चाय पत्तियो का सार-अ श पानी मै घुल जाता है। पाच-सात मिनट बाद इसे छान ले और इसमे गरम दूध एव चीनी मिला दे। चाय तैयार है। ऐसी हुई चाय स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है, इसमे हानि की सभावना बहुत ही कम रहती है।

चाय के पानी मे अधिक रग या लाली लाने की दृष्टि से चूल्हे पर चाय को पानी मे उबालते रहना उचित नही। इससे उसमे टैनीन की मात्रा बढ जाती है, जो शरीर के लिए हानिप्रद है।

चाय को सुगन्धिन एव स्वादिष्ट बनाने हेतु उबलते पानी मे इलायची, सौठ, काली मिर्च, तेज पत्ती आदि का महीन पाउडर या चूर्ण अति अल्प मात्रा मे मिलाया जा सकता है। यह मिश्रण चाय को स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक लाभप्रद बना देता है।

चाय के गरम पानी मे दूध और चीनी के स्थान पर कागजी नीबू (Lemon) का रस मिलाकर पीना मधु-मेह (Diabetes) के रोगी के लिए लाभकर है।

चाय-पान के सबध मे अति-मात्रा सर्वथा त्याज्य है। चाय दिन भर मे सिर्फ दो दफे (सुबह एव दोपहर मे) पीना उचित है और वह भी एक बार मे एक कप से अधिक नही। काम करते समय अधिक शारीरिक व मानसिक थकावट का अनुभव होने पर एक कप अति-रिक्त चाय ली जा सकती है। चाय पीने के पहले कुछ अल्पाहार अवश्य करे। खाली पेट चाय पीना खतरनाक है।

रात मे सोते समय चाय पीना उचित नही। इससे रात मे बार-बार पेशाब करने के लिए उठना पडता है और गहरी नीद नही आ पाती।

शरीर की निम्न स्थितियो मे चाय पीना उपयोगी है —

- सिर-दर्द एव शरीर सबधी साधारण पीडा-दर्द मे।
- सर्दी-जुकाम जन्य बेचैनी मे।
- काम करते समय मानसिक व शारीरिक थकावट का अनुभव होने पर स्फूर्ति एव ताजगी लाने की दृष्टि से।
- गठिया रोग (Rheumatism) मे।

अधिक बार या अधिक मात्रा मे चाय पीना निम्न रोगो को निमन्त्रण देना है —

- हृदय स्पन्दन में वृद्धि (Palpitation of the Heart) हृदय रोग वाले सज्जन यथासम्भव चाय पीने से बचें।
- अग्निमन्दता—अधिक चाय पीने से भूख मर-सी जाती है। खाने की इच्छा ही नही रहती। अपच की शिकायत रहती है।
- अनिद्रा (Sleeplessness) अधिक मात्रा मे चाय पीने वालो को गहरी नीद नही आती। नीद के अभाव मे सुबह उठने पर ताजगी का अनुभव नही होता। उठते ही बेड-टी (Bed Tea) मिले तो बिछौना छोडे।
- कब्ज—मलावरोध (Constipation)। अधिक चाय पीने वालो का मल सूखने लगता है। मल की गोलिया सी बध जाती है। पेट पूरी तरह कभी साफ नही हो पाता। जुलाब ले-लेकर पेट की सफाई करनी पडती है।

कहा जाता है कि भारत के ऋषि मुनियो ने सोम-रस (एक प्रकार का मधुर मद्य) पान कर-कर के सुन्दर ग्रन्थो (सुन्दर साहित्य) की रचना की थी। आज के चाय-युग मे चाय पी-पीकर, कवि, साहित्यकार उत्कृष्ट साहित्य की रचना करते है। राजनैतिक एव सामाजिक नेता-गण प्रभावशाली उत्तेजक भाषण देकर जनता को आकर्षित कर रहे है। टीचर, प्रोफेसर क्लास रूम मे छात्रो को अपनी विद्वता का परिचय दे रहे है। चित्रकार एव कलाकार कलात्मक सामग्री का निर्माण कर रहे है। व्यापारी वर्ग अपने ग्राहको को चाय पिला-पिला कर ऊचे दामो मे अपना माल विक्रय कर रहे हैं। वास्तव म आज के इस चाय-युग मे चाय का सर्वत्र बोलबाला है। अत अब चाय-पान को एक निर्दोष पेय मान लिया गया है। हमारे प्रिय प्रधान मत्री मोरारजी भाई ने मद्य-पान पर तो रुकावट जरूर लगाई है, परन्तु चाय-पान पर रुकावट लगाने की हिम्मत शायद वे न कर सके।

— o —

एक सन्देश : युवापीढी के नाम

कु० मुकेश जैन

ससार मे यदि कोई कठिन साधना है, तो वह यह है कि मनुष्य जीवन पाकर वास्तविक इन्सान बनना। मानव यदि मनुष्यत्व को जीवैन मे धारण करे, तो मानव जन्म धारण करने के उद्देश्य को स्वत पा जाता है। जैन आगम **उत्तराध्ययन सूत्र** मे मनुष्यत्व के लौकिक, आध्यात्मिक महत्त्व को अभिव्यक्त करते हुए कहा गया है कि मनुष्यत्व मूलधन है।[1] मनुष्य के द्वारा मानवता, नैतिकता और सन्तोष को अपना लेने से परिवार और समाज का स्वत विकास हो जाता है। यदि एक झोपडी मे रहने वाले व्यक्ति का रहन-सहन, आचार-विचार, कुप्रवृत्तियो से मुक्त पर-कल्याण की भावना पर आधारित है, तो उसका जीवन, परिवार सभी निरन्तर लौकिक सुख-शान्ति के पथ पर अग्रसर होता जाता है। यदि भौतिक वस्तुओ एव धन सम्पत्ति से युक्त एक परिवार मे रहने वाले व्यक्तियो के चरित्र मे भ्रष्टता, अनैतिकता, अमानवता व्याप्त होती है, वह परिवार अच्छा तो हो ही नही सकता है, निसदेह वह अल्प काल मे ही पतन के गर्त मे चला जाता है। परिवार मे प्रेम-प्रीति का वातावरण भी आवश्यक है। जिस परिवार मे प्रेम-प्रीति न हो, ऐसे परिवार मे जैन मुनि को भिक्षा लेने हेतु न जाने का निर्देश किया गया है।[2]

परिवार, समाज और राष्ट्र के निरन्तर विकास के लिए नयी पीढी के जीवन को देखना होगा। नयी पीढी और पुरानी पीढी मे विचारो का एक सघर्ष चलता रहता है। आज की आधुनिक पीढी को सही दिग्दर्शन की आवश्यकता है। नयी पीढी मे व्याप्त बुराइयो को देखते है तो दृष्टिगोचर होता है कि आज की नयी पीढी श्रम-साधना से दूर हटती जा रही है। आज का नवयुवक दूध तो पीना चाहता है, परन्तु गोबर उठाने मे उसे अपने हाथो के गन्दे हो जाने का भय बना रहता है। वह स्वादिष्ट खाद्य पदार्थों के सेवन के लिए लालायित रहता है, परन्तु गेहूँ पिसवाने मे अपमान समझता है। आज के युवक-युवतियाँ हाथो से काम करना एक ओछी बात समझने लगे है। वस्तुत किसी भी अच्छे फल देने वाले श्रमसाध्य कार्य को छोटा समझना घटियापन है, क्योकि कोई भी कार्य मनुष्य को निम्न नही बनाता, कोई श्रम करने से छोटा नही हो जाता है, ऐसी धारणा ही मनुष्य का विकास कर सकती है।

पाश्चात्य प्रभाव से युक्त तरुण-तरुणिया होटलो, क्लबो, सिनेमाओ मे जाकर नयी

संस्कृति और सभ्यता के पालन का ढिंढोरा पीटते हुए, भौतिक वस्तुओ के उपभोग के क्षणिक सुखो मे लीन हो जाते है। ये क्षणिक सुख मानव को शान्ति और संतोष प्रदान न कर जीवन मे एक विचित्र अशान्ति भर देते हैं। आज देखते है कि बडे-बडे पदो पर नियुक्त डाक्टरो, प्रोफेसरो, इन्जीनियरो आदि मे भी अशान्ति और निराशा व्याप्त है। भौतिकता और काम-भोगो की कामना वाले इस चमक-दमक के युग मे मनुष्य खोखली, अस्थायी, गर्व-मद से भरी झूठी इज्जत के चक्कर मे लगे रहते हैं। इसका कारण आज के मानव का आध्यात्मिक एव आत्मिक ज्ञान से विहीन होना है। आत्मा को आध्यात्मिकता से ही निरोगी बनाया जा सकता है। अपने प्राचीन धर्मशास्त्रो, आचार-विचार के साहित्यो मे निर्दिष्ट आध्यात्मिकता और नैतिकता को जीवन का अग बनाकर परम शान्ति प्राप्त की जा सकती है।

मनुष्य को जीवन मे आध्यात्मिकता और नैतिकता के साथ-साथ निष्काम भाव से युक्त पुरुषार्थ की भी अत्याधिक आवश्यकता है। उत्साह से युक्त पुरुषार्थी बनकर परिवार, राष्ट्र और समाज का कल्याण किया जा सकता है। बौद्धग्रन्थ **धम्मपद**[३] मे भी उपदेशित किया गया है—"उत्साह अमृतत्व का मार्ग है, आलस्य मृत्यु का मार्ग है। आलस्य रहित व्यक्ति मृत्यु-दण्ड को प्राप्त नही होते, किन्तु जो आलसी है, वे तो पहले से ही मरे हुए के समान है।" भूत-भविष्य की चिन्ता किये बिना उत्साह से पुरुषार्थ करना ही मानव धर्म है। बौद्ध "**मुगपक्ख जातक**"[४] की गाथा मे कहा गया है कि भविष्य सम्बन्धी सकल्प-विकल्प उठाने वाला, भूत की चिन्ता करने वाला मूर्ख व्यक्ति कटे हुए बासके समान सूखता रहता है।

भौतिक युग का यह मानव अपने स्वार्थों मे इतना अन्धा हो गया है कि उसे अपने अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नही पडता है तथा अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु कभी धर्म, कभी जाति, कभी भाषा के नाम पर लडता रहता है। क्या लडने के लिए ही मनुष्य का जन्म हुआ है? मनुष्य यदि किसी के लिए फूलो को जुटाने मे अक्षम है तो दूसरो के मार्ग मे उसे काटे बिछाने का अधिकार कहा से मिला है। यदि किसी को अमृत नही पिला सकते है, तो जहर भी उसके लिए नही जुटाना चाहिए। किसी के जीवन को चन्दन से सुगन्धित नही कर सकते हैं, तो उसके जीवन मे गन्दगी भी नही भरनी चाहिये। दूसरो का अहित सोचने वाला एक दिन स्वय ही कष्टो से घिर जाता है।

मानव अपने स्वार्थों की पूर्ति हेतु सभी सामाजिक परम्पराओ को तोडने मे जरा भी हिचकिचाहट नही रखता है। नवयुवक तो स्वतन्त्र विकास का बहाना बनाकर सामाजिक व्यवस्थाओ को तोडने मे अपना परम कर्तव्य ही समझने लगे है। परन्तु सामाजिक परम्पराओ का निर्वाह करते हुए, परकल्याण को जीवन का उद्देश्य बनाकर, धर्मयुक्त, उत्साहपूर्ण, स्व-इच्छाओ पर नियन्त्रण करते हुए, परिवार, समाज और राष्ट्र के विकास मे योगदान देने वाले जीवन का निर्वाह करना चाहिये। यौवन मे उन्मुक्त न होकर, विवेक और बुद्धि से सामान्य कठिनाइयो का निवारण कर, कुप्रवृत्तियो का परित्याग कर एक आदर्श स्थापित करना चाहिए।

क्रोध, मान, मद, राग-द्वेष, हिंसा, सुरासेवन आदि विनाशक बुराइयो का परित्याग, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह महाव्रतो को जीवन मे धारण कर मधुर-भाषी,

विनम्र, उदार, सयमी, पराक्रमी होकर उत्साहपूर्वक जीवन-निर्वाह परम सुख की ओर ले जाने वाला मार्ग है। बाहरी सजावट, खोखले आडम्बर, निरर्थक कर्मकाण्ड सदैव ही पतन की ओर ले जाते हैं। शुद्ध आचरण से सर्वस्व प्राप्त किया जा सकता है, इससे सस्कृति तथा सभ्यता की सुरक्षा की जा सकती है। विशुद्ध भावनाये ही यशस्वी बना सकती हैं। प्रत्येक अच्छा कार्य यथा—परोपकार, त्याग और दान ही भव-भवान्तर तक साथ जाने वाले है। सुगन्धि बाटन से ही सुगन्धि मिलती है, धर्म, उत्साह, शुद्ध-आचरण, पराक्रम, सयम, सन्तोष, स्वात्मा का अवलोकन, परकल्याण की भावना हो तो भौतिकता के स्थान पर आध्यात्मिकता का स्थायी सूर्य नवपीढी के जीवन मे स्थायी शान्ति का प्रकाश भर सकता है।

बुर्जुआ पीढी को भी सभी दोषो के लिए नवयुवको को दोषी न ठहरा कर सही दिग्दर्शन, प्रेम के द्वारा नैतिक आदर्शों से युक्त समाज की स्थापना करनी चाहिए। न जाने कितने तरुण कल के गौतम, गाँधी, महावीर, चन्दनबाला, ईसामसीह, सीता, नानक और पन्नाधाय बनेगे। यौवन को सही दिग्दर्शन की आवश्यकता होती है। महर्षि बाल्मीकि ने यौवन अवस्था को महान् सकट माना है। अत तरुण वर्ग मे छिपी अपार शक्ति को सही मार्ग पर ले जाकर इसी धरा पर ही स्वर्ग स्थापित किया जा सकता है। आपस मे समन्वय स्थापित कर हर परिस्थिति मे साम्य-भाव से सुखी रहने की जीवन-साधना ही हमारा परम लक्ष्य हो, तभी परिवार, समाज और राष्ट्र का कल्याण हो सकेगा।

---

१ माणुसत्त भवे मूल,
उत्तरज्झयणाणि (उत्तराध्ययन सूत्र) स०—मुनि नथमल, सस्करण १९६७, कलकत्ता, ७/१६।

२ अचियत्त कुल न पविसे, चियत्त पविसे कुल।
दसवेआलिय तह उत्तरज्झयणाणि स०—मुनि नथमल, कलकत्ता, ५/१७।

३ अप्पमादो अमतपद, पमादो मच्चुनो पद।
अप्पमत्ता न मीयन्ति, ये पमत्ता यथा मता॥
धम्मपद, सम्पादक एव अनुवादक—सत्य प्रकाश शर्मा, सस्करण १९७२, मेरठ, २/१।

४ जातक षष्ठम्, सम्पादक वी० फॉसबल, सस्करण १९६० लन्दन, गा० ९० पृ०२५।

समाचार-दर्शन

राजलदेसर मर्यादा-महोत्सव में

महाप्रज्ञ मुनि श्री नथमल तेरापन्थ के दसवें आचार्य घोषित

राजलदेसर मे आयोजित ११५वे मर्यादा महोत्सव के अवसर पर **आचार्य श्री तुलसी** अपने विद्वान् शिष्य **मुनि श्री नथमल जी** को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। मुनिश्री की प्रखर मेधा, सूक्ष्मतम गहराइयो मे पैठने की शक्ति, गुरु के प्रति एकलव्य जैसा समर्पण भाव और आचार निष्ठा ने आपको ज्ञान, दर्शन और चारित्र के शिखर पर प्रतिष्ठित किया है। आप हिन्दी, सस्कृत एव प्राकृत के मनीषी विद्वान है। अब तक आपके लगभग एक सौ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है। आप सस्कृत के आशुकवि है। टमकौर (राज०) मे सन् १९२० मे जन्मे, मुनिश्री सन् १९३० मे दीक्षित हुए, सन् १९६३ मे निकाय-सचिव बने, सन् १९७८ मे '**महाप्रज्ञ**' उपाधि से विभूषित हुए और अब दिनाक ३ फरवरी, १९७९ को युवाचार्य घोषित किए गए है।

साध्वी प्रमुखा कनकप्रभा जी "महाश्रमणी" विशेषण से अलकृत

राजलदेसर मे आयोजित ११५वे मर्यादा महोत्सव पर **आचार्यश्री तुलसी** ने **साध्वी प्रमुखा कनकप्रभा जी** की सेवाओ का मूल्याकन करते हुए कहा—साध्वी प्रमुखा कोई आचार्य न होने पर भी आचार्य-प्रवृति का पूरा दायित्व कुशलतापूर्वक निभा रही है। सात साल के स्वल्प समय मे ही इन्होने समूचे समाज के हृदय को जीत लिया, यह प्रत्यक्ष है। इनकी सहज विनम्रता, आचार-कौशल और सेवा-भावना से मै प्रसन्न हूँ। अत मै इनको आज महाश्रमणी विशेषण से अलकृत करता हू।

—कमलेश चतुर्वेदी

युवाचार्यश्री का अभिनन्दन

मुनिश्री महेन्द्र कुमार जी

सयोजकीय वक्तव्य मे मुनिश्री महेन्द्र कुमार जी ने कहा—युवाचार्य के रूप मे श्री महाप्रज्ञ जी के प्रतिष्ठापन से समस्त अध्यात्म-जगत् को एक नई चेतना प्राप्त हुई है। भौतिकता की बाढ को रोकने के लिए आचार्यप्रवर ने एक सुदृढ बाध बना कर सारे युग

को बचाया है। लगता है, युवाचार्य के निर्वाचन के समय स्वय आचार्य भिक्षु आचार्यश्री तुलसी के रूप मे प्रकट थे।

४ फरवरी ७९ को राजलदेसर मे युवाचार्यश्री के अभिनन्दन समारोह मे व्यक्त विभिन्न वक्ताओ के वक्तव्यो से कुछ चुने हुए उद्‌गार यहा प्रस्तुत हैं—

युवाचार्यश्री के सहपाठी मुनिश्री बुद्धमल जी

मुनिश्री ने सतो की ओर से अभिनन्दन पत्र भेंट करते हुए कहा कि—आज प्रात काल की घटना है। जब मैं अपने कमरे मे था तो युवाचार्य सीधे मेरे कमरे मे आ गये और मुझे कहा—तुम तो मेरे साथी हो। मेरा हाथ पकडकर आचार्यश्री के पास ले गये। आचार्यश्री ने जो शब्द फरमाये, उनको सुनकर मैं गद्‌गद् हो गया। बोलने की इच्छा होते हुए भी नही बोल पाया। सुदामा श्रीकृष्ण के पास चावल लेकर गये थे। अब मै क्या दू, जब द्वारकाधीश स्वय घर आ गये है। मेरे पास चावल नही है, यह अभिनन्दन-पत्र है, उसे आपको समर्पित करता हूँ।

साध्वीप्रमुखा महाश्रमणी श्री कनकप्रभा जी

श्रमणी सघ की ओर से साध्वी प्रमुखा जी ने युवाचार्यश्री को अभिनन्दन-पत्र भेंट करते हुए कहा कि—विशिष्ट व्यक्ति का दिन होता है तो उसके विषय मे समाचार-पत्रो मे चर्चा की जाती है। युवाचार्य की नियुक्ति अप्रत्याशित हुई है, फिर भी मासिक कादम्बनी के फरवरी अक मे भाई कमलेश चतुर्वेदी द्वारा लिखित एक लेख है, जिसमे युवाचार्य के जीवन की झलक आपको पढने को मिलेगी।

साध्वीश्री सघप्रभा जी

आज मैं अपनी जन्मभूमि मे इस प्रकार का महोत्सव देखकर प्रमुदित हो रही हूँ। जिन्होने यह महोत्सव नही देखा, सभवत वे आगे भी ऐसा महोत्सव नही देख पायेंगे। सारा वातावरण उत्साह से प्रफुल्लित हो रहा है।

साध्वीश्री कमलश्री

टमकोर गाँव को लोग नही पहचानते थे। उसकी पहचान मुनिश्री नथमल जी के नाम से होती थी।

मुनिश्री श्रीचन्द्र जी

कल का दृश्य देखकर मेरा मन प्रसन्नता से भर गया। दूसरी ओर मुझे रिक्तता की अनुभूति हो रही है। मेरा एक मात्र जो आधार था, आज वह आधार व्यापक बन गया।

मुनिश्री सागरमल जी 'श्रमण'

मुझ कल मौका मिलना चाहिए था, नही मिला। उस अभाव के लिए मैं गद्‌गद् हूँ और इस आनन्द के लिए मूक अभिनन्दन करता हूँ।

मुनिश्री गुलाबचन्द्र जी 'निर्मोही'

आज मुझे प्रसन्नता है। युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ जी अपनी महाप्रज्ञता का प्रसाद युगो-युगो तक जनता को बाँटते रहे, यही इस अवसर पर मगल कामना है।

•

मुनिश्री जंवरीमल जी

कशीश अमल मे गर हो तो जहान झुकता है।
गरजता है अभ्र जब, खुद ही नाच उठता है मोर ॥१॥
अभ्र के गरजने पर गर नही नाचता है मोर
तो समझ लो वो मोर नही है, है कोई और ॥२॥
जिनको शासन का ताज बनाया गया वो दरसल वेमिस्ल है।
जिनको इतना ऊचा उठाया गया, वो सबकी निगाह मे काबिल है ॥३॥
गुलिस्ताने जहाँ मे फूल तो है जा बजा लेकिन।
जो अपनी बू से करदे मस्त वह हर गुल नही होता ॥४॥
मेरा दिल तो है सयदा, इस चमन के ऐसे फूलो पर।
(कि) जिनमे रग भी हो, हुस्न भी हो और बू भी ॥५॥
ओ राही राहे हक पर दिन रात चलता जा तू।
सरसब्ज गुल की मानिद हर वक्त फलता जा तू ॥६॥

श्री खेमचन्द सेठिया

आचार्य प्रवर ने जो निर्णय लिया है, उससे हम सबको अपार प्रसन्नता है। सारा समाज प्रसन्नता से झूम उठा है। पण्डाल भी खुशी के कारण ऊपर उछल गया। आचार्य-प्रवर को युवराज पद गगापुर की हिरणो की हवेली मे मिला था, जिससे आपकी गति हिरणो की तरह तेज रही है। आज युवाचार्य का चुनाव नाहरो की हवेली मे हुआ है। इसलिये ये भी नाहरो की तरह गूजते रहेगे।

श्री मोहनलाल कठोतिया, अध्यक्ष-आदर्श साहित्य सघ एव सयोजक-अध्यात्म साधना केन्द्र दिल्ली

आचार्यश्री महान् दूरद्रष्टा है। आपने युवाचार्य पद पर महाप्रज्ञ मुनिश्री नथमल को आसीन करके हमारे धर्मसघ की नीव पाताल तक पहुचा दी है।

समाज के वरिष्ठ कार्यकर्ता श्री हनुमानमल जी बेगानी

हम बडे ही भाग्यशाली है, जिन्हे इतना सुन्दर अवसर देखने को मिला। मैं बार-बार आपका अभिनन्दन करता हुआ यही प्रार्थना करता हूँ कि हमारे परिवार पर आपकी कृपादृष्टि बनी रहे।

श्री श्रीचन्द जी बेगानी, मन्त्री—जैन विश्व भारती, लाडनूं

·· मैं जैन विश्व भारती परिवार की ओर से आचार्यश्री का अभिनन्दन करता हूँ।···

श्री कन्हैयालाल छाजेड़, अध्यक्ष—अखिल भारतीय ते० यु० परिषद

तन से, अवस्था से और चिन्तन से युवाचार्य युवक हैं। इसलिए युवको की ओर से एक युवक का अभिनन्दन करते हुए गौरव की अनुभूति कर रहा हूँ।

सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री जयदेव गोयल

बीकानेर से राजलदेसर की रेल यात्रा मे कादम्बिनी फरवरी अक देखने को मिला। पन्ने उलटते हुए नजर भाई कमलेश चतुर्वेदी के लेख "वह एक पदयात्री" पर अटक गई। पढकर मन मे न जाने क्यो एक अतुलित आनन्द की अनुभूति हो रही थी। राजलदेसर मे वह आनन्द शतगुणित हो उठा जब आचार्यप्रवर ने महाप्रज्ञ मुनिश्री नथमल जी को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। यदि इस ऐतिहासिक एव अभूतपूर्व अवसर को न देखता तो जिन्दगी भर अपने को माफ न कर पाता।

समाज के वरिष्ठ कार्यकर्ता श्री शुभकरण दसाणी

यह सुन्दर दृश्य देखकर मै भाव-विभोर हो रहा हूँ। क्या कहू? मुझे गोस्वामी तुलसीदास की वह पक्ति याद आ रही है—**गिरा अनयन नयन बिनु बानी** जिह्वा के नयन नही है और नयनो के जीभ नही है। इस पुनीत अवसर पर सिर्फ एक बात कहना चाहता हू। पद को पाकर व्यक्ति गौरवान्वित होता है, परन्तु कभी-कभी व्यक्ति को पाकर पद शोभित होता है। आज यह युवाचार्य का पद भी महाप्रज्ञ को पाकर धन्य हो रहा है।

युवक कार्यकर्ता श्री गुलाबचन्द जी चण्डालिया, राजलदेसर

हम राजलदेसर वासियो की प्रसन्नता का आज कोई ठिकाना नही है। आचार्यवर ने महती कृपा करके हमे एक साथ दो-दो अवसर प्रदान किये। बृहद् मर्यादा महोत्सव के साथ ही युवाचार्य का गरिमापूर्ण पद भी राजलदेसर की धरती पर प्रदान किया गया। मै अपनी ओर से तथा समस्त राजलदेसर वासियो की ओर से श्रद्धास्पद आचार्यप्रवर तथा युवाचार्य महाप्रज्ञ जी का शत-शत अभिनन्दन करता हू।

महाप्रज्ञ की कहानी जनता की जुबानी

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापथी सभा, उदयपुर की ओर से युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ अभिनन्दन समारोह का समायोजन मुनिश्री सागरमल जी 'श्रमण' के सान्निध्य मे तेरापथी सभा भवन मे किया गया। जिसमे शहर के गणमान्य नागरिको के अलावा बौद्धिक, साहित्यकार, पत्रकार बडी सख्या मे उपस्थित थे। शहर के विभिन्न वर्गों के लोगो ने श्रद्धा-सुमन प्रस्तुत किए। इस कार्यक्रम मे बम्बई सूरत आदि महानगरो के लोग भी उपस्थित थे।

श्री कमलचन्द सोगानी

उदयपुर विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर श्री कमलचन्द सोगानी ने युवाचार्यश्री का अभिनन्दन करते हुए कहा—जब मैंने मुनिश्री नथमल जी को युवाचार्य

पद प्रदान करने की घोषणा सुनी तब मुझे कोई आश्चर्य नही हुआ। क्योकि मेरी तो अपनी दृढ धारणा बनी हुई थी। आचार्यश्री तुलसी स्वय महान है उनकी दृष्टि महान है और उनका यह निर्णय अत्यन्त दूरदर्शितापूर्ण है। आचार्यश्री तुलसी ने जैन धर्म और जैन दर्शन के कल्याण का भगीरथ कार्य किया है। आचार्यश्री केवल तेरापथ के आचार्य के रूप मे ही नही जाने जाते हैं बल्कि जैन धर्म के आचार्य के रूप मे जाने जाते है। मैं आचार्यश्री को जीवन्त व्यक्तित्व वाला मानता हू। मैं क्या सारा मानव समाज ही उन्हे उस रूप मे मानता है।

आपने आगे कहा—मुनिश्री नथमल जी से मेरा सम्बन्ध सन् ६० से है। मैंने उन्हे विविध रूपो मे देखा है। राजस्थान तथा अन्य प्रांतो मे बैठ कर उनसे चर्चा, विचार मन्थन का अवसर उपलब्ध होता रहा है। मैंने उनके जीवन मे एक अनोखी बात पाई। सन् ६० से पहले मै जैन दर्शन के विश्रुत न्यायविद् पडित चैनसुखदास जी से जैन दर्शन एव जैन न्याय का अध्ययन किया करता था। पडित जी ने ही पहले-पहल मुझे मुनि नथमल जी के बारे मे बाताया। पडित जी भी मुनिश्री के व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित थे। मुनिश्री नथमल जी हमेशा विकास की सीढियो को पार करते रहे है। यो कहना चाहिए वे विकासवान व्यक्तित्व के धनी रहे है। उनका जीवन कभी ठहरा नही। जो ठहर जाता है, वह समाप्त हो जाता है।

डा० सोगानी ने आगे कहा—आचार्यश्री तुलसी का सघ गतिमान धर्म सघ है। उस सघ के एक सितारे मुनि नथमल जी है। मैंने उन्हे हरदम नए रूप मे देखा है जब-जब भी मेरा मिलन हुआ तब-तब मैने निखरे व्यक्तित्व के रूप मे पाया। कई बार तो मैं सोच भी नही पाता था क्या सचमुच पिछली बार जिन मुनि नथमल को देखा था क्या मैं उन्हे ही देख रहा हू या कोई दूसरे को।

आपने मुनिश्री नथमल जी के मुख्य तीन रूपो का वर्णन करते हुए बताया—पहले-पहल मैंन उन्हे दार्शनिक के रूप मे देखा। उनको दर्शन की गहरी गुत्थियो को सुलझाते हुए कितनी ही बार मैने निकट से परखा है। उनका अणुव्रत दर्शन मैने पढा मुझे प्रतीत हुआ यह अणुव्रत दर्शन है या विश्व दर्शन। वे किसी विश्वविद्यालय मे नही पढे हे, न कही वे प्रोफेसर रहे है, फिर कैसे वे इतनी गहराई मे पहुच जाते हैं। मैं समझ नही पाया सचमुच मे वे जन्मजात प्रतिभावान् है। आचार्यश्री तुलसी से मुनि नथमल को मै अलग नही देख सकता। यदि मै अलग देखने की धृष्टता करू तो मैं नही जानता उनमे क्या बचेगा। उनका दूसरा रूप है—आगमज्ञ का। आगम हर जैन मुनि को पढना होता है पर आगम मे आगमन करना अलग बात है। जो आगम मे आगमन करता है उसे महावीर के युग मे जाना होता है, यह मेरी दृढ मान्यता है। युवाचार्य महाप्रज्ञ द्वारा सपादित आचाराग का अनुवाद मैंने पढा। मैने अनेक बार अनेक सतो द्वारा सपादिन आचाराग पढे है पर मैं कभी गहराई से समझ नही सका। इस बार मैंने आप द्वारा सपादित आचाराग पढा, मेरा मन तरोताजा हो उठा। उन्होने आचाराग को सूत्रात्मक शैली मे प्रस्तुत किया हे। जब तक हमारी दृष्टि सूत्रात्मक रूप मे नही जा पाएगी, तब तक हम आचाराग को नही समझ सकते।

आचाराग मे एक सूत्र है—"**उम्र बीत रही है यौवन बीत रहा है**" यदि हमारी दृष्टि परिमार्जित एव दूरगामी नही है हम इस सूत्र के रहस्य को नही जान सकते। मैं तो यह मानता हू मुनि नथमल ही एक ऐसे हैं जो इस आगम का सपादन कर सकते हो, दूसरे के बल बूते का काम नही है। उनका तीसरा रूप है—ध्यान योगी।

डा० सोगानी ने गगाशहर चातुर्मास की चर्चा करते हुए कहा—हम अनेक विद्वान गगाशहर मे आचार्यश्री तुलसी के सान्निध्य मे समुपस्थित हुए। जैन विश्व-कोश की चर्चा हुई, बैठके हुई। उन बैठको मे मुनि नथमल हमे नजर नही आए। जब-जब भी हम आचार्य श्री के पास उपस्थित होते थे तब-तब हमे मुनि नथमल आगे मिलते पर इस बार इसके विपरीत हो रहा था। मेरे मन मे सदेह उत्पन्न हुआ। मैंने सोचा शायद इस बार मुनि नथमल जी कही अलग चातुर्मास कर रहे है। मैने अपने साथियो से चर्चा की। किसी ने आचार्यश्री तुलसी से पूछा—मुनिश्री नथमल जी कहाँ है ? आचार्यप्रवर ने कहा—आजकल वे ध्यान की अतल गहराइयो मे पहुच रहे है। मन मे जिज्ञासा हुई मुनिश्री से मिलना चाहिए। दलसुख भाई मालवाणिया, टाटिया जी तथा मैं तीनो समय निर्धारित कर मुनि नथमल जी के पास पहुचे। मैंने देखते ही मुनिश्री से निवेदन किया--मुझे तो कुछ गडबड नजर आती है। मुनिश्री चौके और बोले—कैसे ? मैंने कहा—अब आगमो को कौन पढेगा ? कौन दर्शन की नई देन देगा ? मुनिश्री ने तत्काल कहा—ध्यान योग का कार्य करता हुआ मैं उस कार्य को और बारीकी से कर सकू गा। मै सुनकर अवाक् था।

डा० सोगानी ने आगे कहा—युवाचार्य महाप्रज्ञ जी ने दर्शन से चल कर ध्यान तक की यात्रा सम्पन्न की है। महावीर ध्यान से चलकर दर्शन तक पहुचे थे। महाप्रज्ञ जी ने महावीर से उल्टा क्रम अपनाया। वे समाज दृष्टि मे भी पूर्ण सफल होगे क्योकि वे बुद्धि के स्तर से उठे और अनुभव तक पहुचे है। अनेको के मस्तिष्क मे एक विचार फिर पैदा होता है—ध्यानयोगी सघ का नेतृत्व कैसे कर सकेगा ? हम फिर महावीर के युग मे चले, महावीर भी तो आत्म-समाधि से सघ मे प्रविष्ट हुए थे। यदि महावीर का पुनरावर्तन मुनि नथमल करते हे तो क्या नई बात है। युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ जी ध्यान के माध्यम से सघ का नेतृत्व भली प्रकार से कर सकेंगे इसमे कोई सदेह नही है। मै हृदय की समस्त शुभकामनाओ के साथ उनका अभिनन्दन करता हू।

मुनिश्री सागरमल जी 'श्रमण'

मुनिश्री सागरमल जी ने इस अवसर पर अपने उद्बोधन सन्देश मे कहा—

किसी भी सुघड कृति को देखकर उसके कुशल कलाकार की सहज स्मृति हो आती है। सेवाभावी मुनिश्री चम्पालाल जी की याद हम सबको गद्गद् कर देती है। वे एक प्राणवान् पुरुष थे। उनका जीवन-व्यवहार जितना मृदु था, अनुशासन उतना ही कठोर था। स्वर्गीय भाई जी महाराज के सरक्षण मे रहने वाले मुनियो मे आचार्यश्री तुलसी के बाद युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ (मुनि नथमल जी) एव मुनिश्री बुद्धमल जी आदि है। तेरापथ धर्म-सघ के जाने-माने नक्षत्र जिन्हे आज गौरव से देखते है, वे सभी भाई जी महाराज की सरक्षण की जती मे से निकले हैं। उनके अनुशासन की खरसाण से उतरने वाला एक हीरा आज

कोहिनूर बन कर जौहरियो के हाथो मे है । श्री भाई जी महाराज की कला आज मुखरित हो उठी है । काश ! आज वे होते । आचार्यश्री तुलसी के बाद यह दूसरा व्यक्तित्व है, जो तेरापंथ धर्म-सघ का नेतृत्व सभाल रहा है ।

आपने आगे कहा—मुनिश्री नथमल जी का जीवन सर्वथा निर्विवाद रहा है आचार्य-श्री तुलसी ने युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ का निर्वाचन कर सही अर्थ मे सरस्वती का समादर किया है । आगम का समादर किया है । दर्शन को मूर्तरूप मे अवतरित किया है । हम हृदय की अनन्यतम भावनाओ से उनके प्रति कृतज्ञ है ।

आपने आगे कहा—मुझे मुनिश्री नथमल जी को बहुत निकटता से देखने का अवसर मिला है । अनेको आयामो मे वे मुडे है, और निखरे है । उनके अनेको रूप हमारे सामने आये है । हर स्थान पर हमने उन्हे चिन्तनशील पाया है । वे रहस्यवादी है । चैतन्य के निकट पहुचने वाली विभूतियो मे है । हम उनका अभिनन्दन किन शब्दो मे करे यहाँ आकर शब्द निशब्द हो जाते है । भाव-विभोर मानस उन्हे अ तर की आँखो से झाँकने लगता है । वे पारदर्शी है । उनके नेतृत्व को पा तेरापथ धर्म-सघ निहाल हो उठा है ।

मुनिश्री विनयकुमार जी 'आलोक'—

मुनिश्री नथमल जी को हम अनेक रूपो मे देख रहे है । उनका पहला रूप है दार्श-निक का, चिन्तक एव विचारक का । दूसरा रूप विशुद्ध साहित्य सेवी का और भी अनेक रूपो मे हम उन्हे बॉट सकते है पर मुझे उनका सबसे प्रभावित करने वाला जो रूप लगा वह है उनका आचार्यश्री के प्रति समर्पित भाव । आचार्यप्रवर ने भी मनोनयन के अवसर पर अपने प्रवचन मे कहा था—'मुनि नथमल हमेशा से समर्पित रहा है ।' सचमुच वे उतने ही समर्पित थे, जितना हर व्यक्ति अपने आपको कर नही सकता । फिर एक बौद्धिक और चिन्तक व्यक्ति का समर्पित होना अपने आप मे विशेषता रखता है ।

आगे आपने कहा— मुनिश्री नथमल जी की मिलन-सारिता अभूतपूर्व है । जब-जब भी मिलना हुआ है, उन्होने ऐसा आत्मीयता का भाव दर्शाया जिससे सहज ही व्यक्ति अभि-भूत हो जाता है ।

श्री देवीलाल जी सामर

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त भारतीय लोक कला मण्डल के सस्थापक एव निदेशक श्री देवीलाल सामर ने अपने अध्यक्षीय भाषण मे कहा—मुनिश्री नथमल जी से मेरा सबध बहुत गहरा रहा है । अतीत मे झाँकते हुए श्री सामर जी ने कहा—बीस वर्ष पूर्व मै आचार्यश्री तुलसी से प्रभावित नही था तथा मन मे कुछ सदेह भी थे । मेरे मन की बात आचार्यश्री के पास पहुची । उन्होने मुझे याद किया । मैं आपके चरणो मे उपस्थित हुआ, पर प्रभावित नही हो सका । कई बार आने-जाने का क्रम बना । विक्रम स० २०१९ मे आचार्यप्रवर का चातुर्मास उदयपुर मे हुआ । आचार्यप्रवर ने मुझे पुन याद किया । मैं उपस्थित होता रहा मैंने एक रोज आचार्यश्री से निवेदन किया—रोज-रोज नही आऊगा । आचार्यप्रवर ने कहा—रोज न सही रविवार-रविवार व्याख्यान सुनना । मै व्याख्यान सुनने के लिए एक-दो-तीन रविवार आया और मै प्रभावित होता गया । अब तो मैं नियमित आने लगा । आचार्यप्रवर ने मुझे मुनिश्री नथमल जी को सौंपा । एक दिन वार्तालाप के बीच आचार्यप्रवर ने मुनिश्री

नथमल जी को कला का अध्ययन करने को कहा। जैन दर्शन मे कला की क्या उपयोगिता है आचार्यश्री ने आदेश दिया—तुम लोक कला मण्डल मे नियमित अध्ययन करने जाया करो। मुनिश्री ने आचार्यप्रवर के आदेश को शिरोधार्य किया और वे आने लगे। मुनिश्री अपनी जिज्ञासाए प्रस्तुत करते। मैं उनका समाधान करने की कोशिश करता। मुनिश्री के उर्वर चिन्तन के सामने मैं नत था। मैंने एक दिन मुनिश्री से कहा—आप प्रश्न मुझे दे दें, कल समाधान करूगा। क्योकि मेरा अह बोल रहा था। जैसे-तैसे दस दिन तो मैंने पार किये और ग्यारहवें दिन मेरी पोल खुल गई। मैं आचार्य प्रवर के पास पहुचा और निवेदन किया—आपने मेरी यह परीक्षा क्यो ली ? आज से मैं उनका शिष्य हू, वे मेरे गुरु हैं।

आपने आगे कहा—वे महासत, क्रातिकारी विचारक, साधक और विवेकशील मनीषी है। अभी पिछले दिनो मै रूस के प्रधानमत्री माननीय श्री कोसीगिन के सम्मान मे कठपुतली नृत्य प्रस्तुत करने दिल्ली पहुचा। मुझे नही पता था आचार्यप्रवर दिल्ली मे है। मैंने समाचार पत्रो मे आचार्यप्रवर के स्वागत के समाचार पढे और मैं दौडा हुआ अणुव्रत विहार पहुचा। मैं कुछ समय तक आचार्यप्रवर की सेवा मे बैठा रहा। आचार्यप्रवर ने कहा—महाप्रज्ञ जी के दर्शन करो। मै गद्‌गद् था। एक आचार्य अपने शिष्य के प्रति इतना उदार हो सकता है ? महाप्रज्ञ जी से विचार विमर्श चल रहा था। उन्होने कहा—अब तक मैंने जितना अणुव्रत के बारे मे लिखा है अपर्याप्त है। अब मुझे नये सिरे से लिखना होगा। आपने आगे कहा—आप अनेक प्रकार की कठपुतलियो का निर्माण कर रहे है पर ध्यान योग की दृष्टि से भी कठपुतलियो का निर्माण होना चाहिए। जब तक हम ध्यान अतल गहराईयो मे नही पहुचेंगे तब तक हम यथार्थ से अनभिज्ञ रहेगे। मुनिश्री की दूरगामी दृष्टि को देखकर मैं अवाक् था। मै युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ जी का शब्दो से नही यथार्थ के धरातल पर अभिनन्दन करता हू।

श्री तेजसिंह जी मेहता

सुप्रसिद्ध एडवोकेट तथा जाने माने चिन्तक श्री तेजसिंह मेहता ने कहा—मेरा मुनि श्री नथमल जी से प्रत्यक्ष सम्पर्क तो नही रहा, पर मै उनकी कृतियो का पाठक रहा हू। मैंने मुनि श्री के साहित्य मे पाया है उनके हर शब्द का अपना अलग अस्तित्व होता है। उनकी कुछ कृतियाँ तो श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर से भी बढी-चढी कहू तो भी अतिशयोक्ति नही होगी। आपने आगे कहा—जो व्यक्ति ध्यानी हो जाता है उसके सारे कार्य होश पूर्वक होते है। मुनि नथमल जी ध्यान-योगी है। उनकी प्रत्येक प्रवृत्ति योग-सचालित होगी। सचमुच मे ध्यानी ही व्यावहारिक जगत मे जी सकता है। ध्यानी जब आत्मस्थ होता है तभी सही दिशा मे वह आगे बढता है।

आपने आगे कहा—भारत की धार्मिक जनता के लिए युवाचार्य श्री का चयन लाभकर होगा मुनिश्री के कृतित्व से न केवल तेरापथ समाज ही लाभान्वित होगा बल्कि सारा धार्मिक जगत उनके कर्तृत्व से प्रभावित होगा। प्रेक्षा ध्यान के बारे मे मैंने इन दिनो अनेको विद्वानो से सुना है मेरी भी जिज्ञासा बढी है मैं इसका गहराई से अनुशीलन करना चाहता हू। ध्यान मे शास्त्रो की बात जीवन्त हो जाती है। मैं युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ के उज्ज्वल भविष्य की मगल कामना करता हू।

श्री जसवन्त सिंह जी मेहता

जैन समाज के जाने माने नेता एडवोकेट श्री जसवन्तसिंह जी मेहता ने इतिहास की अविच्छिन्न कडियो को जोडते हुए कहा—भगवान महावीर के पश्चात् आचार्य परम्परा मे पहले पट्टधर आर्य सुधर्मा स्वामी थे तथा दूसरे जम्बू स्वामी। जम्बू स्वामी के उत्तराधिकारी प्रभव स्वामी थे। प्रभव स्वामी सबल नेतृत्व के धनी थे, जब उन्होने अपने पीछे नजर दौडाई तो हजारो साधु साध्वियो के परिवार मे तथा लाखो अनुयायियो मे अपने उत्तराधिकारी के योग्य कोई नजर नही आया। उन्होने इतर समाजो मे दृष्टि दौडाई। ज्ञान बल से जाना और पाया—मेरे उत्तराधिकारी के रूप मे स्वयभव भट्ट उपयुक्त होगे। उन्होने अपने दो शिष्यो को समझाने के लिए भेजा। शिष्यो ने स्वयभव को देखते ही दूर से कहा—"अहो कष्टमहो कष्ट, तत्व न ज्ञायते परम्" स्वयभव भट्ट ने जब यह वाक्य सुना वे चिंतन करने लगे। गहराई से समझने का प्रयत्न किया पर उसका सूत्र हाथ न लग सका। आखिर वे आचार्य प्रभव के पास पहुचे। आचार्य प्रभव ने उन्हे प्रतिबोध दिया, शिष्य बनाया, आगमज्ञ किया और उत्तराधिकारी नियुक्त किया। यह ऐसी घटना है, यदि हम इस घटना के परिप्रेक्ष्य मे देखे तो आचार्यश्री कितने सौभाग्यशाली है। शायद उन्हे कही नजर दौडाने की भी अपेक्षा नही हुई होगी। उन्होने एक कोहिनूर निकाल कर समाज के सामने प्रस्तुत कर दिया। तेरापथ समाज का सगठन अद्भुत है, अलबेला है। इस प्रकार का सगठन हमे कही भी देखने को नजर नही आता, चाहे वे धार्मिक सगठन है या सामाजिक अथवा राजनैतिक। खरतर-गच्छ का एक आचार्य हो, यह चिन्तन वर्षों से चल रहा है, पर यथार्थता तक नही पहुच पा रहे है। मुनिश्री नथमल जी के निर्वाचन से तेरापथ समाज को ही नही समग्र जैन समाज को गौरव है।

श्री रोशनलाल चौधरी

विद्या निकेतन माध्यमिक विद्यालय के प्रधानाध्यापक श्री रोशनलाल चौधरी ने कहा—आज के ये दोनो सुयोग अद्भुत है। मुनिश्री सागरमल जी का शुभागमन तथा युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ जी का अभिनन्दन। सब लोगो को इस बात का आश्चर्य होता है कि आचार्यश्री तुलसी ने किसी को बिना पूछे, बिना जताए अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति कर डाली, पर वे भूल जाते है यह तेरापथ धर्मसघ है। इस धर्मसघ मे आचार्य का निर्णय सर्वोपरि होता है। कुछ व्यक्तियो ने मुझे पूछा—क्या आचार्यश्री तुलसी का निर्णय जनतत्र के युग मे उपयुक्त माना जा सकता है? वे भूल जाते है जनतत्र का क्या मतलब होता है। जनतत्र का तात्पर्य है सब व्यक्तियो का जिससे हित होता है, वही तो जनतत्र है।

आपने आगे कहा—मुझे लगता है तेरापथ की यह प्रणाली राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ ने भी स्वीकार की है। वहाँ पर भी मनोनीत करने का अधिकार है। माननीय गोलवलकर साहब (गुरुजी) के निर्णय को सबने एक स्वर से स्वीकार किया। आपने आगे कहा—जब जब भी मैं आचार्यप्रवर की सेवा मे समुपस्थित हुआ हू, मुझे मुनिश्री नथमल जी के पास घटो बैठने का अवसर मिलता रहा है। उन्होने जिस प्रकार से अपनत्व दिया, उसे मैं शब्दो मे व्यक्त नही कर सकता। घर-परिवार से लेकर राजनीति और अध्यात्म तक की चर्चाएँ

होती रही हैं। मुनिश्री नथमल जी का महत्त्व प्रारभ से ही था। सचमुच हम सबकी इच्छा को आचार्यप्रवर ने पूर्ण किया है। मैं आचार्यप्रवर को साधुवाद देता हू तथा युवाचार्य जी का अभिनन्दन करता हू।

प्रो॰ महावीरसिंह मुडिया

उदयपुर विश्वविद्यालय के प्रोफेसर महावीर सिंह मुडिया ने कहा—आज का यह समारोह आनन्ददायक है। हम किन शब्दो मे मुनिश्री की प्रशस्ति करे, हमारे पास शब्दनही है। आचार्यश्री तुलसी का यह निर्णय सर्वश्रेष्ठ निर्णय है। इससे आचार्यप्रवर की दूरदर्शिता उजागर हुई है। आचार्यश्री ने महाप्रज्ञ जी को अपना उत्तराधिकार सौंप कर सघ का ही गौरव नही बढाया है, स्वय आचार्यप्रवर भी गौरवान्वित हुए है।

आपने आगे कहा—मुनिश्री नथमल जी हर दृष्टि से सक्षम है। हर व्यक्ति मे हर विशेषता नही पाई जाती, पर मुनिश्री मे एक से एक बढकर विशेषताए मौजूद हैं। मुझे अनेक बार जैन विश्व भारती द्वारा समायोजित जैन विद्या परिषद् मे भाग लेने के अवसर उपलब्ध हुए है। उस समय मैंने देखा है मुनिश्री की विद्वता को। वे किस प्रकार से हर विषय की व्याख्या प्रस्तुत करते थे। जब-जब भी समस्या का समाधान नही होता, तब सब विद्वानो का ध्यान मुनिश्री नथमल जी की ओर चला जाता। मुनिश्री हर प्रश्न को समाहित कर विद्वानो को प्रभावित करते। सन् ७५ मे राजस्थान-विश्वविद्यालय मे मुनिश्री के जैन न्याय पर आठ प्रवचन हुए। मुनिश्री के उन प्रवचनो से बौद्धिक जनता बहुत प्रभावित हुई और सभी ने मुक्त कण्ठ से मुनिश्री के वक्तव्य एव विद्वता की भूरी-भूरी प्रशसा की। आपके निर्वाचन से धर्मसघ की ही प्रतिष्ठा नही बढी है, बल्कि यो कहना चाहिए विद्वानो की प्रतिष्ठा बढी है। मुनिश्री अहकार से दूर रह कर साधना की ज्योति को प्रज्वलित करते रहे है। मैं इस अवसर पर मुनिश्री का हार्दिक अभिनन्दन करता हू।

प्रो० भेरूलाल धाकड़

तुलसी निकेतन के प्राण एव अनेक सस्थाओ के पदाधिकारी प्रोफेसर भेरूलाल धाकड ने कहा—प्रशस्ति और पूजा मे मेरा विश्वास नही है। यह दिन न प्रशस्ति का है न पूजा का। आज का दिन यथार्थ का दिन है और हम यथार्थ का अभिनन्दन कर रहे है। मै इस अवसर को धर्मसघ और मानव समाज के कल्याण का दिन मानता हू। आचार्यप्रवर ने दायित्वपूर्ण एव बोझिल गठरी को सक्षम कधो पर डाला है यह अभिनन्दनीय है। सत्ता का मिलना कठिन नही है, पर सरस्वती का मिलना कठिन है। मुनिश्री सचमुच सरस्वती के वरद् पुत्र हैं। मुनिश्री ने अपने आपको सघ के हित मे खपाया है, वे अहकार रहित व्यक्तित्व के धनी है।

श्री मानसिंह वैद

अणुव्रत समिति, बम्बई के अध्यक्ष तथा तेरापथ समाज के वरिष्ठ कार्यकर्त्ता श्री मानसिंह वैद ने अभिनन्दन करते हुए कहा—मुनिश्री नथमल जी अनेक विशेषताओ के धनी हैं पर मेरी दृष्टि मे सबसे बडी विशेषता है मुनिश्री की सरलता, ऋजुता तथा आचार

सपन्नता। इन्ही विशेषताओ से प्रभावित हो आचार्यश्री ने आपका मनोनयन किया है। अभी पिछले महिने आचार्यप्रवर अपने उत्तराधिकारी युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ जी को साथ लेकर चुरू पधारे। मैं उस अजीब छटा को देखकर हैरान था। राम और लक्ष्मण की वह साक्षात् जोडी मुझे देखने को मिली। हम सब सौभाग्य शाली हैं कि हमे महाप्रज्ञ जी जैसे आचार्य का सानिध्य उपलब्ध हुआ है।

श्री बसंतीलाल तलेसरा

उदयपुर तेरापथ समाज के वरिष्ठ एव चिन्तनशील कार्यकर्त्ता श्री बसतीलाल तलेसरा ने इतिहास की कडियो को जोडते हुए उदयपुरी भाषा मे बोलते हुए कहा—हमे यह सब कुछ नजारे तो तेरापथ धर्म सघ मे ही देखने को मिलते है। मुनिश्री नथमल जी बहुश्रुत होने के साथ-साथ ध्यान की सूक्ष्म गहराईयो मे पहुचे हुए है। आचार्यश्री ने महाप्रज्ञ जी को अपना उत्तराधिकार देकर धर्मसघ को निश्चिन्त बना दिया है। आपने आगे कहा—इस निर्णय की धर्मसघ का एक बच्चा भी आलोचना करने की हिम्मत नही कर सकता।

श्रीमती लाड कठालिया

तेरापथ महिला मण्डल, उदयपुर की अध्यक्षा श्रीमती लाड जी कठालिया ने अपने श्रद्धा सुमन गीत के माध्यम से प्रस्तुत किए उसकी कुछ कडियाँ इस प्रकार है—

> विकसित हम श्रद्धा सुमन लिए
> तुमसे पा स्नेहदान कितने जल उठे दिए।
> पा नेतृत्व तुम्हारा सघ सजीव बन गया जग मे
> प्रगति शिखर की ओर बढा दिन रात रुका कब मग मे
> नव चेतनता रग-रग मे, बन कर दिव्य शक्तिधर आज जिये ॥१॥

डा० कुन्दनमाल कोठारी

उदयपुर विश्वविद्यालय के पैथोलॉजी विभाग के अध्यक्ष एव उदयपुर तेरापथी सभा के अध्यक्ष डॉ० कुन्दनलाल कोठारी ने अपने सयोजकीय वक्तव्य मे कहा—सचमुच हम सौभाग्यशाली है कि हमे महाप्रज्ञ जैसे युवाचार्य के रूप मे उपलब्ध हुए हैं। मुनिश्री नथमल जी अगाध पाडित्य के धनी है, सहज योगी है।

उपसहार

उदयपुर के इतिहास मे यह अभूतपूर्व कार्यक्रम था। सभी के चेहरो पर पुलकन थी नया जोश और नया उल्लास छाया हुआ था। हर चेहरे पर नई आभा खिल रही थी क्योकि आज युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ के अभिनन्दन का कार्यक्रम था। तेरापथी सभा भवन का विशाल प्रागण खचाखच भरा हुआ था। कार्यक्रम की सर्वत्र सुन्दर प्रतिक्रियाए रही। अनेक दैनिक पत्रो के सवाददाता उपस्थित थे।

मुनिश्री अभयकुमार जी के मंगलाचरण से कार्यक्रम प्रारंभ हुआ तथा श्री विजयसिंह तलेसरा ने धन्यवाद ज्ञापित किया। कार्यक्रम को सफल बनाने में जवेर जी डागल्या का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

—शा० बी० टी० एण्ड सन्स
घण्टाघर, उदयपुर

विवेकानन्द जयन्ती समारोह, दिल्ली

दि० १४ जनवरी, १९७९ को शिक्षण साधना ऑडिटोरियम मे विवेकानन्द परिषद् के तत्वावधान मे आयोजित समारोह मे **मुनिश्री रूपचन्द जी** ने कहा कि महापुरुष किसी दायरे मे आबद्ध नही होते। उनका जीवन और उपदेश सर्वजनहिताय होता है। भगवान् महावीर से पूछा गया—मुक्त कौन हो सकता है ? महावीर ने कहा—जो व्यक्ति सत्संकल्प के साथ विवेकपूर्वक साधना के पथ पर चल पडता है, वह मुक्त हो जाता है। विवेकानन्द नाम मे जो दो शब्द "विवेक" और "आनन्द" है वे हमे प्रेरित करते हैं कि आनन्द की प्राप्ति तभी सम्भव है जब विवेक का जागरण हो।

इसी सभा मे **भारत के प्रधानमन्त्री श्री मोरारजी देसाई** ने बोलते हुए बतलाया कि विवेकानन्द ने आध्यात्मिक क्राति अपने गुरु रामकृष्ण परमहस के अनुग्रह से की थी। गुरु के प्रति उनमें अगाध श्रद्धा और समर्पण का भाव था। गुरु शिष्य का सम्बन्ध ऐसा ही होना चाहिए।

—ओमप्रकाश कौशिक
दिल्ली प्रदेश अणुव्रत समिति

जैन अध्ययन मण्डल, नई दिल्ली

दि० २८ जनवरी, १९७९ को अणुव्रत विहार मे "जैन दर्शन में कर्म तथा पुनर्जन्म की समस्याएँ" विषय पर आयोजित सगोष्ठी में केलीफोर्निया विश्वविद्यालय मे बौद्ध दर्शन के प्राध्यापक श्री **पद्मनाभ एस० जैनी ने** विभिन्न दर्शनो का तुलनात्मक विश्लेषण करते हुए कहा—जैन दर्शन में निगोद जीवो का जो वर्णन है, उससे लगता है कि विकासवाद का बहुत सुन्दर विश्लेषण जैन दर्शन मे है। निगोद जीव की चेतना प्राक् ससार मे क्रमश विकसित होती हुई तिर्यञ्च, मनुष्य आदि योनियाँ पार करती हुई सिद्ध शिला तक जा सकती हैं।

मुनिश्री रूपचन्द जी ने अपने विद्वत्तापूर्ण भाषण में कहा—आत्मा, कर्म, निर्वाण आदि प्रश्न शाश्वत हैं। प्रत्येक दर्शन मे इन विषयो पर विस्तृत वर्णन मिलता है, परन्तु इसके बावजूद कुछ प्रश्न अनुत्तरित है। विद्वद्गण निष्पक्ष दृष्टि से इस पर अनुसन्धान करें।

सगोष्ठी में दिल्ली विश्वविद्यालय एव अन्य शोध सस्थानो के करीब २५ विद्वानो ने भाग लिया।

—स्वरूपचन्द्र जैन,
कार्यक्रम निदेशक, जैन विश्व भारती

दमोह में दर्शन, ज्ञान एवं आचरण की त्रिवेणी।

जैन प्रगतिशील परिषद् तथा श्री भागचन्द्र इटोरया सार्वजनिक न्यास द्वारा आयोजित "डा० शीतलप्रसाद जी जन्म शताब्दी तथा प० परमेठीदास न्यायतीर्थ एवं श्री भागचन्द्र इटोरया स्मृति दिवस" समारोह मे भाषण करते हुए इन्दौर विश्वविद्यालय के डा० नेमीचन्द्र जैन ने कहा कि उक्त तीनों महानुभाव श्रेष्ठ संगीतज्ञ थे। वे जानते थे कि जीवन के तार कहाँ शिथिल हो रहे हैं। वे स्वस्थ समाज रचना मे क्रमश हृदय, शिर और हाथ थे अर्थात् दर्शन, ज्ञान एव आचरण की त्रिवेणी थे। उन्होने प्रेरणा दी कि दीपक की लौ पर आने वाली कालिमा को दूर करें।

सहकारी बैंक के प्रबन्धक सचालक एव जैन पचायत, अध्यक्ष श्री ताराचन्द्र सिंघई की अध्यक्षता मे आयोजित इस समारोह मे प० सुभाषचन्द्र पकज (मथुरा), डॉ० कस्तूरचद्र सुमन (बासा), प० मोतीलाल विजय (कटनी), प० फूलचन्द्र पुष्पेन्दु (खुरई), सेठ सुमेरचद्र जी (जबलपुर) और डॉ० भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' ने प्रेरक उद्‌गार व्यक्त किए। मुख्य अतिथि द्वारा "श्री भागचन्द्र इटोरिया एक प्रेरक व्यक्तित्व" नामक एक पुस्तक का विमोचन किया गया। रात्रि मे संगीताचार्य प० सुभाषचन्द्र पकज तथा आकाशवाणी कलाकार प० श्यामसुन्दर शुक्ल द्वारा साधनामयी स्वर सरिता प्रवाहित की गई।

—लक्ष्मीचन्द्र सेठ, मन्त्री
प्रगतिशील परिषद्, दमोह

बम्बई में आचार्यश्री कालूगणी का चरमतिथि समारोह

दि० ४-१-७९ को **साध्वी श्री सरोजकुमारी जी** (ठाणा ५) त्रिमूर्ति (बोरीवली) पधारी। उनके सान्निध्य मे बम्बई महानगर तेरापथ युवक परिषद् का अधिवेशन **श्री निराला जी** की अध्यक्षता मे हुआ, जिसमे विषय रखा गया—"आचार्यश्री का सकेत और हमारी परिषद्।" साध्वी श्री सोमप्रभा जी, साध्वी श्री सयम श्री जी आदि चारित्रात्माओ ने विषय पर सागोपाग प्रकाश डाला। श्री मानसिक जी वैद्य, श्री चाँदमल जी बोहरा, श्री गौटुलाल जी, श्री राजमल जी जैन आदि वक्ताओ ने भी अपने विचार व्यक्त किए। रात्रि मे "आचार्यश्री तुलसी की दैनिकचर्या" नामक फिल्म प्रदर्शन का कार्यक्रम श्री अर्जुनलाल जी वाफना के सयोजकत्व में रक्खा गया।

थाना मे प्रेक्षा ध्यान शिविर

दि० १०-१-७९ को **साध्वी श्री सरोजकुमारी** के सान्निध्य मे स्थानीय परिषद् के मन्त्री श्री कपूर जी आदि उत्साही कार्यकर्ताओ के प्रयास से एकदिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर लगाया गया। श्री **अरुणभाई जवेरी** ने श्वासपद्धति, ध्यान, चेतना केन्द्र आदि की जानकारी दी। रात्रि में स्वय **जेठाभाई जवेरी** ने, जो इस विषय के विशेषज्ञ है, ध्यान की भूमिका, प्रेक्षाध्यान पद्धति की वैज्ञानिकता व जीवनोपयोगी पक्ष को विस्तार से समझाया। **महाप्रज्ञ जी** के टेप-प्रवचनो से कार्यक्रम समाप्त हुआ।

—लक्ष्मीलाल कोठारी

मर्यादा के अभाव में देश व समाज का उत्थान असम्भव

गुलाब बाग (पूर्णिया) "मर्यादित जीवन जीना ही मर्यादामहोत्सव मनाने की सफलता है। मर्यादा जीवन है। प्राण है। सजीवनी है। अमूल्य ऐश्वर्य है। सम्पदा है। मर्यादा के अभाव मे कोई भी देश, कोई भी समाज उत्थान नहीं कर सकता है। मर्यादा मानव के विकास को बाधती नही है, उसे वास्तविक गति देती है। मर्यादाओ के कारण ही तेरापंथ सघ मे ऐक्य, अनुशासन एव सगठन पल्लवित हो रहा है।" ये शब्द **मुनिश्री कन्हैयालाल जी** ने जैन श्वेताम्बर तेरापथी सभा द्वारा आयोजित ११५ वें मर्यादा महोत्सव के शुभावसर पर सैकडो भाई-बहिनो के बीच अभिव्यक्ति किये।

इस अवसर पर **मुनिश्री महेशकुमार जी** एव **मेतार्य मुनि** के अतिरिक्त अन्य भाई-बहिनो ने भी अपने विचार व्यक्त किये। लगभग ३६ नगरो से पधारे भाई-बहिनो ने उपस्थित होकर इस आयोजन को सफल बनाया। सभी का सचालन श्री कमलकुमार पुगलिया ने किया। सभा के मत्री श्री रायचन्द जैन ने आचार्यप्रवर का सन्देश पढकर सुनाया।

मर्यादा महोत्सव का अवशिष्ट कार्यक्रम मुनिश्री के सान्निध्य मे रात्रि मे द्वितीय चरण के रूप मे सम्पन्न हुआ।

—सुमेरमल चौपडा

सरदार शहर में 'युवाचार्य अभिनन्दन हर्षोत्सव" समारोह

दि० १८ फरवरी, १६७६ को आयोजित उपर्युक्त समारोह मे **मुनि श्री विनयकुमार जी, आलोक**, ने कहा कि आचार्य श्री ने योग्य व्यक्ति का मनोनयन करके धर्म सघ को सुदृढ बनाया है। साध्वी श्री भीखाजी एव साध्वी श्री लाघवश्री जी ने गीतिका के द्वारा युवाचार्य जी के दीर्घायुष्य की कामना की। तेरापन्थ सभा के अध्यक्ष श्री भँवरलाल बैद, अणुव्रत समिति के मत्री श्री चन्दनमल पीचा, श्री सोहनलाल वैद, डॉ० किरणकुमार नाहटा, श्री रामस्वरूप शर्मा, श्री नगराज नाहटा, प्रो० जोरावरमल घीया, श्री भीकमचन्द बैद, श्री मोतीलाल बरडिया आदि विद्वानो ने भी प्रसगानुकूल विचार व्यक्त किए, जिनका सार यही था कि आचार्य श्री की सूझ-बूझ तथा समयज्ञता सराहनीय है। युवाचार्य जी के चयन से सघ गौरवान्वित होगा, यह निर्विवाद है।

समारोह के अन्त मे **मुनि श्री सागरमल जी 'श्रमण'** ने इतिहास की कडियो को जोडते हुए कहा कि युवाचार्य श्री का व्यक्तित्व निर्विवाद है। इनके मनोनयन से चारो ओर प्रसन्नता का समुद्र लहरा रहा है। ये सदैव आचार्य प्रवर के प्रति समर्पित रहे है। इसीलिए इन्होने जीवन मे इतनी महानता अर्जित की है।

सभा का संजोयन श्री सोहनलाल डागा, उपमन्त्री, द्वारा किया गया।

—पूनमचन्द सेठिया

राजविराज में चारित्रात्माओं का विहार —

दि० २४-२-७६ को **साध्वी श्री सोहना जी** तथा **[illegible] जी** का मिलन समारोह **सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश श्री भगवती प्रसाद सिंह जी** की अध्यक्षता मे हुआ।

सगरमाथा अचलाधीश महेशकुमार जी उपाध्याय मुख्य अतिथि थे। साध्वी श्री सोहना जी का होली चातुर्मासिक पक्खी सिलीगुडी में होगी। साध्वी श्री राजीमती जी का विहार मार्च मे धरान की तरफ होगा, जहा मुनि श्री कन्हैयालाल जी विराजते हैं। होली के पश्चात् मुनि श्री विराटनगर से विहार करेंगे।

—चैन रूप दूगड

दिल्ली में युवाचार्य अभिनन्दन समारोह —

दि० ११ फरवरी, १९७९ को आयोजित समारोह मे मुनि श्री रूपचन्द्र जी ने कहा कि युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ का व्यक्तित्व एव कर्तृत्व सम्प्रदायातीत एव परिवेशातीत है। उनकी रचना-धर्मिता, मेधा एव चिन्तन-ज्योति राष्ट्रव्यापी है।

समारोह मे लाला हसराज गुप्ता, श्री जैनेन्द्रकुमार, श्री दत्तात्रेय तिवारी, श्री रत्नसिंह शाण्डिल्य, श्री सरदारमल बेंगानी, श्री फरजनकुमार जैन, श्रीमती पुष्पा पारिख आदि वक्ताओ ने भी प्रसगानुकूल विचार व्यक्त किए। श्री नरेश जैन ने आयोजन का सयोजन किया।

—ओमप्रकाश कौशिक

पारमार्थिक शिक्षण सस्था, लाडनू का वार्षिकोत्सव —

दि० २८-२-७९ को रात्रि मे साध्वी श्री कमल श्री जी साध्वी श्री कनक श्री जी, साध्वी श्री यशोधरा जी आदि १३ साध्वियो तथा ब्राह्मी विद्यापीठ के सभी अध्यापको के सान्निध्य मे वार्षिकोत्सव का आयोजन किया गया। कु० सविता, कु० मजु, कु० महिमा, एव कु० मुदिता ने इतिहास के परिप्रेक्ष्य मे सस्था का परिचय प्रस्तुत किया। श्री कल्याणमल जी, प० रामकुमार शास्त्री, श्री लूणकरण विद्यार्थी, तथा चारित्रात्माओ ने बडे सारगर्भित विचार व्यक्त किए। व्यवहार, चिन्तन, दायित्वनिर्वहन, शैक्षणिक स्तर आदि के परिप्रेक्ष्य मे १३ बहिनो को नवीन उपाधियो से पुरस्कृत किया गया। अध्यक्ष श्री राणमल जी जीरावला ने बहिनो को उचित मार्गदर्शन दिया।

—कु० शान्ता जैन, सयोजिका

श्री जैन श्वे० तेरापन्थ सभा, वाराणसी के आयोजन :—

३ फरवरी, १९७९,। मर्यादा महोत्सव मुनि श्री पूनमचन्द्र जी के सान्निध्य मे श्री प्रेमराज सिंघी की अध्यक्षता मे मनाया गया। मुनि श्री रवीन्द्रकुमार जी तथा मुनि श्री देवेन्द्र कुमार जी ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के सदर्भ मे सुन्दर विचार व्यक्त किए। बौद्ध विभागाध्यक्ष श्री जगन्नाथ उपाध्याय, अन्तर्राष्ट्रीय मानव कल्याण सस्थान के अध्यक्ष डॉ० एस०-एन० राय, विश्व धर्म शान्ति सम्मेलन के उपाध्यक्ष फादर राक, जिला सम्पर्क अधिकारी श्री अरुण गुप्त, श्रीमती वीणा डोसी ने कई रचनात्मक सुझाव दिए। मगलाचरण श्रीमती गुलाब देवी ने तथा सयोजन श्री शरद कुमार साधक ने किया।

७ फरवरी, १९७९। स्थानीय समाज की परिचयात्मक गोष्ठी मुनि श्री पूनमचन्द जी के सान्निध्य मे हुई। समाज का एक भवन, विद्यालय का सचालन तथा सघीय सस्कारों का निर्वाह आदि पर विचार विमर्श किया गया।

८ फरवरी, १९७९। युवाचार्य अभिनन्दन समारोह मुनि श्री पूनमचन्द जी के सान्निध्य मे मनाया गया। सभा की अध्यक्षता श्री मधुपकुमार जैन तथा सयोजन श्री पुष्प-राज डुगरवाल ने किया। मुनि श्री देवेन्द्रकुमार तथा मुनि श्री रवीन्द्र जी ने सुन्दर विचार प्रस्तुत किए।

१० फरवरी, १९७९। महिला मण्डल द्वारा युवाचार्य अभिनन्दन समारोह मनाया गया, जिसमें श्रीमती गुलाब देवी, श्रीमती सम्पत देवी सुराणा, श्रीमती सम्पत देवी बोथरा, श्रीमती सम्पत देवी नाहटा, मोहनी देवी सुराणा, गोरी देवी नाहटा, झमकू देवी सीघी, प्रकाश देवी सेठिया, अनूप देवी शेखानी, इचूदेवी बैद, श्रीमती श्री देवी आदि ने भाषण, कविता पाठ, गीतिका, सहगान आदि के द्वारा बडा अच्छा कार्यक्रम प्रस्तुत किया।

—पवन कुमार जैन

सादुलपुर (राजगढ़) में ३२ वर्षों पश्चात् भागवती दीक्षा समारोह.—

चूरू से लखाऊ, दूधवाखारा, हडियाल, डोकवा आदि को स्पर्श करते हुए **आचार्य श्री तुलसी** दि० २३-२-७९ को राजगढ मे पधारे। सार्वजनिक निर्माण मन्त्री श्री जयनारायण पूनिया, एस० डी० एम० श्री आशुतोष गुप्त आदि महानुभावो ने आचार्य श्री का स्वागत किया तथा महती सभा मे अभिनन्दन पत्र भेट किया। **युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ** भी अपनी जन्म स्थली टमकोर से राजगढ पधार गए थे। दि० २४-२-७९ को आचार्य श्री ने राजगढ के निर्मल गधैया पुत्र श्री रायचन्द गधैया, तथा गगाशहर के सम्पत लूणावत पुत्र श्री मगलचन्द लूणावत को भागवती दीक्षा प्रदान की। नव दीक्षित मुनियो के नाम **'मुनि श्री निर्मलकुमार जी''** तथा **'मुनि श्री सभवकुमार जी''** रखे गए। युवाचार्य जी ने तनाव मुक्ति हेतु त्रिगुप्ति (कायोत्सर्ग, मौन व ध्यान) का महत्त्व समझाया। **साध्वी श्री प्रतिभा** श्री ने भी अपने उद्-गार व्यक्त किए। **आचार्य** श्री ने महती कृपा करके श्री **सुबोध कुमार गधैया**, राजगढ (सुपुत्र श्री जीवनमल जी) को प्रतिक्रमण का आदेश फरमाया। **तपस्वी मुनि श्री सम्पतलाल जी** ने ३२ वर्षों के बाद राजगढ मे आचार्य श्री के पधारने के उपलक्ष मे ३२ दिनो के उप-वास चालू कर रखे है।

—शुभकरण दसाणी, पवन सुराणा

ब्राह्मी विद्यापीठ (महिला कॉलेज) लाडनू मे प्रेरक उद्बोधन —

स्वामी सत्यपति जी, आचार्य गुरुकुल, सिंहपुरा (रोहतक) [हरियाणा] ने दि० ६ मार्च, १९७९ को महिला कॉलेज की छात्राओ एव अध्यापको के बीच भाषण करते हुए सस्था की प्रगति की बडी सराहना की। बहिनो मे योग-साधना के शिक्षण-प्रशिक्षण से वे विशेष प्रभावित हुए। अजमेर के आर्य **सगीताचार्य श्री पन्नालाल "पीयूष" सिद्धान्त शास्त्री** ने अपनी शिक्षाप्रद गीतिका से छात्राओ का ज्ञान संवर्द्धन किया।

— ०.—

अणुव्रत अनुशास्ता दिल्ली की ओर

(दिनांक ६ फरवरी '७६ से ६ मार्च '७६)

—गौतम

जय हो ! जय हो ! मैत्री हो ! समता धर्म-समताधर्म । अपार जनसमूह के घोष दूरी पर सुनाई पड रहे थे तथा सभी लोग घोषो से आकृष्ट हुवे तथा कई कदम उस ओर दौड पड़े । जयघोष नजदीक आये तो पूर्ण घोष इस प्रकार थे ··

राष्ट्र के महान सत आचार्यश्री तुलसी की जय हो !

जन जन मे·· मैत्री हो।

महावीर ने क्या सिखलाया—समताधर्म-समताधर्म !

युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ की· जय हो !

कैसे बदले जीवन धारा—प्रेक्षाध्यान साधना द्वारा ।

अणुव्रतो का यह सदेश—व्यसनमुक्त हो सारा देश ।

अनुशासित जुलूस चला आ रहा है । महिलाये, बालक-बालिकाये युवक स्वय अपनी-अपनी पक्ति मे चल रहे हैं तथा जय घोष कर रहे है । श्वेत साडी हरी किनार की, नगे पाँव वाली युवतियाँ लय बद्धता से गाती हुई बढ रही है तो पूर्ण श्वेत वस्त्रो से सुशोभित अपने विशेष वेष मे एक दल और आगे बढ रहा है । सभी की गर्दन झुक गई है । कोई बैठकर तो कोई खड़े-खड़े ही नमन कर रहा है । सबसे आगे वाली साध्वी का हाथ ऊपर उठा है । करुणामय दृष्टि, हल्की मुस्कान, तेजोमय प्रभावशाली व्यक्तित्व की धनी यह महिला धीरे-धीरे आगे बढती हुई सभी को आशीर्वाद दे रही है और इनके पीछे एक लम्बी सी कतार ऐसी ही साध्वियो की चली गई है, पता लगा आशीर्वाद देने वाली साध्वी प्रमुखा महाश्रमणी कनक प्रभा है, जिनकी प्रभा आज नारी उत्थान के कार्यक्रम मे चारो ओर फैल रही है ।

पंच रगो का ध्वज लहराता हुआ गुजर रहा है । ध्वज के ठीक पीछे बाल मुनि वृन्द पक्ति से गुजर रहे हैं, छोटे-बड़े और बड़े क्रमश । ठीक इनसे १०-१५ कदम की दूरी पर हैं साक्षात् ज्योति पुज, ऊँचा ललाट, दैदिप्यमान चेहरा, मध्यम काठी का मध्यम कद का एक देवतुल्य व्यक्ति । शाँत चित्त, प्रफुल्लित मन और उल्लास लिये एक हाथ से आशीर्वाद तथा चित्ताकर्षण करने वाली दृष्टि से सभी को प्रसन्नता मे हर्षोल्लासित

करता अनोखे व्यक्तित्व का धनी धीरे-धीरे कदम बढाता हुआ आगे बढ़ रहा है। जिसके चारों ओर से मानवता के पोषक, महामानव, अणुव्रत अनुशास्ता आचार्यश्री तुलसी की जय की गगनभेदी आवाजें आ रही हैं।

यही है वह महामूर्ति जिसके चरणो को छूने की होड लग रही है, जिसकी वाणी सुनने को लोग दौड पड रहे है। पाण्डाल छोटे पड रहे हैं। आज यह व्यक्ति जिधर से भी गुजर जाता है उस ओर का जीवन इस पर केन्द्रित हो जाता है। सभी अपने दैनिक कार्यक्रम से एक ओर हट इस महाबसत के दर्शन की ओर दौड पड रहे हैं। सुना है इस महामानव को नए-नए कार्य करने की आदत सी पडी हुई है अभी-अभी अनायास ही मर्यादा महोत्सव (राजलदेसर) मे की गई युवाचार्य की घोषणा महान् हर्ष कारण बनी हुई है।

ठीक इस महामानव के दाहिनी ओर दो कदम पीछे की ओर पूर्ण लम्बाई धारण किये, गम्भीर चेहरे एव तेजोमय दृष्टि के साथ अपने मे खोया रहने वाला एक महान् दार्शनिक सत चल रहा है, जिसे सारे विश्व मे महान् चिन्तक, उच्चतम दार्शनिक, विचारक, मानवता पोषी मुनि नथमल से जाना जाता था। आज युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ के रूप मे अपने गुरु के श्री चरणो का अनुसरण कर रहा है। और पीछे सतो की एक लम्बी सी कतार चल रही है।

सतो के पीछे दृष्टिगत है स्थानीय गणमान्य व्यक्तियो की कतारे। सभी लोग केवल जयघोष के समय ही आवाज करते है। अन्यथा शांतचित्त चल रहे है। पक्तिबद्ध अनुशासित। इस महामानव के चरण चुरू से लाखाऊ, दूधवाखारा, हडियाल, डोकवा, सादुलपुर, (युवाचार्यश्री के टमकोर, मीठडी) राजगढ, थानमठई, भाकरा, बहल, ओवरा, दुराला, लेघा, भिवानी, बामला, खरक, कलानोर, लाली, रोहतक, कलाहवड, रोहद, बहादुरगढ, नाँगलोई, (दिल्ली) सदर, लालकिला, दरियागज, अणुव्रत विहार, ग्रीनपार्क होते हुए मेहरौली छतरपुर मे अध्यात्मसाधना केन्द्र मे प्रेक्षाध्यान शिविर मे पहुचे।

उपर्युक्त सभी स्थानो पर अपार जनसमूह ने आपका हार्दिक अभिनन्दन किया और अमृतोपम प्रवचनो का लाभ उठाया। आचार्यप्रवर ने प्रत्येक स्थान पर जिज्ञासुओ की जिज्ञासापूर्ति की है। दर्शनार्थियो को दर्शन दिये हैं। आईये आपको कई मुख्य स्थानो, उन दृष्यो का अवलोकन कराऊँ, जो निश्चय ही अपने आप मे अनोखे रहे हैं—

चुरू—(१६-२-७६ से १६-२-७६ तक) स्थान श्री फतहचन्द, बजरगलाल कोठारी की हवेली।

विशाल हवेली जिसके ओरछोर का पता ही नही चलता। तम्बुओं से आच्छादित पाण्डाल मे श्वेत वस्त्र धारण किये मध्यम कद का चौडे भाल व मोटी-मोटी आँखो वाला, शान्त परन्तु दृढ़प्रतिज्ञ, तेजोमय भावो को बिखेरता सा कभी स्नेह पाश मे जकडता और कभी वरद हस्त से अभिवादन और वन्दन स्वीकार करता हुआ मानवता का सजग प्रहरी विराजमान है।

एक ओर बाल सतो से लेकर वयोवृद्ध श्वेत वस्त्र धारण किए अपने-अपने स्थान पर सजग गुरुदेव की एकटक दृष्टि लगाये आज्ञापालन हेतु तत्पर हैं, तो दूसरी ओर माँ सरस्वती

की प्रिय श्वेत वस्त्रावलि मे शांत चित्त स्नेहमयी ज्योति वाली साध्वियाँ विराजित है, मानो शाँति के देवता की सभा मे साक्षात् शक्तिपु ज देवी-देवता अपने परम अराध्य ज्योतिपु ज की अराधना मे सलग्न हो। सभी की दृष्टि अपने आराध्यदेव पर टिकी हुई है। आज्ञा के इन्तजार मे। सन्तो के आगे युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ जी एव साध्वियो के आगे महश्रमणी है, मानो दल नायक विराजे हो।

दर्शनार्थियो का ताता लगा हुआ है, विविध वेष-भूषा मे बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष पक्ति-बद्धता से आ रहे हैं, तथा वन्दना कर जहाँ भी स्थान मिल रहा है बैठ रहे हैं। एक ओर कुछ पुरुष सामायिक मे सलग्न है तो दूसरी ओर स्त्रियाँ, हाँ पूरे पाण्डाल मे इन्ही दो दलो को अलग से स्थान मिल रहा है। अन्य सभी स्त्री-पुरुष अपने-अपने खेमे मे रिक्त स्थान पर अपने आप बैठ रहे है।

जहाँ आचार्यप्रवर वन्दना स्वीकार कर मगल भावव्यक्त कर रहे हैं, वहाँ प्रकृति अपनी शीतल बयार से सभी को कम्पायमान कर रही है। अजीबगरीब है प्रकृति-खेल। कभी ठण्डी बयार के साथ नन्ही-नन्ही बोछार, तो कभी भयकर दिलदहलाने वाली गर्जन मानो गुरुदेव पर एकाधिकार जमा रही है दर्शनार्थियो को दर्शनो से रोकने मे सलग्न है। वर्षा हुई, दर्शनार्थी रुके। वर्षा रुकी दर्शनार्थी चले, यह आँखमिचौनी चलती ही रही। श्रावक-श्राविकाये भी दृढप्रतिज्ञ है, सभी चारित्र-आत्माओ के दर्शन छोडना नही चाहते है। हजारो की सख्या मे स्त्री-पुरुषो ने आचार्यप्रवर के दर्शन कर प्रवचन का लाभ उठाया। सायकालीन कार्यक्रम मे युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ जी का "आज के युग मे धर्म का स्थान" प्रवचन हुआ, एव आचार्यश्री का १७-२-७९ प्रात कालीन प्रवचन—क्या धर्म से सब कुछ काम चल सकेगा ? विशेष आकर्षण के केन्द्र रहा है।

चुरू नगर के सभी उच्चतम राज्याधिकारियो व नागरिको द्वारा आचार्यप्रवर का स्वागत किया गया। इस अवसर पर जैन विश्वभारती के प्रतिनिधि के द्वारा विस्तार से प्रेक्षा, तुलसी प्रज्ञा एव युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ के प्रवचन कैसट सैटो की जानकारी कराई गई। अनेक श्रावको द्वारा मासिक पत्रिकाओ की सदस्यता ग्रहण की गई, तो अनेको ने जैन विश्व भारती के बारे मे जानकारी प्राप्त की।

इन अवसरो पर महाप्रज्ञ जी के दिसम्बर ७८ शिविर के कैसट्स हर समय सुनवाये गये।

२०-२-७९ दूधवाखारा -

रेलवेस्टेशन छोटा परतु महत्वपूर्ण स्थान था। सायकाल शिविर मार्च ७८ के प्रश्नोत्तर एव आचार्यश्री के प्रवचन की टेप सुनाकर कार्यक्रम का प्रारम्भ हुआ। आचार्यप्रवर ने कहा—विज्ञान का चमत्कार है। ऐसा लगता है महाप्रज्ञ की वद् सारी बातचीत जो मार्च मे की थी, वह साक्षात् अभी कर रहे है।" दर्शनार्थियो को उपदेश दिया गया। दूधवाखारा मे सस्कार निर्माण समिति द्वारा प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। आचार्यप्रवर द्वारा व्यसन-मुक्ति की प्रेरणा स्थानीय श्रोताओ को दी गई। तीन सौ के करीब श्रोता उपस्थित थे।

रेलवे कर्मचारियो के द्वारा व्यवस्था मे पूर्ण सहयोग प्रदान किया गया । प्रात काल महाप्रज्ञजी के द्वारा अपने जन्म स्थान 'टमकोर' की ओर तथा आचार्यप्रवर द्वारा हड़ियाल की ओर प्रस्थान किया गया ।

२१-२-७६ टमकोर—

स्थानीय जनता द्वारा महाप्रज्ञ जी का हार्दिक अभिनन्दन । साध्वियो द्वारा मगलाचरण, मुनिश्री महेन्द्रकुमार जी एव मुनि श्री श्रीचन्द जी द्वारा अभिनन्दन-वक्तव्य, तेरापथ सभा व तेरापंथ युवक सभा द्वारा भाव प्रकट । युवाचार्य महाप्रज्ञ जी ने अपने उद्बोधन भाषण मे बताया कि सब कुछ ज्योति पु ज गुरुदेव की ही कृपा है कि मैं आज इस स्थिति मे हू । इस छोटे से गाँव का ग्रामीण बालक मुनि नथमल बना और मुनि नथमल से महाप्रज्ञ । सब कुछ गुरु-कृपा से ही हुआ है । अब इस गाँव का भी उत्तरदायित्व बढ गया है । आप लोगो का उत्तरदायित्व भी बढ़ गया है । अत अब आप सभी को इसके लिए तैयार रहना है । आचार्य प्रवर की वाणी का प्रसार करना है । न केवल प्रसार अपितु उसका अनुसरण करना है ।

२२-२-७६ सादुलपुर—

आचार्यप्रवर का भव्य स्वागत हुआ । दर्शनीय था । राजस्थान के सार्वजनिक निर्माणमत्री, स्थानीय राज्य उच्च अधिकारी एव गणमान्य नागरिको के द्वारा आचार्यप्रवर का भावभीना अनोखा अभिनन्दन किया गया । आचार्यप्रवर ने उमडते जनमानस को सम्बोधित करते हुए बताया कि "धर्म आपके साथ होगा तो प्रत्येक कार्य अच्छा होगा । धर्म के स्थान ही धर्म के केन्द्र हो यह मानेगे तब तक आप धर्म के मर्म को नही समझेगे । देखिये—हमारा शरीर है । इसमे कुछ केन्द्र है, किन्तु चेतना कहाँ नही है, समुचे शरीर मे चेतना व्याप्त है । इसी प्रकार आपके जितने कार्य-स्थान है, वे ही आपके धर्म स्थान है । नीडम् के कार्यकर्त्ता द्वारा जैन विश्व भारती की प्रवृत्तियो को विस्तार से बताया गया । आचार्यश्री ने प्रात काल यहाँ से विशाल लम्बे जुलूस के साथ प्रस्थान किया ।

२३-२-७६ राजगढ़—

आचार्यप्रवर के स्वागत-जुलूस ने नगर मे प्रवेश किया । दर्शनीय जुलूस देखने सम्पूर्ण राजगढ, सभी वर्ण व समाज के लोग उमड पडे । जुलूस की वही व्यवस्था, अनुशासित जुलूस, निर्धारित नारे लगाते हुए लोग, पाँडाल मे अपना-अपना स्थान ग्रहण किया । आचार्यप्रवर ने बताया हमारे युवाचार्य आने वाले है, अत अभिनन्दन उसी समय रखा जाए ।

जनमेदिनी पुन युवाचार्य की अगवानी के लिए दौड पडी, स्त्री-पुरुष बालक-बालिकाये, युवा-वृद्ध एक दूसरे से आगे जाने की होड मे कि सबसे पहले मैं वन्दना करूँ । अपने युवाचार्य को शहर से ३ किलोमीटर पूर्व जाकर लोगो ने वन्दना की, वन्दना करने वाले थे तेरापथ युवक परिषद के कार्यकर्त्ता, 'नीडम्' के प्रतिनिधि, महिलामण्डल की सदस्यायें और पुन. जुलूस अपने आप बढता चला गया ।

युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ के जयघोष से सम्पूर्ण वातावरण गूंजित हो उठा, लगभग २ कि मी तक लम्बा स्वागत जुलूस युवाचार्य के आगे-पीछे चलता रहा।

आचार्यश्री का एव युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ का सभी चारित्र-आत्माओं का हार्दिक अभिनन्दन किया गया। हजारो की सख्या मे स्त्री-पुरुषो ने भाग लिया।

२४-२-७९ राजगढ़ भागवती दीक्षा-समारोह—

लगभग दस हजार स्त्री-पुरुषो ने भाग लिया। दीक्षार्थी बन्धु थे—

१. मुनिश्री निर्मल कुमार २६ वर्ष के राजगढ।

२ मुनिश्री सम्भवकुमार २१ वर्ष के गगाशहर।

तथा प्रतिक्रमण का आदेश प्राप्त हुआ श्री सुबोधकुमार गधैया राजगढ निवासी को।

भागवती दीक्षा कार्य जैन शास्त्रो की विधि से आचार्यप्रवर द्वारा सम्पन्न हुआ। दीक्षा देने से पूर्व उपस्थित दीक्षार्थी बन्धुओ के परिजनो, समाज व दर्शक बन्धुओ की पूर्व स्वीकृति प्राप्त कर दीक्षा कार्य का शुभारम्भ मगलाचरण से हुआ। दीक्षार्थी युगल बन्धुओं का वर्तमान तक का परिचय दिया गया। तत्पश्चात् तपस्वी मुनिश्री सम्पतमल जी ने अपनी भावना आचार्यश्री के चरणो मे इस प्रकार से प्रकट की—

मेरा मुझ मे कुछ नही जो कुछ है सो तौर।

तेरा तुझको सौपता क्या लागत है मौर॥

युवाचार्य महाप्रज्ञ जी ने वर्तमान समाज व देश को तनाव-मुक्त करने हेतु त्रिगुप्ती गुप्त (कायोत्सर्ग, मौन व ध्यान) साधना का परिचय कराया तथा मानसिक शांति का एक मात्र साधन प्रेक्षाध्यान को बताया। 'नीडम्' के प्रतिनिधि द्वारा इस अवसर पर जैन विश्व भारती की प्रवृत्तियो की पूर्ण जानकारी विस्तार से कराई गई एव प्रेक्षाध्यान केन्द्रो की स्थापना हेतु योजना प्रस्तुत की गई।

आचार्यप्रवर द्वारा अपने मङ्गल सदेश मे मानव उत्थान हेतु सभी को प्रयत्न करने का आह्वान किया गया। हमे प्रयत्न मनसा, वाचा और कर्मणा तीनो प्रकार से सचेत होकर करना है। प्रेक्षाध्यान द्वारा अपने आपको जानो, स्वय जगो, औरो को जगाओ, स्वय उठो और औरो को भी उठाओ, स्वय आगे बढ़ो औरो को भी आगे बढाओ, उनके आगे बढने मे सहयोगी बनो।

२४-२-७९ चामसर्ठई—

रात्रिकालीन गोष्ठी मे कैसट सुनवाये गये तथा आचार्यश्री का मङ्गल आशीर्वचन लोगो द्वारा प्राप्त किया गया।

२५-२-७९ भाकरा—

इस छोटे से गाँव मे भी करीब तीन-सौ स्त्री-पुरुष अपनी ग्रामीण वेश-भूषा मे गुरुदेव के दर्शन को आये तथा उन्हे मुनिश्री चौथमल जी ने अपने भजनो एव गीतो से भावविभोर किया। तत्पश्चात् ग्रामीणो की जिज्ञासा पूर्ति हेतु स्वय गुरुदेव ने अपने मानवता वादी विचार सहज सरल भाषा मे रक्खे, जिसका प्रभाव यह रहा कि तत्काल ५० व्यक्तियो

ने शराब का त्याग किया तथा व्यसनो से दूर रहने का निश्चय किया । सायकाल एवं मध्या-ह्नकाल मे टेप सुनाने का कार्यक्रम चला ।

२५-२-७६ बहल -

रात्रि में ८-३० बजे श्री तुलसीराम जी सरपंच की अध्यक्षता मे एक विशाल जनसभा का आयोजन हुआ जिसमे लगभग ५ सौ स्त्री-पुरुषों ने भाग लिया । सभा-सयोजन मुनिश्री किसनलाल जी के द्वारा किया गया ।

पारमार्थिक शिक्षण संस्था की बहिनो द्वारा मगलाचरण, कवितापाठ, गीतिकाये एव शराफत का नुस्खा तथा भारतीय सस्कार निर्माण समिति की ओर से बालकलाकारो द्वारा गीत, सांस्कृतिक कार्यक्रम रखे गये ।

मुनिश्री चौथमल जी के भजनो ने सभी को मन्त्रमुग्ध कर लिया । श्री मोहनलाल जी दशानी सस्कार निर्माण समिति ने शराबवन्दी पर अपने विचार व्यक्त किये । इस अव-सर पर सरपच महोदय ने आचार्यप्रवर का भावभीना स्वागत किया—इस गाँव मे आचार्यप्रवर पहले पधार चुके है । यह हमारे सौभाग्य की बात है । आचार्यश्री ने अणुव्रतो का वह सन्देश दिया है जिससे सारी मानवता लाभान्वित हो रही है । आप कई माने मे इन्सा-नियत का पाठ पढा रहे हैं । सस्कार निर्माण समिति के द्वारा आचार्यश्री के सान्निध्य मे गाँव-गाँव मे बुराइयो व व्यसनो को दूर कराने का प्रयास कराया जा रहा है जो बहुत बडा काम है । आप जो लोग सब यहाँ उपस्थित है वे यह निश्चय करे कि हम शराब नही पीयेंगे, इस बुराई से दूर रहेंगे । तभी गुरुदेव का सच्चा अभिनन्दन होगा ।

आचार्यप्रवर ने इस अवसर पर—

'दो दिन की जिन्दगी मे क्यो तू बन रहा दिवाना
भारी शरमिंदगी मे क्यो है तू मद मस्ताना ।'

—यह गीत सभी को सामूहिक रूप से उच्चारित कराकर अपने मङ्गल विचार मे बताया कि आपके गाँव मे काफी वर्षों के बाद आज सारे सघ के साथ आये हैं । हम वर्षों से घूम रहे है । पच्चास हजार मील हम घूम चुके हैं । सारे देश की पदयात्रा कर चुके है । तथा यह अनुभव किया कि आज देश मे इन्सानो की जरूरत है, अत भाईयो ! सही माने मे इन्सान बनना हो तो खान-पान, रहन-सहन, बात-चीत, व्यवहार मे सयम को स्वीकार करो । शराब, तम्बाकू, गाँजा, सुल्फा, अमल, बीडी आदि से दूर रहो । हम दिल्ली व पजाब की ओर जा रहे हैं । हमारा लक्ष्य आप लोगो को बुराइयो से होने वाली हानियाँ बताना है । आप लोगो को इनसे बचना है । आप लोग चिन्तन करें, अ र हम सही बात कर रहे हैं तो निश्चय करो कि—हम इन्सान बनेंगे, शराब कभी नही पीयेंगे । दारुखोरो का सग नही करेंगे । बहने निश्चय करो हम अपने घरो मे दारु नही पीने देगी । हमारी इच्छा यही है आप मनुष्य बनें ।

इस अवसर पर 'नीडम्' के प्रतिनिधि के द्वारा जैन विश्व भारती, की प्रवृत्तियो का

परिचय कराया गया। सभा का आयोजन नीडम् एवं भारतीय सस्कार निर्माण समिति ने मिलकर किया।

२६-२-७९, २७-२-७९ **बुराना, लेघा, लुहानी—**

लुहानी मे रात्रि मे सभा का आयोजन नीडम् के कार्यकर्त्ता द्वारा आयोजित कराया गया। आचार्यप्रवर द्वारा 'विशेष शाँति के लिए हमे किस प्रकार से प्रयत्न करने चाहिए' पर विचार व्यक्त किए गये।

भारतीय सस्कार निर्माण समिति के द्वारा प्रदर्शनी एव चित्रपट्ट प्रदर्शन का आयोजन रखा गया।

२८-२-७९ **अनाजमण्डी (भिवानी)**

आज प्रात काल अनाजमण्डी मे सम्भ्रान्त व्यापारिक मण्डल अनाजमण्डी भिवानी एव अनेक नागरिक बन्धुओ द्वारा आचार्यप्रवर का भावभीना स्वागत किया गया।

सायकाल एक सभा को सम्बोधित करते हुये आचार्य प्रवर ने प्रेक्षाध्यान शिविर के आयोजन के बारे मे जानकारी कराते हुये मानव समाज मे फैल रही बुराइयो, व्यसनो, राग-द्वेष, भूठ फरेब, चोरी, बेईमानी, मिलावट, कमतौल, कम माप से बचने के लिए कहा "आप लोगो को मैं तो तभी सच्चा व्यापारी मानू गा।" आचार्यप्रवर व युवाचार्यप्रवर का इस अवसर पर अनाज मण्डी के व्यापार मण्डल द्वारा अभिनन्दन किया गया तथा स्थानीय कवियो द्वारा कविता पाठ करके उपस्थित जनसमुदाय का साहित्यिक मनोरजन किया गया। भारतीय सस्कार निर्माण समिति द्वारा प्रदर्शनी का आयोजन किया गया।

१-३-७९ से ३-३-७९ **भिवानी**

भिवानी अनाज मण्डी से जुलूस का स्वरूप बना। शाँत, मौन एव अनुशासित, आचार्यप्रवर का जुलूस ठीक ८ बजे प्रारम्भ होकर १०-३० बजे भिवानी शहर मे पहुचा। रास्ते मे वही जयघोष थे, चारो ओर हर्षोल्लास था। दर्शनार्थी उमड पड रहे थे। आचार्य-प्रवर, युवाचार्य महाप्रज्ञ जी व महाश्रमणी कनकप्रभा जी का हार्दिक नागरिक अभिनन्दन तेरापथ सभा, युवकसभा, महिलामण्डल भिवानी, के द्वारा किया गया। कार्यक्रम मे जहाँ राज्य के सर्वोच्च अधिकारियो ने भाग लिया वहाँ दूसरी ओर प्रबुद्ध साहित्यकार एव लगभग सभी गणमान्य नागरिक उपस्थित थे। पाण्डाल छोटा पड गया। साईड की कनातें हटानी पडी। भिवानी मे एक सत का इतना विशाल कार्यक्रम इससे पूर्व नही हुआ। लगभग १ हजार स्त्री-पुरुषो ने महाश्रमणी, युवाचार्य जी व आचार्यप्रवर जी की अमृतमयवाणी का पान किया।

यहाँ तीन दिन तक आचार्यप्रवर विराजे तथा कार्यक्रम प्रात, मध्याह्न व सायकाल तीनो ही दिन लगातार चलते रहे, जिनमे मुख्य आकर्षण रहा—युवक परिषद्-अभिनन्दन-कार्यक्रम, अणुव्रत सम्मेलन, बौद्धिक गोष्ठी, पत्रकार गोष्ठी, श्रावक सम्मेलन आदि। यहाँ के

प्रत्येक कार्यक्रम में नीडम् के प्रतिनिधि द्वारा जैन विश्व भारती का पूर्ण परिचय—प्रत्येक प्रवृत्ति सेवा, शिक्षा, शोध, साधना जैन, विद्या पत्राचार पाठ्यक्रम, ब्राह्मी विद्यापीठ, ग्रन्थागार, पारमार्थिक शिक्षा सस्थान, प्रेक्षा, तुलसी प्रज्ञा, महाप्रज्ञ जी के प्रवचन कैसट, जैन विश्व भारती का वर्तमान और भावी रूप आदि पर विस्तार से जानकारी कराई गई, साहित्य-वितरण किया गया।

युवाचार्य महाप्रज्ञ जी एव आचार्यप्रवर के द्वारा अपने प्रत्येक प्रवचनो मे किसी न किसी रूप मे प्रेक्षाध्यान, अणुव्रत एव जैन विश्व भारती का उल्लेख किया गया, तथा नीडम् के प्रतिनिधि द्वारा रखी गई प्रेक्षा-केन्द्र प्रायोजना पर चिन्तन करने हेतु कहा गया। प्रेक्षा-ध्यान शिविर दिल्ली के लिए भी नीडम् के प्रतिनिधि द्वारा पूर्व जानकारी दी गई। आचार्यश्री के इस प्रवासकाल मे लगभग तीन हजार स्त्री-पुरुषो ने दर्शन का लाभ उठाया।

३-३-७९ बामला-खरक—

रात्रि मे टैप सुनाकर एक सगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमे स्थानीय एव दर्शनार्थियो की लगभग ५०० की सख्या रही। दिल्ली यात्रा मे व्यसन-मुक्ति, चरित्र-निर्माण आदि की जानकारी कराई गई।

४-३-७९ कलानोर-लाली—

एक विशाल ग्रामीण सभा को सम्बोधित करते हुए युवाचार्यश्री ने बढती हिंसा, फैलती, अनुशासनहीनता एव अनाचार, अत्याचार व अनैतिकता तथा अप्रमाणिकता पर अपने सुस्पष्ट विचार रखे। आचार्यप्रवर के मगल प्रवचन के पूर्व कैसट सुनाया गया तथा उसी पर अपनी टिप्पणी व्यक्त करते हुए उन्होने लोगो को आगाह किया कि अभी भी समय है जब आप लोग वर्तमान के लिये कुछ कर सकते हो।

५-३-७९ रोहतक—

एस० के० जैन मोटर कम्पनी, रामलीला मैदान बस स्टेण्ड पर प्रात १० बजे आचार्यश्री का स्वागत किया गया। दिन भर वहीं पर विराजे। स्वागत कार्यक्रम २ घण्टे चला तथा इसमे प्रबुद्ध लोगो ने विचार व्यक्त किये। वही पर महाश्रमणी जी ने भी अपने विचार नारी-उत्थान हेतु रखे। युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ जी ने देश मे नैतिक जागरण व तनाव-मुक्ति पर अपने सतर्क विचार रक्खे तथा प्रज्ञाप्रदीप साधना विभाग जैन विश्व भारती द्वारा इस ओर किये जा रहे प्रयासो का सकेत किया। नीडम् के प्रतिनिधि ने तब प्रेक्षाध्यान शिविर, की जानकारी कराई आचार्यप्रवर ने मगल सन्देश दिया तथा साय ५ बजे पधार कर रोहतक शहर जैन धर्मशाला रात्रि प्रवास किया। जहाँ पर सायकालीन प्रवचन कार्यक्रम चला।

मुनिश्री किसनलाल जी ने प्रेक्षा क्या है ? तनावमुक्ति हेतु इसका प्रयोग कैसे या कब किया जा सकता है ? सीखने हेतु मार्गदर्शन कहाँ से प्राप्त करें ? आदि की विस्तृत जानकारी

दी। मुनिश्री चौथमल जी के द्वारा गीत प्रस्तुत किये गये। नीडम् प्रतिनिधि ने जैन विश्व भारती की प्रवृत्तियो की जानकारी देते हुये प्रेक्षाध्यान शिविर मे भाग लेने, हेतु जैन विश्व भारती लाडनू से सम्पर्क करने का निवेदन किया, तथाजैन विश्व भारती आने का निमत्रण दिया। रोहूतक मे लगभग १ हजार स्त्री-पुरुषो द्वारा गुरुदेव के दर्शन प्रवचन का लाभ उठाया गया।

६-३-७६ कल्हावड़—

सायंकालीन सगोष्ठी मे सर्वप्रथम कैसट सैट सुनाया गया। तत्पश्चात् मुनिश्री किसनलाल जी ने अपने विचार व्यक्त किये। तत्पश्चात् आचार्यप्रवर ने मगल प्रवचन किया। लगभग २०० स्त्री-पुरुषो ने प्रवचनामृत पान किया।

७-३-७६ रोहद—

स्थानीय ग्रामीण जनता की एक विशाल सभा का आयोजन नीडम् द्वारा किया गया। जिसमे व्यसन-मुक्ति, सयम जीवन, चारित्रिक उत्थान पर सतो द्वारा एव आचार्यप्रवर द्वारा विचार व्यक्त किये गये। करीब १०० स्त्री-पुरुष उपस्थित थे।

८-३-७६ बहादुरगढ़—

सायकालीन कार्यक्रम मे आचार्यप्रवर ने अपने आशीर्वचन मे बताया कि इस व्यावसायिक व इण्डस्ट्रियल नगरी मे आप सभी लोगो के द्वारा जो भी वस्तु निर्मित की जाती है, उसकी प्रामाणिकता की छाप होनी चाहिए। आप लोगो के हाथ मे देश मे प्रामाणिकता के प्रसार का एक बहुत बडा साधन है। युवाचार्यश्री ने हिन्दुस्तान सेनेटरी क्लब मे प्रवचन किया।

९-३ ७६ नांगलोई—

आचार्यप्रवर का दिल्ली की ओर से दिल्ली सीमा पर हार्दिक स्वागत मुनिश्री रूपचन्द जी द्वारा, नागलोई नगर निगम विद्यालय मे हार्दिक अभिनन्दन, पत्रकार, राजनीतिज्ञ, नगरनिगम के सदस्य गणमान्य नागरिको के द्वारा स्वागत कार्य सम्पन्न हुआ।

आचार्यप्रवर द्वारा दिल्ली आगमन का उद्देश्य स्पष्ट किया गया। लोगो की भावनाओ का और अभिनन्दन पत्र का प्रत्युत्तर देते हुए उन्होने बताया कि जीवन के प्रत्येक कार्य को आप सयमपूर्वक करें। आप अपने आपको सुधारे। आपका दैनिक व्यवहार सुधारे तो समाज व देश का बहुत बडा कार्य होगा। इस अवसर पर लगभग सैकडो स्त्री-पुरुषो ने गुरु दर्शन किए।

जिंदल स्कूल (पजाबी बाग) मे—

रात्रि विश्राम किया। तथा प्रात सदरथाना हेतु प्रस्थान किया।

१० ३-७६ सदरथाना—

प्रात, मध्याह्न एव सायकाल कार्यक्रम चला, अनेकानेक सभ्रान्त नागरिक, विद्वान्, विदुषियो, राजनीतिज्ञो ने भाग लिया। रात्रि कालीन कार्यक्रम मे सदरथाना के नागरिको,

नगरनिगम के सदस्यो द्वारा स्वागत व अभिनन्दन किया गया। युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ जी ने, वर्तमान जीवन मे तनाव से मुक्ति पर अपने दार्शनिक विचार रखे। जैन विश्व भारती की गतिविधियो, प्रवृत्तियो व कार्य प्रणालियो की विस्तृत जानकारी नीडम् के प्रतिनिधि द्वारा कराई गई। समारोह की उपस्थिति पाच सौ करीब थी।

११-३ ७६ लालकिला -

आचार्यप्रवर का सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रतिनिधियो द्वारा हार्दिक नागरिक अभिनन्दन समारोह का आयोजन हुआ। सदरथाने से विशाल जुलूस शुरू हुआ। जुलूस का वही रूप, वही नारे, वही मौन, वही अनुशासन तीन किलोमीटर तक जुलूस, जिसमे सैकडो विद्यार्थी, सैंकडो बालिकाये, सैंकडो रग-बिरगे परिधान मे महिलाये व पुरुष थे, तो दूसरी ओर गुलाबी वस्त्रो मे दिल्ली कन्या मण्डल, पीत साड़ी मे महिला मडल, श्वेत साडी मे पारमार्थिक संस्था की बहनें अपनी अनुपम छटा बिखेर रही थी। दूसरी ओर बालमण्डल बिगुलनाद कर रहा था, तो युवकमण्डल जयघोष से आकाश को हिला रहा था। एक ओर श्रावक निर्धारित नारे लगा रहे थे तो दूसरी ओर श्राविकायें गितिकाओ से मानव चेतना एव सेवाभाव की सीख दे रही थी, बीच-बीच में शाँत परन्तु एकाग्र चित्त लोग पूर्ण मौन का पालन करते हुए पक्तिबद्ध स्व-अनुशासन से चल रहे थे।

यह आत्मानुशासन का जुलूस राजधानी के नागरिको द्वारा प्रथम बार देखा गया, इतना लम्बा, पर कही कोई शोर-शराबा नही। नियमितता, व सयम के साथ आगे बढ़ते जुलूस ने ठीक १० बजे फहराते हुए तिरगे के धनी लालकिले मे प्रवेश किया। जहाँ पर ५ हजार नागरिको द्वारा आचार्यप्रवर, युवाचार्यप्रवर, महाश्रमणी एव सघ का नागरिक अभिनन्दन हुआ। अभिनन्दनकर्त्ताओं के प्रतिनिधि थे—लोकसभा अध्यक्ष श्री हेगडे, उपमहापोर, बाला साहब देवरस सरसघ सचालक, भू०पू० वित्तमत्री श्री सी० सुब्रह्मण्यम्, उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री ऊटवालिया, केन्द्रीय वाणिज्य राज्यमत्री श्री आरिफ बेग, नगर परिषद् के सदस्य, राजधानी के उच्चतम राज्याधिकारी, पत्रकार, साहित्यकार, वैज्ञानिक, एव भारत के गणमान्य उद्योगपत्ति, मजदूर, विद्यार्थी, डाक्टर, लेखक सभी तबके के लोग व उनके प्रतिनिधि उपस्थित थे। अभिनन्दन कार्यक्रम ३ घण्टे तक चला। प्रारम्भ मगलाचरण से हुआ, जिसे पारमार्थिक शिक्षण सस्था की बहनो ने किया।

वक्ताओ के पश्चात् मुनिश्री रूपचन्द जी, महाश्रमणी व मुख्य प्रवचनकर्त्ता युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ जी थे। महाश्रमणी ने जीवन को सरल व सादगीमय तथा विनम्र बनाने हेतु, बहनो को आह्वान किया। युवाचार्यश्री ने वर्तमान ससार मे बढ रहे तनाव और तनाव पूर्ण वातावरण तथा अशाँत एव निराशामय जीवन से छुटकारा पाने हेतु अणुव्रत एव मानसिक शाँति के साधन प्रेक्षाध्यान की जानकारी बडे ही सटीक तर्क बिन्दुओ से रखी। इनके वैज्ञानिक आधार को स्पष्ट करते हुए दर्शन से जीवन को जोडा तथा 'जीवन विज्ञान' की शिक्षा व जानकारी के अभाव को स्पष्ट किया। युवाचार्यश्री के प्रवचन ने सभी मे एक खलबली मचा दी। सभी को सोचने को मजबूर कर दिया।

आचार्यप्रवर ने देश मे फैल रही, हिंसा, अत्याचार, चौरबाजारी, मिलावट, गन्दी राजनीति, शराब, रूढिवादितायें, धर्मान्धता, झूठ, फरेब, बेईमानी अशांत वातावरण

आदि पर प्रहार किया । आगे उन्होने कहा—चारो और हिंसा का साम्राज्य फैल रहा है, मानव-मानव को त्रास दे रहा है। ऐसे अशांत वातावरण का कारण क्या है ? हमें उसके कारणो को नष्ट करना है। तभी ससार इन्सानियत का, मानवता का, सच्चा प्रसार हो सकेगा। हमने देखा है कि अगर हम हमारे जीवन के प्रत्येक कार्य को सयम से जोड ले तो कुछ राहत मिल सकती है। छोटे-छोटे नियम इस कार्य के लिये हमने बनाये जिन्हें अणुव्रत कहते हैं। जिसमें विद्यार्थी, सेवक, व्यापारी, राज्य कर्मचारी, श्रमिक, कृषक, नागरिक, महिला, कार्यकर्त्ता, साहित्यकार, कलाकार, मतदाता, उम्मीदवार, विधायक आदि सभी के लिए कुछ छोटे-छोटे नियम हैं। हमारा विश्वास है कि अगर इनका पालन हो तो, प्रत्येक व्यक्ति को लाभ हो सकता है।

"सामान्य अणुव्रत देखिये—सकल्पपूर्वक वध नही करू गा, किसी पर आक्रमण नही करूगा और आक्रमक नीति का समर्थन नही करूगा, हिंसात्मक उपद्रवो एव तोड-फोड मूलक प्रवृत्तियों मे भाग न लू गा। जाति, वर्ण, ऊँच-नीच को लेकर अस्पृश्यता नही रखू गा। सब धर्मों व सम्प्रदायो के प्रति सहिष्णुता का भाव रखू गा। व्यवसाय और व्यवहार मे सत्य की साधना करूँगा। मादक और नसीले पदार्थों का सेवन नही करूँगा आदि-आदि।

"ऐसे जीवनोपयोगी छोटे-छोटे नियम है। दूसरी ओर तनाव मुक्ति के लिए तीस वर्षों की अथक तप साधना से प्राप्त हमारे महाप्रज्ञ जी ने मानव जीवन उत्थान हेतु एक विधि दी है और मैं निश्चयपूर्वक कह रहा हूँ सभी लोग, बुद्धिजीवी, राजनेता, डाक्टर, वैज्ञानिक, वकील, व्यापारी, मजदूर, मध्यम वर्ग कोई भी तबके का हो और जो मानसिक शाति चाहता हो, तनावमुक्ति चाहता हो, इस विधि का प्रयोग करे, उसे निश्चय ही लाभ होगा। आपके दिल्ली मे इस समय आने का हमारा एक यह भी लक्ष्य रहा है और अध्यात्म साधना केन्द्र छतरपुर महरौली मे १८ मार्च से २७ मार्च तक प्रेक्षाध्यान शिविर का आयोजन किया जा रहा है। जो मैं यहाँ कह रहा हू उसे आप वहाँ पर सत्यरूप मे पा सकते है। जो भी चाहे वहाँ प्रयोग करके देखे। हम इस निश्चय से आगे बढ रहे है कि निश्चित ही हम हमारे उद्देश्य मानवता के प्रसार मे आगे बढेंगे।

आचार्यप्रवर यही से दरियागज विराजकर सायकाल अणुव्रत विहार मे पदार्पण किया।

११ ३-७९ से १७-३-७९ अणुव्रत विहार

आचार्यप्रवर, युवाचार्यश्री साध्वीप्रमुखा जी तथा सभी सतसतियाँ यहाँ विराजित रहे। प्रात, साय, रात्रि मे यहाँ पर सैकडो व्यक्तियो ने प्रवचन एव दर्शन, आदि का लाभ प्राप्त किया। इन दिनो मे आचार्यप्रवर के दर्शन लाभ लेने वालो मे भारत के बडे-बडे राजनीतिज्ञ, उद्योगपति, साहित्यकार, लेखक, वैज्ञानिक, राज्याधिकारी एव अनेक बुद्धि जीवी लोग ही नही, विदेशी राजदूतावासो के अधिकारियो को भी गुरुदेव का सान्निध्य मिला।

सायकालीन सगोष्ठियो में नियमित कैसेट सैटो का सुनाया जाना, प्रवचन के समय जैन विश्व भारती की प्रवृत्तियो शिक्षा, शोध, सेवा व साधना की जानकारी कराना,

शिविरों की जानकारी कराना आदि कार्य नीडम् के प्रतिनिधि ने किए। विस्तार से प्रत्येक गतिविधि का परिचय कराते हुए तुलसी प्रज्ञा एव प्रेक्षा पत्रिका की जानकारी कराई गई। सात दिन के प्रवासकाल मे लगभग हजारो दर्शनार्थियो के द्वारा गुरुदेव से जिन वाणी का लाभ उठाया गया।

१७-३-७६ ग्रीनपार्क

सायकालीन दर्शन के समय आचार्यप्रवर के दर्शन ग्रीन पार्क मे श्रावक-श्राविकाओ के द्वारा किये गये तथा प्रवचन लाभ उठाया गया। सैकडो दर्शनार्थियो ने इसका लाभ लिया।

१८-३-७६ अध्यात्म साधना केन्द्र दिल्ली छतरपुर

शिविर उद्घाटन हेतु पूज्यवाद गुरुदेव ६ बजे पधारे तथा कार्यक्रम ठीक निर्धारित समयानुसार ६-३० बजे प्रारम्भ हुआ। करीब तीन सौ दर्शको के मध्य गुरुदेव के द्वारा प्रेक्षाध्यान शिविर का उदघाटन मगलाचरण के पश्चात् किया गया, सयोजक श्री कठौतिया जी के द्वारा स्वागत भाषण हुआ। मुनिश्री किसनलाल जी के द्वारा जहाँ सयोजन किया गया वही इसके महत्त्व पर भी प्रकाश डाला गया।

शिविर निदेशक युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ जी के द्वारा प्रेक्षा क्या है? क्यो आवश्यक है? तथा किस सरल विधि से इसे अपनाया जा सकता है इस पर विस्तृत प्रकाश डाला गया। पधारे हुए भारत के विख्यात आयुर्वेदाचार्य प शिव शर्मा, यू जी सी के चेयरमैन, प्रो सतीशचद्र एव साहित्यकारो ने अपने विचार व्यक्त किये तथा बताया कि निश्चय ही प्रेक्षाध्यान की यह पद्धति अपने मे अनूठी एव सारगर्भित दृष्टिगत होती है, निश्चय ही इसे अपनाया जा सकता है। आचार्यप्रवर ने अपने उद्बोधन भाषण मे शिविरार्थियो से कहा—वास्तव मे आपने जिस मार्ग को चुना है उसके बारे मे आपके मन मे अनेक जिज्ञासाये होगी और उन सभी का समाधान आपको शिविर मे प्राप्त होगा। शिविर कैसा होगा या कैसा रहेगा इसका स्वाद गूगे के गुडसा है, जो बताने नही खाने से मालूम होता है। मैं केवल इतना कह सकता हू कि एक बार आप इसमे आ गये तो बार-बार आयेंगे। यह अनुभव की बात है। बम्बई के भाई आपके साथ बैठे है। इनके अतिरिक्त आपके साथ कई अन्य साथी होगे, जो दूसरे व तीसरे शिविर मे भाग ले रहे है। मै तो यही शुभकामना करता हूँ कि आप अपने लक्ष्य को प्राप्त करने मे सफल हो।

शिविर मे २०० शिविरार्थियो ने भाग लिया। जिनमे सारे हिन्दुस्तान मे से दूर-दूर से लोग थे। अनेक नाम आये पर स्थान की कमी के कारण कुछ भाई बहनो को अगले शिविर हेतु छोडना पडा।

आचार्यप्रवर दिनाक १८ मार्च ७६ से २७ मार्च ७६ तक मेहरौली छतरपुर मे ही विराजे।

यात्राकाल के बोलते आंकड़े—

पत्राचार पाठ्यकम जैन विश्व भारती का परिचय देना।

प्रेक्षा पत्रिका, तुलसी प्रज्ञा पत्रिका की जानकारी कराना।

कैसट सैट की जानकारी कराना।

अस्पृश्यता व रूढियाँ तोडने हेतु वातावरण निर्माण करना।

विश्व बन्धुत्व एव विश्वशांति हेतु वातावरण बनाना।

प्रेक्षा केन्द्रो की स्थापना कराना।

सम्पर्क सूत्र बना—१५ हजार से २० हजार स्त्री-पुरुषो से।
राजनीतिज्ञो, साहित्यकारो, उद्योगपतियो, कृषको, मजदूरो, तथा विद्यार्थियो से।

विशेष आयोजन स्थल—राजगढ दीक्षा समारोह
भिवानी अभिनन्दन समारोह
दिल्ली नागरिक अभिनन्दन सभा
प्रेक्षाध्यान उद्‌घाटन समारोह

———

जैन विश्व भारती : प्रवृत्ति एवं प्रगति

जैन विश्व भारती के सभी विभाग निरन्तर प्रगतिशील हैं। गताङ्क से आगे सक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है—

शोध विभाग

शोध विभाग द्वारा विभिन्न योजनाओ को मूर्त रूप देने का उपक्रम चालू है।

१ जैन विश्वकोश—प्रस्तावित जैन विश्वकोश का कार्य प्रारम्भ हो चुका है। सम्प्रति कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय द्वारा निकलने वाली शोध-पत्रिका (Research Journal) 'प्राचीन ज्योति' से जैन धर्म-दर्शन, साहित्य, इतिहास, सस्कृति आदि से सम्बन्धित लगभग पाँच सौ शोध-लेखो का सूचीकरण किया जा चुका है।

शोध-निदेशक डॉ० नथमल टाटिया ने 'अनेकान्त' पर एक खोजपूर्ण लेख लिखा है, जो जैन विश्वकोश मे लिखे जाने वाले शोध-लेखो मे सर्वप्रथम है। यह लेख पत्रिका के इसी अ क के आँग्ल खण्ड मे प्रकाशित किया जा रहा है।

२ जैन आगमकोश—युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ के निर्देशन मे जैन आगमकोश का कार्य चल रहा है।

३ अनुवाद—(i) अणुव्रत अनुशास्ता युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी द्वारा सस्कृत मे लिखित "शिक्षा षण्णवति" एव "कर्तव्यषट्त्रिंशिका" नामक कृतियो का अ ग्रेजी अनुवाद श्री रामस्वरूप सोनी द्वारा सम्पन्न किया जा चुका है और अब उसका वाचन एव सशोधन ब्राह्मी विद्यापीठ के नव नियुक्त प्राचार्य श्री डी० सी० शर्मा कर रहे हैं।

(ii) अर्हत वन्दना का अ ग्रेजी अनुवाद शोध निदेशक डॉ० नथमल टाटिया द्वारा सम्पन्न हो चुका है।

शिक्षा विभाग

ब्राह्मी विद्यापीठ के प्राचार्य के रूप मे अनुभवी वयोवृद्ध विद्वान् श्री डी० सी० शर्मा की नियुक्ति की गई है। श्री शर्मा इससे पूर्व पजाब के ग० मे० कालेज मे अ ग्रेजी विभाग के अध्यक्ष एव पजाब के सरकारी-गैरसरकारी कालेजो के प्रिन्सिपल रहे है। विद्यापीठ इनके मार्ग-दर्शन एव व्यवस्था क्रम से उत्तरोत्तर विकसित होगा, ऐसा विश्वास है।

२६ जनवरी १९७९ को गणतत्र दिवस के उपलक्ष्य मे ब्राह्मी विद्यापीठ की ओर से एक सभा का आयोजन किया गया, जिसमे झण्डाभिवादन एव राष्ट्रगान के पश्चात् एक

रोचक एव आकर्षक कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। सगीत, कविता, भाषण, कव्वाली और एकाभिनय आदि इसके प्रमुख अ ग थे, जो दर्शको की दृष्टि मे काफी सफल रहे। इस अवसर पर डॉ० नथमल टाटिया, श्री गोपीचन्द चोपडा, श्री डी० सी० शर्मा एव वैद्य सोहनलाल शर्मा के सारगर्भित भाषण भी हुये। कार्यक्रम का सफल सयोजन सुश्री शान्ता जैन ने किया।

वैशाली से आये हुये विद्वान् प्रो० देवसहाय त्रिवेद का जैन एव बौद्ध धर्म विषयक ऐतिहासिक खोजपूर्ण भाषण हुआ। श्री त्रिवेद ने चन्द्रगुप्त मौर्य एव अशोक के जीवन, धर्म एवं शासन को विशेष रूप से स्पर्श किया। भाषण के पश्चात् सगोष्ठी मे प्रश्नोत्तर द्वारा विषय का विवेचन किया गया।

वसन्त पञ्चमी के दिन ब्राह्मी विद्यापीठ (डिग्री कक्षाओ) की छात्राओ का दल अध्यापको के सरक्षण मे अनतिदूरस्थ पर्वतीय शिखर अभियान का आनन्द उठाता हुआ शिखर पर पहुचा। प्रकृति की गोद मे ऐसी शैक्षणिक यात्राओ का विशिष्ट महत्त्व है। इसी भाँति पारमार्थिक शिक्षण सस्था की कुछ बहनो ने आचार्यश्री के निरन्तर दर्शन एव सेवा हेतु विहार मे भाग लिया। अधुना परीक्षा काल सन्निकट होने से छात्र एव शिक्षक अध्ययन-अध्यापन मे रत हैं।

बर्द्धमान ग्रन्थागार

ग्रन्थालयाध्यक्ष श्री सुबोध कुमार मुखर्जी (कलकत्ता) की देखरेख मे ग्रन्थो के वर्गीकरण एव सूचीकरण का कार्य द्रुतगति से चल रहा है। फरवरी-मार्च ७९ मे प्राच्य विद्या सबधी करीब सौ उत्तमोत्तम ग्रन्थो की अभिवृद्धि हुई। आलोच्य अवधि मे सत-साध्वियो, शोधार्थियो एव अन्य पाठको द्वारा विविध विषयो पर ३०० पुस्तको का अध्ययन किया गया, जिससे ग्रन्थागार की उपादेयता सिद्ध होती है।

युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ द्वारा रचित १०० से अधिक पुस्तको का पूरा सेट सकलित करके एक अलग "सेल" की स्थापना की जा रही है। शोधार्थी पाठको की सुविधा हेतु ग्रन्थागार हॉल मे समस्त खिडकियो पर पर्दे लगा दिये गये है एव रोशनी की समुचित व्यवस्था कर दी गई है।

ग्रन्थागार मे पुस्तक आगत-निर्गत व्यवस्था के अन्तर्गत "कार्ड पद्धति" (पुस्तक पत्रिका व्यवस्था) लागू की जा चुकी है। जो सफल सिद्ध हो रही है।

ग्रन्थागार से सबद्ध वाचनालय कक्ष मे ज्ञानोपयोगी मासिक, साप्ताहिक, दैनिक आदि पत्र-पत्रिकाओ की सख्या ५० से अधिक है।

साधना विभाग

तुलसी अध्यात्म नीडम्, लाडनू तथा अध्यात्म साधना केन्द्र दिल्ली के सयुक्त तत्त्वावधान मे दस-दिवसीय "नवम प्रेक्षा-ध्यान शिविर" दि० १८ मार्च से २७ मार्च, १९७९ तक आचार्यश्री के सान्निध्य एव युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ के निर्देशन मे "अध्यात्म साधना केन्द्र,

कुतुब मीनार के निकट, छतरपुर रोड, मेहरोली, दिल्ली-३०" नामक स्थान पर सम्पन्न हुआ। जिसमें विभिन्न प्रान्तो के लगभग २०० साधक-साधिकाओ ने भाग लिया।

आगामी ग्रीष्मावकाश मे साधना विभाग, लाडनू में "चतुर्थ अध्यापक योग, नैतिक शिक्षा प्रशिक्षण शिविर" का आयोजन होने की सम्भावना है, जिस हेतु राजस्थान शिक्षा विभाग से पत्र-व्यवहार चल रहा है।

प्रेक्षाध्यान शिविरो में युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ द्वारा प्रदत्त प्रवचनो के केसेट्स साधना विभाग ने विक्रयार्थ तैयार कराए हैं, जो अभिनन्दनीय है।

स्वास्थ्य विभाग

सेवाभावी कल्याण केन्द्र द्वारा की जा रही अभूतपूर्व सेवा के फलस्वरूप वात-व्याधि, अपस्मार, हृदयरोग, उदररोग, क्षय, प्रतिश्याय तथा ज्वर के रोगी स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर रहे है। रोगी सख्या इस भाँति है —

नवीन रोगी	पुराने रोगी	पुरुष	स्त्री	बालक		कुल योग
३३०	६६१	६१०	५५६	१२५	=	१२९१

रसायन शाला मे सजीवनी वटी, प्रभाकर वटी, अग्नितुण्डी वटी, अमर सुन्दरी वटी, नवायस लोह, लोह पर्पटी आदि के साथ-साथ कई आवश्यक चूर्णों के योग तैयार किए गए है तथा विषो का शोधन एव धातुओ का मारण किया जा रहा है। वनस्पति वाटिका मे अनेक वनस्पतियो का रोपण किया जा चुका है। एतदर्थ कल्याण केन्द्र के निदेशक श्री माणकचन्द जी सेठिया तथा जैन विश्व भारती के मन्त्री श्री श्रीचन्द जी बेगानी के प्रयत्न सराहनीय है।

— o.—

साहित्य समीक्षा

तीर्थंकर

(मासिक), वर्ष ८, अङ्क ७-८, नवम्बर-दिसम्बर १६७८

श्री नैनागिरि तीर्थ एव आचार्य विद्यासागर विशेषाङ्क

सम्पादक—डॉ० नेमीचन्द जैन

प्रकाशक—हीरा भैया प्रकाशन, ६५, पत्रकार कॉलोनी, कनाडिया रोड, इन्दौर-४५२००१

वार्षिक शुल्क—दस रुपये, प्रस्तुत अङ्क—पाँच रुपये, पृष्ठ १२८।

तीर्थंकर ने पत्रकारिता के क्षेत्र मे जो कीर्तिमान् स्थापित किया है, वह प्रशसनीय है। **तीर्थंकर** के अद्यावधि जितने विशेषाङ्क निकले है, उनकी एक स्वस्थ परम्परा है। प्रस्तुत **श्री नैनागिरि तीर्थ एव आचार्य विद्यासागर विशेषाक** भी उसी परम्परा का सवाहक है। विशेषाङ्क के माध्यम से किसी व्यक्ति/तीर्थ विशेष के अन्तर-बाह्य स्वरूप का आकलन करना साधारण बात नही है, किन्तु प्रस्तुत विशेषाङ्क मे जिन नपे-तुले शब्दो मे आचार्य विद्यासागर जी और नैनागिरि तीर्थ क्षेत्र का शब्द-चित्र प्रस्तुत किया गया है, वह अभिनन्दनीय है।

प्रस्तुत विशेषाङ्क मे जितने भी लेख दिये गये है, वे सभी महत्त्वपूर्ण है, इनमे प० कैलाशचन्द्र शास्त्री का 'णमो लोए सव्व साहूण', डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री का 'जैन साधु की चर्या', नीरज जैन का 'एक और विद्यानन्दि', आचार्य विद्यासागर का 'मोक्ष आज भी सम्भव है', डॉ० नेमीचन्द जैन का 'भेट, एक भेद विज्ञानी से' और सुरेश जैन का 'नैनागिरि जहाँ खुलते है अन्तर्नयन' नामक लेख अन्तस् को छूने/झकझोरने वाले हैं। पण्डित कैलाशचन्द शास्त्री का यह कथन कि—"आज की विडम्बनाएँ देखकर मेरा यह मत बन गया था कि इस काल में सच्चा दिगम्बर जैन साधु होना सम्भव नही है, किन्तु जब से आचार्य विद्यासागर के दर्शन किए है, मेरे उक्त मत मे परिवर्तन हुआ है" यथार्थ है। मैं समझता हू कि आचार्य विद्यासागर जी के दर्शन करके केवल पण्डित जी की ही नही, अपितु उनके अन्य समानधर्मा व्यक्तियो की भी यही स्थिति होगी।

इस अङ्क की अन्य जो विशेषता है, वह है सम्पादकीय—'साधुओ को नमस्कार'। ऐसा स्वस्थ चिन्तन कभी-कभार ही पढने को मिलता है। सम्प्रदायगत बू से रहित निम्न पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

साधु एक खुली किताब है,
या कहें कि वह
एक जीवन्त शास्त्र हैं,
एक ऐसा शास्त्र, जिसमें चारित्र लिपि का उपयोग हुआ है,
जिसके अक्षर-अक्षर, वर्ण-वर्ण से अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य
प्रकट हो रहे है।

कुल मिलाकर प्रस्तुत अङ्क बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है, जो सम्पादक के कलाचातुर्य का निदर्शन है। आचार्य विद्यासागर जी के विभिन्न मुद्राओ मे दिये गये चित्रो का सयोजन भी उत्तम है।

इस अनुपम प्रस्तुति के लिये सम्पादक एव प्रकाशक दोनो बधाई के पात्र है।

डॉ० कमलेशकुमार जैन

शिक्षा के सन्दर्भ मे

लेखक—मुनिश्री गणेशमल

सम्पादक—मुनिश्री कन्हैयालाल

प्रकाशक—श्री जैन श्वे० तेरापथी मानव हितकारी सघ, राणावास

पृष्ठ सख्या—५२, मूल्य—अनुल्लिखित

मुनिजी गणेशमल जी सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती आदि विभिन्न भाषाओ के अधिकारी विद्वान् है। आपके द्वारा लिखी गई कई पुस्तके प्रकाशित हो चुकी हैं। समीक्ष्य कृति दोहो मे निबद्ध एक लघु पुस्तिका है, जो भावो से भरपूर है। इसकी शैली अति मनोरम एव शिक्षाप्रद है, इसके एक-एक दोहे मे जीवनोपयोगी रत्नो का खजाना भरा है।

समझदार नर है वही, करे सोचकर काम।
करके पीछे सोचता, मूर्ख उसी का नाम॥

पुस्तिका मे कुल ४ शीर्षक है— दो, तीन, चार और सात। इनमे शीर्षक के नामानुरूप अर्थात् दो-दो, तीन-तीन, चार-चार और सात-सात सख्या वाली प्रसिद्ध बातो का उल्लेख किया गया है। पुस्तिका बच्चो को कण्ठस्थ कराने योग्य है।

—डॉ० कमलेशकुमार जैन

श्री जिनदत्तसूरि मण्डल, दादाबाड़ी अजमेर के प्रकाशन

(उक्त प्रकाशन से निम्न पाँच पुस्तके भेंट स्वरूप प्राप्त हुई हैं)

१ धर्म और ससार का स्वरूप, पृ० २४+१५८, सन् १९७०, मूल्य रु० २ ००।
२ जीवन दर्शन (अहिंसा), पृ० १६+९८, चतुर्थ आवृत्ति, मूल्य रु० २ ५०।
३ Rational Religion, पृ० २४+९२, द्वितीयावृत्ति, मूल्य रु० २ ५०।

४ चैत्यवदन व्याख्या, पृ० १८+४८, सन् १९७७, मूल्य रु० १ २५।

५ आनन्दघन जी के पदो पर एक दृष्टि, पृ० ३८, सन् १९७८, मूल्य रु० १ २५

इन पाँच पुस्तको के लेखक श्री गोपीचन्द धाडीवाल हैं। श्री धाडीवाल जैन समाज के जाने-माने प्रसिद्ध विद्वान् हैं, उनके चिन्तन की झलक उक्त पुस्तको मे मिलती है।

विद्यार्थी बोध

लेखक—वैद्य कपूरचन्द विद्यार्थी

प्रकाशक—श्री भागचन्द इटोरया सार्वजनिक न्यास, दमोह (म० प्र०)

पृष्ठ—२०+४४, मूल्य—भेट, प्रथमावृत्ति, सन् १९७८

समीक्ष्य पुस्तिका के लेखक धार्मिक एव सेवाभावी स्वभाव के एक सुधारवादी श्रावक है। प्रस्तुत पुस्तिका मे राष्ट्रबोध, स्वास्थ्यबोध और अध्यात्मबोध नामक तीन अध्याय है, जिनका विषय शीर्षकानुरूप है। इनमे सरल एव सुबोध शैली मे लिखे गये नीति विषयक ३३३ पद्य है। कुछ पद्य तो रहीम, कबीर एव प० गोविन्ददास जी द्वारा अनुवादित हिन्दी **कुरल काव्य** के नीतिप्रद दोहो की याद दिलाते है। उदाहरणार्थ राष्ट्रप्रेम अध्याय मे दिये गये निम्न पद्य द्रष्टव्य हैं।

कर न सके सद्‌भाव से जो अनीति प्रतिकार।
उसे नही जनतत्र मे जीने का अधिकार ॥१/८॥
श्रम जीवन है राष्ट्र का नैतिक बल है प्राण।
अनुशासन प्रति सजगता स्व-पर सृजन कल्याण ॥१/१३॥

वस्तुत राष्ट्रप्रेम, स्वस्थ जीवन और आध्यात्मिक साधना—ये तीन मानव मात्र के मौलिक लक्ष्य है, जिनके द्वारा मानव जीवन सार्थक बनाया जा सकता है। इस पुस्तिका मे इसी लक्ष्य की सपूर्ति की गई है। इसके चुने हुए पद्य सार्वजनिक स्थानो पर लिखे जाने तथा स्कूलो की पाठ्य पुस्तको मे सम्मिलित किये जाने योग्य है। पुस्तिका लघु होते हुए भी "गागर मे सागर" की तरह जीवनोपयोगी नीतियो को प्रस्तुत करने मे लेखक पूर्ण सफल हैं। रात्रिभोजन त्याग विषयक कुछ स्वतत्र एव प्रभावशाली पद्यो का समावेश इसमे किया जाना जरूरी था। इसके कुछ पद्य रेडियो सीलोन (श्री लका) से प्रसारित किये जा चुके है इससे भी इस पुस्तिका की महत्ता स्वयसिद्ध है।

प्रस्तुत पुस्तिका का प्रकाशन स्व० श्री भागचन्द जी इटोरया की स्मृति मे स्थापित न्यास की ओर से हुआ है। स्व० श्री इटोरया जी क्रान्तिकारी एव सुधारवादी विचारधारा के व्यक्ति थे।

आशा है, इस पुस्तिका का सर्वत्र स्वागत होगा।

डा० फूलचन्द जैन
प्राध्यापक
जैन विश्व भारती, लाडनू

प्रणाम महाप्रज्ञ

डा० नेमीचन्द जैन

दिल्ली/१ दिसम्बर/१९७४/"जिणधम्म-सगीति" के बाद की सुखद सुबह/शान्त, उजला आकाश/काका साहब कालेलकर का निवास/उनका ९०वां जन्मदिन/मुनिश्री नथमल जी की अपलक प्रतीक्षा/कई लोग हैं/अच्छा लग रहा है, तथापि प्रतीक्षा है किसी ऐसे व्यक्ति की जिसे देखा दो-एक बार है किन्तु जिसने जगह बना ली है भीतर ब्रह्माण्ड से कही अधिक।

डॉ० माचवे ने काका साहब का एक रेखाकन किया है और वे उस पर उनके हस्ताक्षर ले रहे है। सभा हुई है। मुनिश्री नथमल जी उसमे बोले है। मैं निर्निमेष देख रहा हू, चौडा ललाट, अचचल नेत्र, अभीत चित्त कोई शार्दूल खडा है और "स्याद्वाद" पर से भ्रम की परम्परित चादर हटा रहा है। कह रहा है—"काका साहब ने जैनधर्म की जैसी सेवा की है, वैसी किसी जैन ने भी नही की, वे अनेकान्त-मूर्ति है।" चित्त पर जो तस्वीर बनी वह इस तरह कुछ थी—"एक आदमी है। कसा हुआ मन, कसा हुआ तन, कसे हुए शब्द, कसे हुए वाक्य, सब अचूक, अमोघ।"

इस सक्षिप्त-सादे-सुखद समारोह से लौटते एक लाभ हुआ। भारतीय ज्ञानपीठ ने जैन सिद्धान्त कोशकार ब्र० जिनेन्द्र वर्णी के अभिनन्दन-समारोह का आयोजन किया। एक कोशकार का अभिनन्दन स्वय में चकित कर देने वाली घटना थी, क्योकि इस अभागे की खोज पल-भर के लिए केवल संकट या अनिश्चय के समय होती है, और निश्चय के मुट्ठी मे आते ही लोग उसे बिसार देते हैं। मुनिश्री भी इस समारोह में आमन्त्रित थे। प० दलसुख भाई मालवणिया और आद० अगरचन्द जी नाहटा भी साथ लौट रहे थे। मुनिश्री भी लौटे। कोई ऑटो से भागा कोई शॉर्टकट से। मुनिश्री अचचल किन्तु सवेग, स्वय में, किन्तु जागरूक। उनके पग ही मग बने। उन्होने चलना शुरू किया और "मैंने" उनके साथ दौडना। दूर कुछ था नही। बातें करते चले तो लगा दूरी गणितीय नही मानसिक होती है। उस दिन सापेक्षता का एक और स्पष्ट बोध हुआ। उस दिन का वह सचल तथापि अचल सान्निध्य आज भी चित्त पर उसी जीवन्त मुद्रा में उपस्थित है और निबिड अन्धकार में जब-कभी किरण बन जाता है। सच, उस दिन ठीक ही लगा था कि मैं एक वट-बीज के साथ यात्रायित हू।

* * *

१ दिसम्बर १९७४/८-१० अक्टूबर १९७७ के बीच उन्हें उन्ही की कृतियो में तलाशता रहा। अक्टूबर १९७७ में मुझे लाडनू जाना पडा। वहाँ एक सगोष्ठी आयोजित थी। यद्यपि मैं मैसूर विश्वविद्यालय की एक सगोष्ठी में था दो दिन पूर्व और यह असभव ही था मुझ—जैसे निष्कांचन के लिए कि लाडनू पहुचू और सगोष्ठी में अपना शोधपत्र प्रस्तुत करू, किन्तु जैन विश्व भारती के विद्वान् कुलपति श्रीश्रीचद जी रामपुरिया तथा "तुलसी प्रज्ञा" के सपादक डॉ० नथमल टाटिया की कृपा ने मुझे न्यौता और मैं वहाँ आकाशमार्ग से जा सका। आचार्यश्री अस्वस्थ थे, सारे कार्य चल रहे थे। कौन चला रहा था इन्हे ? मुनि श्री नथमल जी का कुशल, दिशादर्शी नेतृत्व। कही, कोई विश्रृखलता नही थी। मुझे "जैन पत्र-पत्रिकाओ के उद्भव और विकास" पर अपना शोधपत्र पढना था। पता नही क्यो ऐसा हुआ है कि जब भी मैं मुनिश्री नथमल जी से मिला हू, एक विशेषाक की तैयारी के तेवर में ही उनसे मिलना पडा है। दिल्ली से लौटकर मैंने "श्रीमद्राजेन्द्रसूरीश्वर" विशेषाक सपन्न किया और लाडनू से लौटकर "जैन पत्र-पत्रिकाए" विशेषाक। इसे सयोग कहिये, अथवा नियतियोजित किन्तु हुआ यही, और होगा यही। पता नही मुनिश्री के व्यक्तित्व मे ऐसा क्या है जो मेरी प्रज्ञा को मांजता है और उदारता को मेरे नजदीक लाता है।

सभवत ८ अक्टूबर का वह दिन था। मैं अपने शोधपत्र का वाचन कर रहा था पढ चुका था शायद। कुछ भान नही है, किन्तु उसी दिन मुनिश्री ने कहा था—"पता नही क्यो मुझे लगता है कि डॉ० नेमीचन्द जैन और हमारा साथ जन्मजन्मान्तर का है।" कह नही सकता चित्त की किस एकाग्रता मे से यह क्वणित हुआ था, किन्तु उस रात वही लाडनू में मैं बहुत भीतर गया था और मेरी चेतना ने इस तथ्य पर अनायास हस्ताक्षर किये थे। यद्यपि आज वह क्षण गुजर गया है, किन्तु अभी भी मै उस रोमांचक पल की तलाश मे बना हुआ हू, और जब पढ रहा हू कि उन्होने "नामातीत" और "सबन्धातीत" होने की बात कही है तो बहुत चिन्तित हू। तो फिर क्या उस घटना पर स्याही का धब्बा डाल दू, किन्तु शायद वैसा इसलिए नही कर पाऊगा क्योकि बहुत गहरे में मै उन्हे अपने आमने-सामने पा रहा हू, ठीक वैसे ही जैसे कोई किसी गहन अ धियारे मे मेरे हाथ मे एक दीपक जलाकर रख जाता है और फिर नही दिखायी देता, या किसी माँ की वह मगल कामना जो यात्रा पर निकल रहे अपने बेटे के लिए पाथेय तैयार करती है। सच तो यह है कि अपनी जीवन-यात्रा में मैंने उन्हे सदैव अपने परिपार्श्व मे जीवन्त उपस्थित महसूस किया है।

* * *

मैं जब भी उनके ग्रन्थो की स्वाध्याय-यात्रा में से गुजरा हू तब भी मुझे ऐसा ही अहसास हुआ है।

"सत्य की खोज"/१९७४/प्रथम वाक्य-"उपाय की खोज किये बिना उपेय की खोज नही की जा सकती। सत्य उपेय है। ज्ञान उसका उपाय है।" इसे हजम करते लगा कि जैसे कोई सूत्रकार सामने है और अष्टाध्यायी-सूत्रो की भाँति घटनाओ मे से जीवन की

संज्ञाएँ, क्रियाएँ-विशेष नहीं—बोता जा रहा है। एक जीवन्त सूत्रकार से परिचय हुआ मेरा इस लघुपुस्तिका मे।

वही १९७४ और फिर एक अद्भुत कृति मेरी मेज पर—"श्रमण महावीर।" एक जीवनी, एक काव्य, एक उपन्यास, दर्शन, साहित्य, संस्कृति। प्रथम वाक्यो यों—"जीवन जीना निसर्ग है।" अच्छा लगा। अनुभव हुआ जैसे कोई परम कलाकार अपनी तर्क-टाँकी से किसी प्रस्तर-खण्ड को प्रतिमा मे बदल रहा है। यह आयी वीरेन दा के "अनुत्तर योगी" से पहले किन्तु काफी उस-जैसी।

मेज पर फिर एक अनन्य कृति है, जिसमे एक श्रमण, सस्कृत आशुकवि ने कई ब्राह्मण काव्य-चुनौतियो को झेला है और अपनी कालजयी प्रतिभा को स्थापित किया है। यह है—"तुला अतुला"/वर्ष है १९७६। इसका प्रथम वाक्य पढकर ऐसा लगता है जैसे कोई महामनीषी अपनी सुकुमार अंगुलियो से जीवन के रहस्य उद्घाटित कर रहा है। लगता है जैसे कोई यातुक हौले-हौले जिन्दगी के राज उजागर कर रहा है—किसी झटके अथवा धक्के से नही वरन् बडी कोमलता से वैसे ही जैसे बिना किसी शॉक के चन्द्रतल पर एक अन्तरिक्ष यान उतरता है। इसका पहला वाक्य है—"शरीर मे निवास करने वाला भगवान् है सयम और मस्तिष्क मे निवास करनेवाला सद्विचार है परमात्मा।" इसे कहते हैं एक पटु नीतिकार—एक ऐसा भर्तृहरि जो जीवन को भूसी से नही तत्व से तोलता है, और यदि भूसी से तौलता है तो भूसी को भू-सी कर देता है। मुनिश्री की प्रतिभा अनन्य है, विदग्ध है, और है अपराजिता।

फिर एक दिन यो हुआ कि भाई कमलेशजी ने दो और बहुमूल्य कृतियाँ समीक्षार्थ भेज दी—"मन के जीते जीत"/१९७७, "मैं, मेरा मन, मेरी शान्ति"/१९७७। पहली मे "आब्जर्वेशन्स" है—सटीक, अमोघ, अचूक। इसका पहला वाक्य है—"मन का प्रश्न बहुत उलझा हुआ है।" इसे कहा सबने है, किन्तु विचार कहाँ, किसने और कब इतने गहरे पैठ कर किया है? दूसरी का दूसरा वाक्य है—"क्या मन को छोडकर "मैं" (अहम्) की व्याख्या की जा सकती है?" सवाल गम्भीर है और इसका उत्तर कोई मनीषी ही सफलता से दे सकता है। समूची किताब अद्भुत है और कई समस्याओ का समाधान करती है।

जब लाडनूं से लौट रहा था तो सोचा चलो मुनिश्री नथमलजी के दर्शन किये जाएँ और यात्रा को सुखद-निरापद बनाया जाए/गया। कार मे सामान रखा जा चुका था। वे काफी व्यस्त थे। मुनिश्री दुलहराज जी से भी भेट हुई। मैंने उनसे एक किताब माँगी—"जैन न्याय का विकास।" तुरन्त मिली। ट्रेन मे उसे आद्यन्त देख गया। यह १९७७ मे राजस्थान विश्वविद्यालय के जैन विद्या अनुशीलन केन्द्र द्वारा प्रकाशित हुई है। इसका प्रथम वाक्य है—"जैन दर्शन आध्यात्मिक परम्परा का दर्शन है।" मैं सोचता रहा क्या कोई ऐसा सुधी लेखक है, जो पहले वाक्य को सपूर्ण किताब की आरसी बना दे, तब मेरा ध्यान अनायास ही मुनिश्री की उन किताबो पर गया जो मेरे सग्रह मे उपलब्ध है और मैं प्राय सबकी प्रस्तुतियो और प्राक्कथनो के प्रथम वाक्यो को पढ़ गया। मेरा मन नाच उठा अपार उल्लास

में और लगा कि इस मनीषी को शब्दश , न अक्षरश , पढ डाला जाए । पढा भी, सुख भी मिला, स्फूर्त भी हुआ ।

आज सवेरे (२० मार्च १९७९) दो और किताबें रिव्यू के लिए मिली हैं—"चेतना का ऊर्ध्वारोहण" तथा "जैन योग ।" पहली का प्रथम वाक्य है—"हम मनुष्य हैं और चेतना हमारी विशेषता है ।" बात सौ टका दुरुस्त है और सीधे-सादे शब्दो में कही गई है तथापि अभी कइयो को मनुष्यता-बोध नहीं है, चेतना-बोध तो काफी फासले की बात है । पूरी किताब अनुपम है, तथ्य-समीक्षण चमत्कृत करने वाला है ।" प्रेक्षा" मे जो किश्तो मे मिलता है, वह यहाँ अखण्ड रूप मे सयोजित है । दूसरी का पहला वाक्य है—"आध्यात्मिक व्यक्ति सत्य का अन्वेषी होता है ।" बात सशक्त है, किन्तु प्रस्तुति के बाद जहाँ प्रथम अध्याय का मुखडा है वहाँ का प्रथम वाक्य है—"तुम भिखारी नही हो · भिखारी स्तब्ध रह गया · ।" इस अ श को पढकर लगा कि रूपको मे से अर्थ को निचोडना और अपने पाठक या श्रोता को सुगम शब्दो मे परोसना किसी महाप्रज्ञ का ही काम हो सकता है किसी सामान्य आदमी के बूते की बात वह नही है ।

* * *

इस तरह जो मनीषी बार-बार आमने-सामने रहा है/रहता है, मेरी चेतना से टकराता है, वह अक्षर-पुरुष है मुनिश्री नथमल, जिनका यदि कोई अक्षर-चित्र मुझसे बनवाया जाए तो मैं "कॉलाजिंग" की नव्यतम विधा का उपयोग करूँगा और उनकी तमाम कृतियो के प्रथम वाक्यो को गड्डमड्ड कर दूंगा और देखूंगा कि एक परम पुरुष मेरे सामने उपस्थित है । मेरे लिए यही महाप्रज्ञ, जो सचमुच नामातीत और सबन्धातीत है, प्रणम्य है, प्रणाम उन्हे ।।।।

———

फार्म ४ (नियम ८ देखिए)

१ प्रकाशन स्थान	—लाडनू (नागौर-राजस्थान)
२ प्रकाशन अवधि	—मासिक
३ मुद्रक का नाम	—श्याम प्रेस, सदर बाजार, लाडनू (राजस्थान) —भारतीय
४ प्रकाशक का नाम	—श्री रामस्वरूप गर्ग, पत्रकार —भारतीय —कार्यालय सचिव तथा सयोजक प्रेस-पत्र, प्रचार-प्रकाशन जैन विश्व भारती, लाडनू (राज०) ३४१३०६
५ सम्पादक का नाम	—डा० नथमल टाटिया डा० कमलेश कुमार जैन (सह) गोपीचद चौपडा (प्रबन्ध) —सभी भारतीय —पता शिक्षा व शोध विभाग जैन विश्व भारती, लाडनू
६ उन व्यक्तियो के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हो तथा जो समस्त पूजी के एक प्रतिशत से अधिक के हिस्सेदार हो।	जैन विश्व भारती [पजीकृत सस्था] लाडनू (राजस्थान) ३४१३०६

मैं रामस्वरूप गर्ग एतद् द्वारा घोषित करता हू कि मेरी अधिकतम जानकारी एव विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

ह० रामस्वरूप गर्ग, पत्रकार

दिनांक २८ फरवरी १९७९ प्रकाशक के हस्ताक्षर

सूचना

षष्ठम प्रेक्षा ध्यान शिविर

(१५ मई से २१ मई, १९७९)

प्रेक्षा-ध्यान एक विशुद्ध आध्यात्मिक एव वैज्ञानिक प्रक्रिया है। स्वय के द्वारा स्वय का निरीक्षण, राग-द्वेष से मुक्त, विशुद्ध प्रज्ञा द्वारा चैतन्य की अनुभूति, क्षण-क्षण मगल-भावना से भावित आत्म परिणाम इसके आधारभूत अग हैं। प्रेक्षाध्यान-शिविर मे आप सादर आमन्त्रित है।

साधनाक्रम —प्रेक्षा एव अनुप्रेक्षा ध्यान, योगासन, प्राणायाम, कायोत्सर्ग तथा भावना-प्रयोग।

सान्निध्य एव निदेशन	युवाचार्यश्री महाप्रज्ञजी
विशेष प्रवचन	अनुप्रेक्षा (समय मध्यान्ह ३ से ४ बजे तक)
शिविर स्थान	अणुव्रत विहार, २१० दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-११०००२

सानुरोध निवेदन

(१) शिविर मे भाग लेने के इच्छुक साधक के प्रार्थनापत्र ५ मई, ७९ तक पहुच जाने चाहिए। स्वीकृति पत्र प्राप्त होने पर ही शिविर मे भाग ले सकते है। दिनाँक १४ मई, ७९ की साय काल तक शिविर स्थल पर पहुच जाये, अन्यथा स्थान निरस्त समझा जायेगा।

(२) ग्रीष्म ऋतु अनुकूल उपयोगार्थ सामान्य सामग्री साथ लावे, श्वेत वस्त्रो को प्रमुखता दे।

(३) भोजन एव व्यवस्था शुल्क ७०/-रुपये।

निवेदक

मोहनलाल कठोतिया	जेठाभाई जवेरी
सयोजक	अध्यक्ष
अध्यात्म साधना केन्द्र, नई दिल्ली	तुलसी अध्यात्म नीडम्
	जैन विश्वभारती, लाडनू (राजस्थान)

सम्पर्क-सूत्र

तुलसी अध्यात्म नीडम् (शिविर कार्यालय)
द्वारा-अणुव्रत विहार, २१० दीनदयाल उपाध्याय मार्ग
नयी दिल्ली-११०००२, दूरभाष २७७७५८

TULASĪ-PRAJÑĀ

Volume IV **February-March 1979** **No 7-8**

CONTENTS

Yuvācharya Shrī Nathmalji—Saint and Scientist

Vidyalankara Prof S K Ramachandra Rao
Director, Study of Consciousness Project
SAVSS Research Academy, Bangalore

Yuvāchārya Muni-Śri Nathmalji represents an ideal that our culture has, for thousands of years, projected The ideal involves strict asceticism combined with wide learning, yearning uncompromising austerity combined with fervent intellectual Religious life is invariably concerned with effecting a compromise between the twin issues of Faith and Reason The ordinary intellects hold fast to faith at the cost of reason, while the more sophisticated folk give up faith to pursue reason The two issues appear irreconcilable But Yuvāchārya-Śrī has shown that the two can indeed be integrated, and has taught that such integration is the need of the day

He is an ascetic, perfectly in accord with the strictest religious discipline in India Commitment to a particular exposition of the eternal truth has not been for him a mere formal adherence, nor a sort of emotional isolation Faith in his case is an activity, a movement towards valid knowledge, and it provides enough scope for reason to operate towards the production of such knowledge His approach to the philosophical and religious problems of Jainism is by no means coloured by the cult to which he owes allegiance The cult has no doubt been the guiding star of his entire career, but his faith in it has not stiffled reason On the contrary, faith in his case has fanned the fire of reason to blaze forth.

He is deeply religious at heart, and is a conservative in his chosen style of life His heart is saturated with sentiments peculiar to Jainism But his mind is alert and open It restlessly explores the many facets, frontiers and dimensions of intellectual certitude It is of an inquiring turn

Muni-Śrī Nathmalji's temperament is truly scientific He reveals an eagerness to be acquainted with the latest developments in several scientific disciplines, especially psychology and medicine, However, his

approach is not that of an untutored layman, intent on picking up tid bits of interesting information He approaches modern scientific knowledge as the proverbial wise man of the East, convinced about the correctness of his own essential position while being ready to assimilate useful details from whatever quarter they come

This temperament has rendered him keen on organizing his own body of knowledge, and in this he employs reason generously He is inclined to take the general truths of modern science as premises for his arguments which seek to justify and project the validity of traditional wisdom in the context of modern knowledge

His reliance on reason is considerable, as his talks amply demonstrate And his intellectual powers are truly marvellous But a discerning person may readily recognize that his reason is neither unaided nor arrogant It is judiciously restrained by his belief concerning the superior value of intuition The ancient sages did not obtain their wisdom in the impersonal and publicly accessible way that ordinary scientific workers obtain theirs The method of the sages was deeply personal, experiential and direct They did not lose sight of the essential in the bewildering forest of technical details and modalities of expression It is intuition that helped them obtain wisdom as revelations and reason played here a minor role Nathmalji-muni is convinced about the value of such intuition Indeed, he has a share of it himself

Nathmalji-Muni can view human knowledge as a whole system and examine its relevance to human destiny His understanding of human nature has a genuine ring of humanism, and it is an outgrowth of authentic traditional wisdom of India His mission consists in seeking to provide a 'scientific status' to the 'acknowledged truth', and it is here that his most significant contribution must be seen His talks and writings are intellectual exercises designed to focus attention on rational arguments and evidences But, more importantly, his Yoga camps (*śibira*) are meant to provide practical demonstrations of 'the acknowledged truth'.

He is not interested in establishing or proving any particular truth or doctrine He is not even interested in working out the correspondances that obtain between traditional Indian wisdom and modern scientific knowledge His chief concern is to create a group of individuals who have a total perspective, a perspective in which faith and reason can be complementary to each other and in which religion and science are not mutually exclusive

It is not the *scientia mundana* that inspires his mission, but *philosophia perennis*. But he recognizes the value of science in evolving the mode of philosophy that will be valid and relevant for the modern man. The significance of his work reaches beyond the confines of the Terāpanth sect to which he immediately addresses himself and over which he has a great impact. It is relevant to all inquiring and earnest minds in the world. It pleads for integrative vision and wisdom, which *prajna* really means. As one who has come under his influence, I pray that the world will benefit by his inspiring presence.

A Rare Combination of Jñāna & Dhyāna —Acharya Designate Shri Mahāprajña

—Ram Swaroop Soni

Some persons are born great , some achieve greatness, and there are some who have greatness imposed upon them Terapanth religious order is above these criteria Everybody that is consecrated in this Order, be it a monk or a nun, is born great by dint of the auspicious planets dominating the zodiac at the time of his or her birth Everyone achieves greatness by dint of the life of discipline that one leads Greatness is imposed upon one when the Pontiff assigns him the duty to lead the whole Order when the occasion so demands Erstwhile Muni Nathmalji, who is now designated as Yuvacharya Shri Mahāprajña by Acharya Shri, is a great personality from every consideration He has been tested on every touchstone and found to be 100% 'gold'

He has voluminous literature to his credit On the directions of Acharya Shri, he edited all the Āgamas with missionary zeal, and the holy texts with commentaries are now available to the general reader His works, comprising of about more than a hundred books, cover a wide range of topics and are replete with ample of lifelong experience gained through dedication and devotion to the ideals of Holy Order They may be categorised under the following heads - (1) Āgamas (2) Adhyātma and Darsana (3) Anuvrata (4) Nīti and Sadācāra (5) Vihāra (6) Poetry and Poetic Prose (7) Yoga and Sādhanā (8) Essays (9) Miscellaneous.

Besides this published literature, there are innumerable articles scattered throughout various magazines and top-ranking journals on Jainology & Indology His forte lies in the universal appeal, discarding the narrowness or rather blind adherence to the ideology of any particular sect Needless to say, he is an original thinker par excellence, and anything from his pen is reverently applauded by the classes as well as the masses, for he is acknowledgedly a great thinker, erudite philosopher and prolific, clear writer who has the gift of cashing in his experience

His epoch-making works "Jaina Darśana Manana aura Mīmāmsā", "Jaina Nyāya kā Vikāsa," "Ahimsā Tattva Darśana',, and a

dozen more are the representative works on Jaina Philosophy and Religion. They are the glaring examples of his erudition and deep insight into Metaphysics, Logic and Psychology. He deals the subject with an analytical mind, embarking upon the full tide of Jaina Tattvā and Pramāṇa-Mīmāmsā His book "Nayavāda Śanti aura Samanvaya kā Patha" is true to its name and may serve as a royal road to world-peace and international understanding, only if the billigerent nations just care to listen to the wise talk of the great seer—our Yuvāchāryaji Mahārāja.

An inseparable relationship exists between literature and culture The development and decay of culture depends solely upon those of literature The modern trend of literature is, as it were, flowing into uneven stream and nobody knows into which abyss would it lead culture Old values are fast deteriorating and new ones do not seem to be taking shape New construction is at a snail's pace , decay is taking place by leaps and bounds In this transitional period of our culture, Yuvāchāryaji has produced a vast literature and dovetailed concrete suggestions for the multiple evils prevalent in our social stucture His "Aṇuvrata Darśana", "Naitiktā kā Gurutvākarṣaṇa", " Samasyā kā Patthara, adhyātma ki chenī" and a dozen more of such type present a code of conduct of universal religion in the true sense of the term Aṇuvrata is not confined to any particular sect or mode of worship Yuvāchāryaji has shown new dimensions to this movement started by Acharya Shri, who in turn got it from Lord Mahavira, "Religion transcends sect and creed, time and place, manner of food & clothing "

His poetical works "Asru Vīnā", "Atulā Tulā", and "Sambodhi" testify his scholastic aptitude Whatever saints mumble becomes a hymn, whatever they write turns into reflections of the soul They utter and act for self-realisation They worship for perennial bliss In the light of this autobiographical element in "Atulā Tulā", it can be deduced that Yuvāchāryaji is an "āśu kavi" (instant poet) who excels in 'Samasyā-pūrti' which he has rendered in chaste and flawless Sanskrit, Prakrit and Hindi on different occasions He does not want to be tested through others' measuring stick, he has his own measurement which others fail to comprehend

Parassa tolāmi aham tulāye
Mānena annassa niyam mināmi
Pāsāmi diṭṭhī parassa ce haṃ
To atthibhāvo pi ṇa appaṇotthi.

—Appaṇivedaṇaṁ

"Sambodhi" is his masterpiece, composed after the style of Gīta Arjun in Gītā proves to be a coward on the battle-field at Kurukṣetra, whereas Meghkumar, (son of Shreṇika), in Sambodhi proves to be a coward on the battle-field of Sādhanā Lord Krishna's teachings dispelled the doubts lurking in Arjun's heart, in the same way Lord Mahavira's teachings enlightened the soul of Meghkumar as depicted in 'Sambodhi' A lamp makes another lamp burn The light of the one enkindles the other "Sambodhi" comprises of right knowledge, right perception and right conduct as well Without right perception knowledge turns into ignorance, and without right conduct knowledge and perception are meaningless Thus Yuvāchāryaji has done a yeoman's service by leading us to the Kingdom of Heaven (self-emancipation), as Lord Ṛṣabha told his ninetyeight sons who had come to him to complain against Bharat -

> Sambujjhaha kim na bujjaha, sambohī khalu pecca dullahā
> No hu vaṇamanti rāiyo, no sulabham punarāvi jīviyam
>
> [Attain sambodhi Why are you not striving for sambodhi? The night once past never returns This human existence is not easy to be attained again and again]

Under poetic prose, half a dozen works "Bandi sabda mukta bhāva", "Vijaya Yātrā" "Gūnjate svara bahare kāna", "Anubhava, cintana, manana" etc are ripe with nature experience of an enlightened soul This particular series is almost the Bible to many and at any moment of dejection, tension, suspense, or anxiety they may turn almost instinctively to its pages of wisdom and draw therefrom life's breath to drive away despair's hiccough and bless the guide for the new life vouchsafed to them His language is pregrant, but simple, terse and even aphoristic His "Ocean in drops" is packed full of such wisdom —

> Handle the cord thus that no knot forms Make thy moves thus that no quarrel ensues Comb thy hair thus that it does not get entangled Form thy thoughts thus that they do not clash, otherwise, knots tighten, wars afflict, hair gets tangled and sparks scientillate
>
> [Page 31]

Tagore got the Nobel Prize for the Gītānjali Anybody would say that Yuvāchāryaji's work is in no way inferior to that of the Nobel Laureate

The philosophical treatment of the lives of the Preceptors ·— "Śramaṇa Mahāvīra", Bhikṣu vicāra darśana", "Ācārya Śrī Tulsī" is unsurpassed in various ways No other writer has given a more authentic and systematic exposition of the singular contribution of these great

teachers of humanity These volumes undoubtedly prove that Yuvāchārya like Acharya Shri Tulasi is realist who has given new dimensions to the tenets of Jainism as revealed by Lord Mahāvīra and Āchārya Bhikṣu and Acharya Sri Tulsi

Last but not the least is the sphere of 'Yoga & Sādhanā' to which the Yuvāchāryaji has applied himself wholeheartedly to arrive at reality through personal participation in it and benefit the entire humanity in the light of his attainment—"Sampikkhae-appagamappaenam" He has evolved the technique of Prekṣā-Dhyāna and produced a vast literature on this lost *undeveloped* field of Jainology His works "Mana ke jīte jīta", "Jaina Yoga", "Cetanā kā Urdhvārohana", "Main, merā mana, merī śānti" bear the eternal truth—"appaṇāsaccamesejjā mettiṁ bhūesu kappaye", whose single drop is the coordination of spiritualism and life-philosophy That drop, though tiny, is as deep and expansive as the sea

He has gained vision which is not 'viyoga' of the past and the present, it is 'Yoga' His consciousness is not bound to 'you' and 'I' distinction, it is free from it His sādhanā does not worship truth, it anatomises it He has laid down sixteen points to achieve mental peace, of them eight points are for personal sādhanā and eight are for collective sādhanā Thus his book "Main merā, mana, merī śānti" is a boon for those who are upset due to mental tensions

It is gratifying to note that a dozen of his works have been rendered into English Looking to the magnitude of his literature, this number is very small It is hoped that most of his major works shall be rendered into English very shortly

To conclude, let me quote from his "Vicāron kā anubandha" the views of this intellectual personality on how man can reach the highest rung of the ladder of success in his life —

"A person is ever in quest of emancipation He does not like strings So it is essential for him to seek emancipation But is it really easy to get emancipation ? The medium through which it is sought, is itself a bondage Intellect is a bondage Idea is a bondage. If man does not use his intellect, he is no better than an animal If he does not entertain any idea, he is static He can neither do without intellect nor without ideas From advanced level we find that intellect and ideas are the sole factors From existence level we find that intellect and ideas are of no use Genius is not drained when one goes from ignorance to wisdom and from wisdom to the state transcending wisdom. It is not

the fallacy of thoughts to move from indiscretion to discretion and from discretion to absence of discretion It is an expedition towards existence. Man has reached the highest rung of the ladder of success through this expedition "

We hope, under Yuvāchāryaji's stewardship Terapanth Realigious Order shall reach the highest rung of the ladder of success.

Hero as Saint

—Miss Veena Jain

A person is admired either by dint of the material things at his command or the strong moral character which constitutes the backbone of his internal advancement and which has heroic qualities. Heroes are of many kinds A hero can be a poet, a writer, a politician, a king or a man of letters, but the real hero of heroes is a saint

The combination of the qualities of hero and a Saint in one person is very rare but we see this rare Combination in Yuvāchārya Shri Mahāprajña of the Terāpantha religious order

The qualities of a hero are manifold The first is that his mind is an open book He has nothing to hide under This cannot be achieved unless he has a deep insight into reality We see this quality in Yuvāchārya Shri Being a saint and a hero he is really endowed with superior insight He has searched as well as experienced the truths of life He is an aspirant of spiritual nobilities Whatever he has experienced is known to everybody

The second quality of a hero is that he is deeply earnest A deep, great and genuine sincerity is the characteristic of a hero. Yuvāchārya Shri Mahāprajña is deeply sincere to himself and to the eternal truths of life He is very much devoted to Terāpantha Sect and to Acharya Shri Tulsi With his quality of dedication and devotion he has able to go deep into the rate of meditation through Prekshā-Dhyāna He reveals to us what we should to do in order to lead a perfect life His sincerity, faithfulness and perseverance to attain the cherished goal is a source of inspiration for everybody

Time is gone when people bowed before other human beings, taking them as personification of God To-day if someone bows before Achārya Shri Tulsī or Yuvāchārya Shri and pays obeisance, it is not because they are treated as personification of God but because they possess these qualities of a hero And hero is always worshipped

Another quality is that a hero has true valour and courage in his soul Lincoln, Napoleon, King Ashoka and others were true heroes because they were conquerors, victorious and mighty. These qualities

are found in Yuvāchārya Shrī also not in the sense that he has conquered any land or people but that he is the conqueror of himself He has conquered the inner enemies like anger, avarice and ego In this sense he is a great warrior, the hero of horses This heroic quality can be found in a saint alone

Most of the great heroes of the world divert their energies towards the attainment of material things or worldly reputation but this saint-hero has applied all his energies in the Study of Āgamas, in research work and in meditation to lead his soul to noble heights Through his energies he has enlightened not only himself but the whole religious world as well Yuvāchārya Shri has taught that in order to extricate humanity out of the slough of despondency and scepticism into which it has fallen, what is needed is real and sincere faith in a higher spiritual power Thus he is an upholder of the spiritual view of the world in an age of increasing materialism and uncertainty

Besides these qualities a hero is not narrow and partisan The same is the case with Yuvāchārya Shrī He is above sectarianism He hasn't developed a narrow and partisan mind Whatever truth he came across was seen and felt intensely His views of non-sectarianism and open-mindedness are manifest both in his writings and speeches He deals with each subject not by narrowing himself in any particular religion, area or time When he delivers his lectures whether in public or Preksha Dhyāna Seminars, he fascinates everybody by his magnetic personality

In the present Scientific age, which Mathew Arnold calls as an age of sick, hurry and divided aims, there is need of such a hero imbibed with spiritual qualities Who else than a saint can guide the people in a right way

Really Ācharya Shri Tulsi is far-sighted in nominating Mahāprajña as Yuvāchārya Not only Terāpantha and Jain Community but the whole of humanity also will be benefited by his saintly heroic qualities of head and heart

May our wishes bear rich fruit !

Anekanta

Dr Nathmal Tatia

1. **Introductory** The concept of anekānta occupies a central position in Jaina philosophy Although it is not possible exactly to determine the date of its origin, there is no doubt that the ontology of early Jainism was deeply influenced by this principle. Originally an ethical mode of speech, being concerned with what one ought or ought not to speak, it assumed an ontological role in the Ardhamāgadhī Āgamas, through three stages of development, viz vibhajyavāda (the method of answering a question by dividing the issues), nayavāda (the method of defining the framework of reference), and syādvāda (the prefixing of the particle syāt, meaning 'in a certain reference', to a preposition, indicative of its conditional character) The anuyogadvāras (doors of disquisition) also played a vital role in this matter This ontogical orientation was further strengthened by Umāsvāti, Siddhasena Divākara and Mallavādin, and the concept was converted into a full-grown dialectic by Samanta-bhadra with whom the classical period of the doctrine begins The ontological concept now acquires a logic-epistemological character, and Jain philosophy is now indentified with anekāntavāda (the doctrine of non-absolutism) or syādvāda (the doctrine of conditional statement) or saptabhangi (the dialectic of sevenfold predication) Anekānta as the negation of an absolutistic position or the rejection of a biased or truncated view of things is found in the Buddhist, Yoga and Nyāya schools as well in various contexts A dispassionate assessment of the worth of a philosophy from various viewpoints was the objective that the propounders of anekānta set before themselves And their efforts in that respect were laudable in that they succeeded in preserving some of the most valueable non-Jaina doctrines as well as texts, selected by them for critical comments, which were otherwise ravished from the world by the cruel hands of destiny.

2 **The Origin** Jainism primarily is an ethical discipline, and as such all its tenets had a beginning in someone or other of the moral principles upheld by it. Thus the assertion or denial, affirmation or negation of a philosophical belief was to be carefully made in consonance with the rules prescribed for the right way of speaking in order to avoid

false statements or unwarranted speculations having no bearing on the spiritual path of salvation The metaphysical speculations about the beginning and end of the cosmos, or its eternality and non-eternality, or the existence and non-existence of the soul before and after death, and such other issues that exercised the minds of the thinkers of those days were not considered worth while equally by Mahāvīra and Buddha The latter's repugnance to such problems is attested by the ten avyākṛtas (indeterminables) mentioned in the Majjhima Nikāya (II pp 107 ft, 176 ft) and the former's in the Acārāṅga (1 8 1 5) and Sūtrakṛtāṅga (II 5 1-5) where such speculations are considered as impractical and leading to laxity in moral conduct While this basic attitude of the Buddha remained unmodified throughout his teachings, Mahāvīra appears to have allowed a relaxation in coformity with his realistic outlook in the interest of a dispassionate estimation of the worth of those speculations and the discovery of the cause of their origin Consequently whereas the followers of the Buddha were interested more in the repudiation of the current antipodal doctrines than in their proper appreciation, the followers of Mahāvīra devoted their energies to a proper evaluation of these concepts with a view to finding out a solution of those contradictory views This led to the origin of the madhyamā pratipat (the middle path which eschewed both the antithetical alternatives) of the Buddhists on the one hand, and the philosophy of anekānta (non-absolutism which attempted at synthesizing those alternatives into a comprehensive notion) of the Jainas on the other

3 The Three Stages Three distinct stages of development of the doctrine of anekānta are discernible in the early Jaina Āgamas

3 (a) Vibhajyavāda which is perhaps the earliest phase of the doctrine is found mentioned in the Sūtrakṛtāṅga (1 14 22) where a monk is asked to explain things through the principle of division of issues (vibhajjavāyam ca viyāgarejjā) The Bhagavatī Sūtra provides many an illustration where a question is dealt with in this way On being asked by Gautama whether a person who says that he has taken the vow of desisting from committing injury to all sentient beings is a bonafide observer of the vow or a malafide imposter, Mahāvīra replied that if such person was incapable of distinguishing between the sentient and the insentient, or between the mobile and immobile living beings, he is the latter, but otherwise he is a true observer of the vow (op cit, VII 2 27) Similarly, on being asked by Jayantī which of the two, viz slumber and wakefulness, was preferable, he replied that for the sinful, it was the

former, while for the virtuous the latter (XII.2 /53-55) These and similar instances which are in galore in our text are obviously case of answer by division It should be noted here that the alternative answers to the divided issues are sometimes introduced in the Āgama by the particle siya (Skt, syād) meaning 'in a certain reference' The expression siyāvāya in the Sūtrakṛtānga (I 14 19) na yāsiyāvāya viyāgrejjā 'one should not explain anything without taking resort to siyāvāya (Skt syādvāda, that is, the principle of conditional predication)' also deserves mention It is obviously synonymous with the expression vibhajjavāya noted above and is the forerunner of the syādvāda of later times This also confirms our view of vibhajyavāda as the earliest phase of anekāntavāda

3 (b) The Nayas The nayas* (standpoints) constitute the second stage of the evolution of the concept of anekānta The earliest and most important way of judging the nature of things was to consider them under four heads viz dravya (substance), ksetra (space), kāla (time) and bhāva (mode) Thus in the Bhagavatī Sūtra (II 1 45), the loka inhabited cosmos) is considered as finite in substance and space, but infinite in time and modes There were also other heads such as guṇa (op cit, II 10 126), bhāva (XIX 9 102) and samsthāna (XIV 7 80) which were analogous to bhāva But all these heads were not called nayas The expressions used in connection with the nayas were however dravya and paryāya (equivalent of bhāva) The material atoms are thus stated to be eternal qua dravya (davvatthayāe) and non-enternal qua paryāya (pajjavehim, XIV 4-49-50) and the souls are characterized as eternal qua dravya (davvaṭṭhayāe) and non-eternal qua bhāva (bhāvatthayāe, VII 2 58-59) Another pair of nayas, viz avvocchitti naya (Skt avyucchitti-naya, the standpoint of non-interception) and vocchitti-naya (Skt vyucchitti-naya, the standpoint of interception) are also mentioned in the Bhagavatī Sūtra (VII 3 93 94) Thus the infernal beings are eternal from the standpoint of non-interception (of their existence as souls), but they are non-eternal from the standpoint of interception (of their present state of being infernal after the expiry of that form of existence) A third pair of nayas is also mentioned in the same text, viz vāvahāriya-naya (Skt vyāvahārika-naya, the popular standpoint), and necchaiya-naya (naiścayika-naya, the factual or scientific standpoint) Thus from the popular standpoint the drone is black in colour, but factually or scientifically speaking, it is possessed of all the five colours, viz black, blue, red, yellow and white (op cit., XVIII 6 108)

3 (c) Saptabhangī As the third stage of development of the concept of anekānta, we find a primitive saptabhangī and syādvāda in

the Bhagavatī Sūtra XII 10.211-226 Here the things are judged under the categories of 'self' (āyā Skt. ātman) and 'not-self' (no-āyā Skt no-ātman). An object is characterized as 'self' in some respect (siya āyā), 'not-self' in some respect (siya no-āyā), and 'indescribable, that is, both self and not-self' in some respect (siya avattavvam āyā' ti ya no-āyā' tiya) These three attributes are predicated of an object, noncomposite or composite, respectively from the standpoints of existent characters, non-existent characters, and existent-cum-nonexistent characters In the case of the objects that are noncomposite (for instance, a monad), the attributes are only three in number, viz self, not-self and indescribable Here 'indescribable' means the impossibility of the object being spoken of or described exclusively as 'self' or 'not-self', besause of the same object being both (self and not-self) at the same time These three attributes however, become six in the case of a dyad (a composite body of two space-points) as follows (1) self, (2) not-self, (3) indescribable, (4) self and not-self (one attribute for each space-point), (5) self and indescribable (one attribute for each space-point), (6) not-self and indescribable (one attribute for each space-point) These six ways again become seven in the case of a triad (a composite body of three space points) in the following way (1) to (6) as above, and (7) self, not self and indescribable (one attribute for each of the three space points) Here the fourth, fifth and sixth ways have each two more subdivision Thus the fourth, viz self and not-self, has the following two additional subdivisions-(1) self (for two space-yoints) and not-self (for the remaining one space point) The fifth and sixth ways also have similar subdivisions The text referred to above gives the divisions and subdivisions of the tetrad, pentad and hexad also The basic ways however do never exceed the number seven as in the case of the triad, though the number of subdivisions gradually go up on account of the various possible combinations of the space-points The basic seven ways enumarated above are the prototypes of later seven bhaṅgas of what is called saptabhangī (the doctrine of sevenfold predication) What is to be carefully noticed in this connection is the fact that according to the Bhagavatī Sūtra, the joint predication of the attributes 'self' and 'not-self' to a monad is not possible because the monad has only one space-point Such predication is only possible of a dyad which has two space-points Similarly, the simultaneous predication of three attributes is only possible in the case of triad which has three space-point The implication is that the joint predication of two contradictory attributes to the same space-points is purely a case of 'indescribability' and not an illustration of a dual predication of self and not-self The dual predication is meaningful only if the object has two parts

in order that each individual attribute may find its own accommodation. The later Jaina philosophers, however, did not find any difficulty in such predication, and they made the dual predication ('is' and 'is not' used by them in place of 'self' and 'not-self') irrespective of the noncomposite or composite character of the object Some of them also interchanged the positions of the third and fourth attributes

4 The anuyogadvāras and nikṣepas · The early Jaina philosophers were fond of explaining things according to predefined lists of heads Such heads were called anuyogadvāras, doors of disqusition 20 (or 14) mārgaṇāsthānas 24 (12 or 14) jīvasthānas and 14 gunasthānas may be quoted as illustrations of such lists There are, however, other lists which had direct philosophical significance Umāsvāti, in his Tattvārthādhigamasūtra, 1, 7, 8, 16, 26, has given such lists, which can mostly be traced back to the Jain Āgamas These doors of disquisition played an important role in the evolution of the doctrine of anekānta The Jaina doctrine of four nikṣepas is the final outcome of the speculations concerning the doors of disquisition The nikṣepas were many, but finally they were reduced to four

(Tattvārthādhigamasūtra, 1 5) The following dictum of the Anuyogadvārasūtra, 8, deserves mention One should fully apply to a subject whatever nikṣepas are known about that subject, and to those subjects whose nikṣepas are not known, one should apply the four (viz nāma, sthāpanā, dravya and bhāva) The Jaina thinkers took a very wide view of the subjects they took up for discussion and employed the nikṣepas as the media for the determination of the meaning of words involved in such discussion The doctrine of anekānta owed much to the precise definition of the connotation of the technical terminology employed in the evaluation of antithetical doctrines, and the nikṣepas fulfilled this task as auxiliaries to the nayas

5 **In Non-Jaina Thought** Let us now see whether the elements of the anekānta way of thinking are there in the non-Jaina schools of thought that flourished in those days

5 (a) The Vedic thought The sceptical outburst of the Vedic seer in Rgveda I 164 4 . Who has seen that the Boneless One bears the Bony, when he is first born, where is the breath, the blood and soul of the earth, who would approach the wise man to ask this (ko dadarśa prathamaṃ, jāyamānam asthanvantam yad anastha bibharti, bhūmyā asur asṛgātmā kvasit, ko vidvāṃsam upagāt praṣṭum etat) ? poses a problem to be solved in mystic experience, or through anekānta or rejected as

absurd and insoluble. The scepticism of the Nāsadīya hymn (op cit., X. 129) has also a similar tone In the Upaniṣads we find rational thinkers as well as mystics Thus Uddālaka (Chandogya, VI 2 1,2) was partly a rationalist philosopher who advanced logical proof for the reality of Being (sat), and partly an uncritical empiricist when he ascribes thought to that Being to multiply and procreate and produce heat (tejas) which produces water (ap), and water food (annam) Yājñavalkya Bṛhadāranyaka, II 4 12-14=IV 5 13-15) asserts that the self cannot be known as it is the subject, and whatever is known is necessarilly an object This may be called rational mysticism This background of scepticism and rational mysticism was responsible for the Jaina and Buddhist patterns of thought that emerged and are found recorded in the Ardhamāgadhī and Pāli canons We have made a brief survey of the Jaina way of thinking and shall now see its parallel in early Buddhism, followed by a similar study of the Yoga and Nyāya schools

5 (b) The Buddhist Thought The Buddha calls himself a vibhajyavādin (vibhajjavādo ahaṃ nāham ekamsavādo—I am an analyst or propounder of my views by division of issues, and not one who takes a partial view of things—Majjhima Nikāya, II 469) When the Buddha is asked for his opinion whether the householder is an observer of the right path, he says that it is not possible to give a categorical answer to the question inasmuch as the householder with wrong faith (micchā-patipanno) does not follow the right path, while one with right faith (sammā-patipanno) definitely does so This vibhajyavāda is not essentially different from that of the Jainas

In the Suttanipāta p 396, we find people stuck to their individual truths or opinions (pacceka-saccesu puthu nivitthā) The Udāna, pp. 143-145, gives the parable of the blind men and the elephant Ten blind persons touch various parts of the elephant and give ten conflicting accounts based on their experience of the ten parts which they happened to come into contact with Each of them took the part for the whole and as such they were all with their perceptions vitiated and partial (ekangadassino) The parable is suggestive of a definite stage in the evolution of Buddha's thought, which approached too near to the thought pattern of Mahavīra to be able to maintain its distinct individual character The ultimate thought pattern of the Buddha, however, is to be judged by his attitude to the ten or fourteen famous avyākatas (indeterminables) mentioned in Majjhima Nikāya. II, pp 107-113 and 176-183, and Candrakīrtis' Prasannapadā, p 446, Poussin's Edition

5 (c) The Yoga School The Yogabhāsya (IV 33, for the

Buddhist counterpart of four kinds of questions, see Dīgha Nikāya, III, p 179, and Anguttara Nikāya, II, p 84) classifies questions under three heads (i) there are questions which admit of a clear definitive answer (ekānta-vacanīya), (ii) there are questions which are answerable only by division (vibhajya-vacanīya), and (iii) there are questions which are unanswerable (avacanīya) The question 'shall everybody be reborn after death', is vibhajya-vacaniya, that is, answerable by division The person who has experienced the distinction between spirit and matter will not be born, the others however would take rebirth The Yoga philosopher here opens for himself the way to the anekānta type of thinking, which, however, he does not pursue any further The Sāṅkhya-Yoga doctrine of parināma (change) again is essentially a vindication of the concept of anekānta, barring its insistence on the absolute pre-existence of the effect in the cause The Sānkhya-Yoga conception of puruṣa as an absolutely unchanging entity is of course an exception

(5) (d) The Nyāya School In the early Nyāya litrature also we see discussions which are representative of the anekānta way of thinking Nāgārjuna's criticism of the Nyāya categories of pramāna and prameya provoked answers from the author of the Nyāyadarsana, and also Vātsyāyana, the author of the Nyāyabhāsya, which take resort to the non-absolutistic method for refuting the Mādhyamika philosopher's attacks Nāgārjuna's argument that the concepts of pramāna and prameya, being interdependent, cannot establish themselves, is countered by pointing out that there is no logical inconsistency in viewing the same entity both as pramāna and prameya The Nyāya-darśana, II 1 16, cites the example of a measure (tulā) which is usually employed to measure other things, but on occasion it is itself measured by another article of a standard weight So there is nothing absurd if the same object is conceived as both pramāna and prameya Vātsyāyana, in this connection, gives a very lucid exposition of the relativity of the nomenclature of pramāna, prameya, pramāta and pramiti The ātman (self, soul) is a called a prameya because of its being an object of knowledge, but it is also a pramātā because of its being the subject exercising the function of knowing, the intellect qua the instrument of commition is a pramāna, while as an object of cognition it is a prameya, and it is simply a pramiti when it is exercising nore of the functions of knowing' or 'being known' (ātmā tāvad upalabdhivisayatvāt prameye paripaṭhitaḥ, uplabdhau svātantryāt pramātā, buddhir upalabdhisādhanatvāt pramānam, upalabdhivisayatvāt prameyam, ubhayābhāvāt tu pramitiḥ) The expression vibhajya vacanīyaḥ is also found in the Bhāsya on II 1 19

There is thus unambiguously a trend of Nyāya thought, which takes the school a great way towards the non-absolutistic approach of the Jainas It is interesting to note in this connection that Udayana, in his Ātmatattvaviveka (pp 530-1 Bibliotheca Indica Calcutta, 1939), imagines a simpleton who sees, for the first time in his life, a tusker at the gate of a royal palace and conjectures , Is it a mass of darkness eating white radish, or a piece of cloud pouring out white cranes and roaring, or the proverbial benign friend waiting at the royal gate, or the shadow of what is lying down on the ground, and counters his conjectures by arguments which are equally fanciful , another simpleton makes appearance at this point and persuades him of the futility of all thought about the nature of things Udayana identifies the Buddhist absolutists with these simpletons and rejects their speculations as pure imaginations unworthy of respectable treatment One should neither go astray in imagination and wishful thinking, nor give up in despair all attempts at discovering the full truth from whatever partial glimpses of it one may be able to get The Jaina philosopher is in perfect agreement with such trends of thought as are conductive to the advancement of knowledge and revelation of truth, and fully supports the realistic approach of Udayana to the problem of reality

6 **Umāsvāti, Siddhasena Divākara and Mallvādin, Jinabhadra and Kundakunda** We have been till now discussing the stages of evolution of the doctrine of anekānta in the Āgamas and its parallels in the literature and schools contemporaneous with them Now we have arrived at the transition period when the Jaina thinkers were establishing contacts with their counterparts in the alien systems of thought and composing treatises in the Sanskrit language which was then the only powerful medium of communication between the intelligentsia The Prakrit was also of course, along with the Apabhramśa, an important medium But its influence was gradually waning, although Siddhasena Divākara's Sanmati and the works of Kundakunda and Jinabhadra, written in Prakrit in those days were monumental treatises of abiding value and profound interest

6 (a) **Umāsvāti** Among Jaina authors of the period of transition, Umāsvāti stands first and foremost His Tattvārthādhigamasūtra with *Bhāyṣa* is a compendium of the Āgamas, which leaves nothing of philosophical importance out of consideration Its comprehensive thoroughness can be compared with that of the Buddhist Abhidharmakoṣa (with *Bhāṣya*) of Vasubandhu In addition to giving a summary of the traditional lore, Umāsvāti gives a critical shape to the

anekāntavāda through his exposition of the nayas, nikṣepas and the nature of the sat (a real), and dravya (substance) He also introduces the elements of saptabhangī in his own way which is reminiscent of the same in the Bhagavatī Sūtra mentioned above Umāsvāti is not much concerned with the non-Jaina views He raises the question whether the nayas are the proponents of alien philosophies or indepedendent upholders of oppsition, inspired by diverse opinions, and answers that they are only different estimates (literally, concepts derived from different angles of vision) of the object known (Bhāṣya, I 35 kim ete tantrāntarīyā vādina āhosvit svatantrā eva codakapakṣa-grāhino matibhedena vipradhāvitā iti Atrocyate, naite tantrāntarīyā nāpi svatantrā matibhedena vipradhāvitāḥ, jñeyasya tv arthasyā 'dhyavasāyāntarāny etāni) It is also asserted in this connection that there is no contradiction between them, just as there is none between different cognition of the same object by different instruments of knowledge, such as perception, inference, comparison and the words of a reliable person (yathā vā pratyaksānumanopamānāptavacanaiḥ pramāṇaireko 'rthah pramīyate svavisayaniyamāt, na ca tā vipratipattayo bhavanti tadvan nayavādā iti) This is followed by an elaborate description of the nayas and their relationship with the epistemological system of early Jainism Umāsvāti's definition of the sat (a real) as consisting of origination, cessation and continuity (V 29 utpāda vyaya-dhrauvya-yuktam sat) gives the fundamentals of anekāntavāda in a nutshell The dravya (substance) is defined as 'what is possessed o qualities and modes' (V 37 guna-paryāyavad dravyam), indicating the relation of identity-cum-difference between the substance and the modes (including qualities) The nitya (permanent) is defined as 'what does not lapse from being and would not do so at any time' (Bhāsya, I 30 · yat sato bhāvān na vyeti na vyeṣyati tan nityam iti) All these concepts are brought by Umāsvāti (Bhāsya, I 31) under four heads—dravyāstika, mātṛk-āpadāstika, utpannāstika and paryāyāstika which appear to stand respect-tively for the viewpoints of substance, categories of substance, the immediate present, and the past-cum-future modes From the first viewpoint, negation does not exist (asannāma nāsty eva dravyāstikasya), because it takes note of only what is existent and positive in character Negation appears with the classification of the substance into mātṛkāpadas categories), and consquently here we get both affirmation and negation, (sat and asat), as classification implies both affirmation inclusion of lower categories under a higher category) as well as negation (mutual exclusion of the categories) The utpannāstika, being concerned with the immediate present alone is also the negation of the past and the

future and as such gives rise to the duality of affirmation and negation. Similarly, the paryāyāstika, which is the viewpoint of the past and the future, is the negation of the present, and as such gives rise to the same duality of affirmation and negation In the last three cases we also get a third mode which cannot be described either as sat or asat (na vācyam sad iti, asad iti vā) This is the third bhaṅga called 'indescribable' Umāsvāti concludes this discussion with the statement—deśādeśena vikalpayitavyam iti—which may imply the remaining four bhaṅgas of the saptabhaṅgī

6 (b) **Siddhasena Divākara** The application of the anekānta principle to ontological problems raised in the different school of philosophy was made, most probably, for the first time by Siddhasena This was done by means of the nayas "Kapila's (Sāṅkhya) philosophy", says he, "is a statement from the dravyāstika (substantial) standpoint, whereas the Buddha's is a veriety of pure paryāyāstika (modal) one Kaṇāda composed his treatise from the standpoint of both (these nayas) neverthaless, that remained a false doctrine, as the views propounded therein, each arrogating exclusive validity to itself, are independent of each other (*Sanmati*, III 48-49) On the varieties of nayas and their relation to philosophical views Siddhasena says that the former are as many as there are ways of speech, and the later as many as there are nayas (III 47)

jāvaiyā vayanavahā tāvaiyā ceva homti nayavāyā
jāvaivā nayavāyā tāvaiyā ceva parasamayā

His distinction between vyañjanaparyāya and arthaparyāya also deserves notice As soon as the substance is subjected to division, the sphere of modes starts functioning (III 29) Such modes are twofold — (1) vyañjana modes and artha-modes The former are expressible in words, while the latter are not Thus an object is called 'man' so long as it continues to be so, though undergoing change every moment Here 'man-hood' is a vyañjana-paryāya which is expressible by the word 'man', while the changes that occur in him every moment are arthaparyāyas which cannot be expressed in words An object thus is effable as well as ineffable (saviyappa-nivviyappam, I 35) In Sanmati, I 35-40 Siddhasena enumerates the seven changas almost exactly in the fashion of the Bhagavatī Sūtra mentioned above The full credit of interpreting the Āgamas for a new generation and giving original material for fresh thinking goes to Siddhasena who acted as a link between the orthodox past and the progressive future This is indeed the true function of the propounder of a faith

according to Siddhasena himself "The person who acts as a logician", says he, "in the domain of logic, and as a scripturist in the domain of scripture is a true protagonist of his faith, a person acting otherwise is an impostor".

jo heuvāyapakkhammi heuo āgame ya āgamio

so sasamayapaṇṇavao siddhāṃtavirāhao anno

6 (c) **Mallavādin** The Dvādasārānayacakra of Mallavādin is an encyclopaedia of philsophy, where all schools of thought prevalent in those days are critically examined one by one and superseded by their rivals, thus making a complete circle with twelve spokes connecting the hub with the twelve sections of the rim, each section representing particular doctrines taken up for discussion The doctrines discussed are linked to the traditional seven nayas in a novel plan of the wheel of twelve nayas, viz (1) vidhih, (2) vidhervidhiḥ, (3) vidhervidhiniyamam, (4) vidherniyamah, (5) vidhiniyamam, (6) vidhiniyamasya vidhih, (7) vidhiniyamasya vidhiniyamam, (8) vidhi niyamasya niyamah (9) niyamah, (10) niyamasya vidhiḥ, (11) niyamasya vidhiniyamam, and (12) niyamasya niyamaḥ The book starts with the commonsense popular view of things, represented by the first naya called vidhi (vidhivṛttis tāvad yathālokagrāham eva vastu, p 11) How does it concern us whether there is a cause, or an effect, who can make an end of debated on such issues (pp 34-35)? Mallavādin here quotes Sanmati, I 28, in support of his contention The epistemological position of Dignāga is here criticized as going against the commonsense view of things Vidhi stands for 'injunction' as in the Mīmāṃsā school It is only the injunction to do some thing that is valuable and also desirable (arthyo hi kriyāyā evopadeśaḥ, p 45) The second naya called vidhi-vidhi stands for the particulars in favour of the universal oneness The absolutistic doctrines are consequently brought within the purview of this naya The third naya literally means affirmation—cum—negation of the positive entity, The Sankhya doctrine of prakṛti as subservient to puruṣa, and the doctrins of divine creator and the created world represent this naya The fourth naya, viz vidher niyamaḥ appears to indicate the restriction of absolute freedom of both the purusa and the karman in the evolution of the worldly process The other nayas similarly bring within their purview the doctrines that were prevelent in those days in order to evaluate their merits and demerits About a dozen and a half doctrines are thus discussed and refuted in the treatise which brought for its author the encomium "anu Mallavādinaṃ tārkikāḥ" (all logicians are inferior to Mallavadin) from Hemacandra, the omniscient of the Kali age

6 (d). **Jinabhadra** The activity of Mallavādin was further carried by Jinabhadra who, in his Viśeṣāvaśyaka-Bhāṣya, gave a critical account of the nayas based on his deep and extensive learning in the Āgamas. Here he brings within purview the problems of the general and the particular, substance and modes, word and meaning, ultimate truth and practical truth (niścaya-naya and vyavahāra-naya) His treatment of the problem of nikṣepa is thorough and penetrating An evaluation of the non-Jaina philosophical views is also made by him in the section called ganadhara-vāda and nihnavavāda

6 (e) **Kundakunda** · A new trend of thought was developed by Kundakunda in his Samayasāra, although his Pañcāstikāya and Pravacanasāra generally uphold the traditional positions His treatment of the problems of dravya, guṇa, paryāya, and also utpāda, vyaya, dhrauvya, is deep and critical But in his Samayasāra, Kundakunda develops a new idea which appears influenced by Yogācāra idealism and also Vedāntic absolutism The soul is the cause of what is happening within itself and has no essential relationship with what is happening in the world outside The reverse is also true This cleavage between soul and matter is explained through niscaya-naya and vyavahāra-naya, the former being the standpoint of truth, and the latter of untruth The traditional interpretation of vyavahāra-naya as the popular or practical viewpoint and of niscaya-naya as the factual or scientific standpoint is radically changed Scholars have designated this new meaning of the two nayas as the 'mystic pattern' as distinguished from the traditional interpretation which they call the 'non-mystic pattern' The works of Kundakunda contain both these patterns, but the 'mystic pattern' is the predominant theme of the Samayasāra In the philosophy of Kundakunda thus the concept of anekānta acquires a new meaning in that a new vista is now opened up for the development of the concept of avaktavya (the third bhanga of the saptabhangī) into a mystic realization of the nature of truth in its fulness

These great thinkers have now paved the way for the advent of the classical period which is the subject matter of the next section

7 **The Classical Period Samantabhadra, Haribhadra, Akalanka, Vidyānanda and Others** · The transition period was followed by a period of intense critical thinking when the Jaina logicians headed by Akalanka, composed treatises which were of lasting value in the field of logic and epistemology Sarvārthasiddhi of Pūjyapāda Devanandi and the Āptamimāmsā of Samantabhadra provided a firm ontological base to these thinkers who were responsible for the classical period We here propose

to give a brief account of the doctrine of anekānta as treated by some of these authors

7 (a) **Samantabhadra** The Āptamīmāṃsā of Samantabhadra provides a fertile ground for the doctrine of anekānta to flourish The essence of anekānta is envisaged as lying in the solution of the contradictory attributes or features exhibited by an ontological doctrine, or an ethical principle, or an epistemological theory Each one of the two members of pairs of contradictory attributes or features is critically judged with a view to exposing the difficulties that beset the concept, and then a synthesis of the two is offered The Āptamīmāmsā opens with a vindication (verses 1-6) of the possibilily of the existence of the omniscient In verse 8 it asserts that the ethics of good and bad deeds and the existence of life hereafter cannot be justified without accepting the principle of anekānta The absolutistic conception of an unchanging soul is repugnant to the possibility of moral evolution heading to emancipation. The doctrine of pure affirmation (bhāvaikānta) denies negation and consequently fails to explain the fact of diversity which is so glaring and patent (verse 9) The doctrine of pure negation or nihilism (abhāvaikānta), on the other hand, will deprive the nihilist's arguments of their validity (verse 12) The critics of syādvāda cannot again accept affirmation-cum-negation as the nature of the real in order to avoid these difficulties, because that would be tantamount to the acceptance of the doctrine of anekānta on their part Nor is the position of 'absolute inexpressibility' (avācyataikānta) a tenable hypothesis, because in that case the proposition 'the real is inexpressible' will be an illogical assertion on account of the absolutistic character of the inexpressibility (verse 13)

virodhān nobhyaikātmyam syādvāda-nyāya-vidvisām .
avācyataikānte py uktir nāvācyam iti yujyate

Our text (verses 14-16) then formulates a correct ontological position by asserting that a real is definitely existent' from one viewpoint 'definitely nonexistent' from another, 'definitely existent-cum-non-existent' from a third, and also definitely inexpressible' from a fourth viewpoint, though none of these viewpoints should be considered as absolute and exclusive, one should accept a real as (i) 'existent definitely' (*sadeva*) in the framework of its own substance, space, time and modes, and also as (ii) 'nonexistent definitely' (asadeva) in the framework of alien substance, space, time and modes, because otherwise it would be impossible to determine the nature of the real, it should moreover be accepted as (iii) possessed of the dual nature of 'existence' and 'nonexistence' in succession, and also as (iv) 'inexpressible on account of the failure of the linguistic

device to express the pair of contradictory attributes simultaneously, the remaining three (5-7) bhangas are obtained by combining the fourth with the first three in their proper contexts Here the dialectic of sevenfold predication (saptabhangī) has been clearly defined by Samantabhadra by assigning the fourth position to the attribute of 'inexpressibility' instead of the third assigned to it in the *Bhagavatī Sūtra* and also by Sidhasena The Āptamīmāṁsā now explains the saptabhangī of 'existence' and 'non-existence' (verse 17-20) 'Existence' is necessarily concomitant, in the self-same entity with its opposite viz nonexistence, being its adjunct (viseṣana counterpart), even as homogeneity is necessarily concomitant with heterogeneity (intention to assert difference), similarly, 'nonexistence' is necessarily concomitant, in the selfsame entity, with its opposite (viz existence), being its adjunct (visesana, counterpart), even as heterogeneity is concomitant with homogeneity (intention to assert identity)

astitvam pratiṣedhyenāvinābhāvyekadharmini

visesanatvāt sādharmyam yathā bhedavivakṣayā

nāstitvam pratisedhyenāvinābhāvyekadharmini

viseanatvād vaidharmyam yathā bhedavivakṣayā

An entity is moreover of the nature of positum as well as negatum (vidheya-pratiṣedhyātmā), exactly as the same attribute of the subject minor term) of an inference may be a valid as well as an invalid probans in accordance with the nature of the probandum to be proved by it This is the third bhanga of the Saptabhangī of 'existence' and 'nonexistence' The remaining four bhangas are also to be understood in their proper perspectives Samantabhadra now explains the nature of a real in the light of this anekānta=dialectic The real must be an entity which is not determined by any exclusive property or any absolute character Only that which is undefined by a positive or a negative attribute exclusively is capable of exercising the causal efficiency which is the sole criterion of reality (verse 21 evam vidhi-niṣedhābhyām anavasthitam arthakrt) The Budddist fluxist as well as the Vedāntic monist are jointly criticized here as upholding ontological views, which, being truncated and partial, fail to explain the real in its comprehensiveness Neither an absolutely static, nor a radically dynamic object is capable of exercising the causal efficiency in spite of all other conditions, external and internal, being fulfilled Samantabhadra (verse 22) applies the anekānta dialectic in constructing the real as a totality of infinite number of attributes (dharmas), each of which represents the whole entity relegating the others to the status of mere attributes of that entity

dharme dharme 'nya evārtho dharmiṇo 'nantadharmiṇaḥ.
angitve 'nyatamāntasya śeṣāntānām tadangatā..

He then gives a general instruction to his readers, proficient in the application of the nayas to follow the same method of saptabhangī to discuss the problems of 'one and many', and the like, that were prevalent in those days In fact, he himself discusses the following additional problems in the text under review identity and differences, permanence and flex, cause and effect, reason and scripture, free will and determinism, idealism & realism, bondage & emancipation

7 (b) **Haribhadra** The Anekāntajayapatākā is an important contribution of Haribhadra to the field of anekānta dialectic, which brings within its purview the problems of existence and nonexistence, permanence and flux, universal and particular, and describable and indescribable Among the doctrines refuted in the treatise, kṣaṇikavāda and vijñānavāda occupy a prominent position All these refutations are made strictly from the standpoint of Jaina philosophy and sometimes they go to a depth hitherto unreached by his predecessors The comparative outlook of Haribhadra enabled him to unfold the hidden potentialities of the anekānta principle and apply them in the interest of a comprehensive view of the problems, epistemological and ontological, that exercised the minds of those days

7 (c) **Akalanka** The Aṣṭasatī (commentary on the Āptamīmāmsa) of Akalanka provides a most penetrating insight into the niceties of the doctrine of anekānta His defence of the doctrine is unique and perhaps unsurpassed by any predecessor or successor He unfolds the thoughts of Samantabhadra in a manner which is comparable to that of Dharmakirti in respect of Dignāga The ksaṇabhangavāda of the Buddhists as well as their vijñānavāda are vehemently criticized by Akalanka His contributions to the field of Jaina logic and epistemology are most original and unique, and they set up a norm for the posterity to follow and emulate

7 (d) **Vidyānanda** The Aṣṭasahasrī (the subcommentary on the Aṣṭaśatī of Akalanka) of Vidyānanda is perhaps the last word on the doctrine of anekānta His criticism of the non-Jaina schools is more realistic and thorough. He brings a number of new topics and schools under the purview of his reputation Vidyānanda's exposition of nayas & nikṣepas in his Tattvārthaśloka-vārtika throws new light on these subjects

Among the successors of Vidyānanda, who made important contributions to the doctrine of *anekānta*, the following authors occupy

a position of importance · Prabhācandra, Abhayadeva, Vādideva and Yaśovijaya The reader is referred to the accounts of the life and works of these authors given elsewhere in this encyclopaedia

Bibliography

Mookerjee, S The Jaina Philosophy of Non-absolutism (Calcutta, 1944)

Malvaniya, D , Āgama Yuga kā Jaina Darśana (Agra, 1966)

Dixit K K Jaina Ontology (L D Institute of Indology, Ahmedabad, 1971)

Tatia, N Studies in Jaina Philosophy (Banaras, 1951)

The references to the texts of the Pali Tipitaka represent the Volumes and pages of the Nava Nalanda Mahavihāra Editions

The Sāmkhya Theory of Perceptual Error and Its Presentation by Prabhācandra*

—Dr Shiv Kumar

1 0 The Sāmkhya is one of the oldest systems of Philosophy based upon powerful, rational and realistic approach The system is primarily concerned with providing means of alleviating wordly miseries The miseries can be alleviated by no means other than the true knowledge of reality The system is primarily engaged in discussing the nature of reality and consequently the discussion of the theory of knowledge becomes a secondary issue That is why, the early Sāmkhyas do not basically deal with the epistemological and logical problems in details But still, the importance of the means of knowledge is never underestimated as it is admitted that the true knowledge of reality depends upon the faultless means of knowledge However, the means of knowledge depend upon the worldly experience, and the reality, according to the Sāmkhyas, is not always within the range of the senses, and consequently liable to be explained on the basis of worldly experience The Sāmkhya, therefore, discusses the means of knowledge secondarily in so far as the worldly experience is helpful in analysing the supra-sensuous objects like the Puruṣa, Prakṛti and their mutual relation As the system was reviewed in all its aspects when it came in confrontation with other philosophical systems, the Sāmkhya also sought some explanation for the epistemological problems sometimes coining new theories and sometimes accepting the epistemological doctrines of other systems which fit in their own metaphysics Thus, we come acress the development in Sāmkhya explanation of epistemological problems from Īśvarakṛṣṇa to Vācaspati and in a more deliberated form in Vijñānabhikṣu This is perhaps the reason why the Sāmkhya theory of knowledge was not crystallised in the early text of the Sāmkhyas Because of this fact only we do not come across an explanation of the Sāṁkhya theory of perceptual error earlier to the *Sāmkhyasūtras* which are supposed to belong to a later period. One of the most remarkable exposition of the Sāmkhya theory

of perceptual error is, however, recorded by Prabhācandra, a Jain logician of 9th century The present paper is an attempt to trace the development of the Sāmkhyā theory of perceptual error and to consider the intrinsic value of Prabhācandra's presentation of the same on its epistemological significance and the ontological importance

2 0 Prabhācandra[1] states in the form of the *Pūrvapakṣa* that the Sāmkhyas hold the theory of perceptual error called *Prasiddhārtha-Khyāti*, according to which the object which is established by the means of knowledge, i e, the real object itself, is apprehended in the case of erroneous knowledge The Sāmkhyas explain their position on the basis of common experience At the time of erroneous preception the object seems to be real The object perceived cannot be said to be non-existent or unreal because the investigation into the nature of the object cannot be possible without appearance The appearance is not contradicted at the time of perceiving the object There is no propriety of further investigation for the object which is established through appearance The existence of the palm is also established on the basis of its appearance only The same appearance holds good in the case of erroneous perception as well There is no contradication if the earlier knowledge is invalidated by the later one The water appears in mirage but does not appear afterwards to one who reaches that place Similarly, there appears a circle of light while the light is moved around fast but afterwards this appearance is contradicted It does not, however, go against the Sāmkhya view of the establishment of an object through appearance Though the object seen earlier does not apear afterwards, yet it is real whenever it appeared Without admitting this position the existence of lightning which disappears after appearing once in the sky cannot be established

3 0 Prabhācandra[2] offers the following criticism of the doctrine of *Prasiddhārthakhyāti*,

3 1 The real object cannot be the object of erroneous knowledge If the objects were real in all types of knowledge, there would be no distinction in the form of the erroneous and the true knowledge

3 2 The supposition of the reality of the objects of erroneous knowledge goes against the common experience If the objects of erroneous knowledge were real, they would be cognized like the objects of true knowledge If a person proceeds for activity even through the erroneous cognition of water, he would feel the marks of water in the form of wetness of the ground and the like even in the absence of water when

the erroneous knowledge is sublated The example of lightning is not able to prove the position of the Sāṁkhyas because the lightning disappears with all its components very soon but the effects of water continue for a longer time Hence some marks of water could surely be available if water were there Moreover, if water would exist where it erroneously appears to exist, it would appear to all the persons who go to see it as lightning is seen by all without exception

3 3 It the objects of all types of knowledge were real, the earlier knowledge would not be sublated by the later one Therefore, it goes against the fact of common experience

4 0 Prabhācandra's exposition of the Sāmkhya theory is not endorsed by any extent text of the Sāmkhyas Before considering his exposition, it will be worthwhile to discuss the Sāmkhya theory of perceptual error found in the texts of the Sāmkhyas themselves

4 1 The earliest work of the Sāmkhyas available to us is the *Sāmkhyakārikā* of Iśvarakrsna which does not explicitly deal with the the problem but does imply some theory of perceptual error while dealing with the attitude towards error We can consider the theory of error in two aspects—why does it occur and how does it occur As to the first, the *Sāmkhyakārikā* seems to reply that it is the lack of knowledge which gives rise to the complete non-perception or the partial perception It offers the following reasons for the lack of knowledge in the case of the non-perception of an existent object—great distance, extreme proximity, defects of organs, non-steadiness of mind, minuteness, interposition, predominance and intermixture with the like[3] The other consequence of the lack of knowledge is the incomplete or the partial knowledge on account of which the Buddhi fails to distinguish between the real and the unreal As a result, the Purusa appears to be active and the Buddhi appears to be sentient[4] The *Sāmkhyakārika* does not directly deal with the second aspect of the problem and does not explicitly mention the process of erroneous perception but a Kārikā in it implies that the object observed is mistaken to be of different nature due to their resemblance which comes to the mind through the impressions or memories of past experience That is why, when the Purusa which is sentient and inactive and the Buddhi which is insentient and active, come in mutual contact, the former looks like active and the latter like sentient. This is implied in the following *Kārikā* which deals with the erroneous identification of the Purusa with the Buddhi

तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनादिव लिङ्गम् ।
गुणकर्तृत्वेऽपि च तथा कर्त्तेव भवत्युदासीन ॥

The word इव in the *Kārikā* implies that firstly there is the resemblance with the object experienced in the past which leads to this confusion Secondly, the perceiver remembers this resemblance at the time of perceiving Thirdly, the perceiver relies upon the resembling qualities and draws the conclusion with this partial knowledge Thus, when one proceeds to analyse the nature of the Buddhi which lies connected with the Purusa and forms the component of a physiological being, he remembers some being with parts of his body endowed with consciousness and concludes that the Buddhi is sentient Similarly, while anylysing the nature of the Purusa one remembers some being which is both sentient and active and concludes that the Puruṣa is active This theory comes nearer to the *Akhyāti* view of perceptual error held by Prabhākara This seems to be the reason which leads some scholars[5] to hold that the Sāmkhyas believe in the *Akhyāti* view of perceptual error The later *Sāmkhyas*[6], however, hold that the error cannot be accounted for by the theory and criticise it thus Firstly, no one proceeds to activity only through the non-distinction of the object represented and the other remembered and secondly, this knowledge is sublated while the right knowledge is never sublated

4 2 The *Sāmkhyasūtra* discusses the rival doctrines of perceptual error held by the Buddhists,[7] the Mīmāmsakas[8], the Vedāntins[9], the Naiyāyikas[10] and maintain the theory of *Sadasatkhyāti*[11] to be a right doctrine according to which the earlier experience is sublated as well as not sublated Aniruddha[12] explains it thus In the case of the erroneous knowledge like "it is silver" the object 'it' present before us is *Sat* because its knowledge is not sublated but the object represented, viz the silver in the present case, is "*asat*" because its knowledge is sublated Vijñānabhikṣu's explanation of the theory is different He states that there is no sublation with regard to the existence of the object but there is the sublation of all the things in the soul relatively For example, the redness of a *javā* is real in itself but so far as it is attributed to the crystal it is unreal Similarly, the silver is real in its own form as placed in a shop but in so far as it is attributed to the crystal it is unreal In the same way, the universe is real in itself but is unreal in so far as it is reflected in the sentient principle [13] Vijñānabhiksu further explains that the existence and the non-existence spoken with reference to the same object are not contradictory because their qualities are different [14]

4 3 Thus, the view of the erroneous perception maintained by the *Sāmkhyasūtra* and explained by its commentators differs to a certain extent from that implied in the *Sāmkhyakārikā*. The erroneous know-

ledge, according to the *Sāṁkhyakārikā* is not erroneous in the strict sense of the term On the other hand, it is partial or incomplete knowledge The contents of the knowledge are not sublated by later experience On the contrary, the later knowledge is an advance over the former When two objects are mistaken to be practically identified, the distinction between them is overlooked due to the lack of knowledge The distinguishing features of the object represented and that presented are not fully grasped When a single object is taken to be of a different nature, the partial knowlede is applied to the whole When the Buddhi is erroneously taken as a sentient principle, the sentient part of the Buddhi is erroneously confused with the whole When the knowledge of their distinction is achieved, the sentient part comes to be the Puruṣa and the non-sentient the Buddhi Thus, it is an ommission rather than commission [15] *Sāmkhyasūtra* introduces the idea of commission by its emphasis on later sublation. It is partial knowledge in so far as the earlier experience is not sublated but it introduces a commitment of some other kind of impression in the parts where the earlier impression is sublated This further leads Vijñānabhikṣu to introduce a subjective element in error Accoring to the *Sāmkhyakārīā*, the person sees something and through the remembrance of his earlier experience reaches the erroneous conclusion while Vijñānabhikṣu holds that the person fancies the two things as one The relata are real but the positive relation fancied between the two is erroneous Vijñānabhikṣu admits the case with reference to the erroneous knowledge where only one thing is involved, for example, when shell is mistaken as silver [16] However, he does not explain the process therein He states that both the shell and the silver are given We may, therefore, conjecture that the erroneous knowledge, according to Vijñānabhikṣu is due to the postulation of a false relation of identity between the object represented and the other presented This view of perceptual error comes nearer to the *Anyathākhyāti* or *Viparītakhyāti* view held by the Naiyāyikas, the Vaiśesikas and Kumārilabhatta

4 4 Here, it may be observed that the chief aim of the *Sāmkhya-Kārikā* is to establish the reality of the material world against the subjective idealism and, therefore, it does not provide scope for fancing something even in erroneous knowledge and establishes that what leads to bondage is the lack of knowledge The *Sāmkhyasūtra*, however, finds it difficult to postulate error without subsequent sublation and Vijñānabhikṣu goes a step further to relate the Sāmkhya with the Yoga while introducing this kind of postulation of fancy in error In the Yoga[17] error is not the lack of knowledge but a positive misconception Since

the Yoga lays more stress on the purification of the internal organ, it has to postulate misconception to be removed from the mind and not merely the increase in knowledge

5 0 Thus, the earliest explicit mention of the Sāṁkhya theory of perceptual error known so far is made by Prabhācandra Even Vācaspatimiśra, *a contemporary of Prabhācandra,* does not mention the view of the Sāṁkhyas regarding the problem The use of the term *Prasiddhārthakhyati* is peculiar to Prabhācandra However, the chief interest here is not to find out whether the Sāmkqya theory would be called by one name or the other but to judge the intrinsic value of Prabhācandra's exposition on the basis of epistemological significance and the ontological importance

5 1 Though Prabhācandra's exposition is not attested by the extant texts of the Sāṁkhyas, yet it cannot be altogether rejected as the mere postulation of Prabhācandra What strikes most in his exposition is that the reality of the earlier knowledge cannot be denied though it may be sublated This, however, can be explained in the framework of the Sāmkhya as well In the Sāmkhya there are two levels of experience From a lower level, we cognise the empirical reality and from a higher level the transcendental reality These levels represent two stages of experience, viz before the acquisition of discriminative knowledge and after the acquisition of discriminative knowledge The objects perceived from lower level may not be true from higher level but when perceived from practical standpoint at the lower or empirical level, their reality cannot be denied The idea is supported by Prabhācandra's exposition of the Sāmkhya theory that the knowledge is true at both the stages, viz before sublation and after the sublation

5 2 Prabhācandra's main objection is against the reality of experience at all the stages The early Sāmkhyas could alleviate the objection in two ways The experience is real at both the levels, i e , before attaining the discriminative knowledge and after attaing it Or, they may reply that the partial knowledge reading to wrong conclusions is not sublated even after attaining the complete knowledge What sublated is the notion that it is the complete knowledge In this way, the experience comes to be true at all the stages The later Sāṁkhyas, however, would solve the problem by resorting to the theory of *Sadasatkhyāti* Aniruddha maintains that the erroneous knowledge is real in some part but unreal in the rest Vijñānabhikṣu would solve the problem on the ground that the objects are real but the relation postulated by the knowiug agent is unreal

6.0 Thus, Prabhācandra's presentation brings into light one of the important Sāṁkhya theories in epistemology which is not explicitly discussed in the early extant Sāṁkhya texts The implication of a similar theory found in the *Sāmkhyakārikā* and the elaboration with amendment in the later Sāṁkhya texts suggest the development of the Sāmkhya theory while Prabhācandra fills a gap between the earlier and the later exposition of the theory Though the criticism does not seem to be conclusive, yet no Sāmkhya author has specially referred to and replied to it.

REFERENCES

* This paper was read at the 29th Session of A I O C
1 *Prameyakamalamārtanda* (=*PKM*), Bombay, 1941, pp. 49-50 also *Nyāyakumudacandra* (*NKC*), Bombay, 1938, p 61.
2 *PKM, Loca Cit*
3 *Sāmkhyakārikā* (=SK), 7
4 *SK*, 20
5 *S Dasgupta History of Indian Philosophy*, Vol I, Cambridge, 1963, p 385, *Satyānand Sarasvati, Satyānanda Dīpikā* on Saṁkarabhāṣya
6 *Aniruddhavṛtti* (=AV) on Sāmkhyasūtra (=*SS*), Vārānasi, 1964, 5 51
7 *SS* 5 52
8 *SS* 5 53
9 *SS* 5 54
10 *SS* 5 55
11 *SS* 5 56
12 AV 5 56
13 *Sāmkhyapravacanabhāsya* (SPB) on *SS* 5 56, Calcutta, 1936
14 *Ibid*
15. Cf *M Hiriyanna Indian Philosophical Studies* No 1, pp 25-30, Mysore, 1957.
16. *SPB*, 5 56
17 *Yogavārttika*, 1 8

Journal of the Jain Vishva Bhāratī

TULSĪ PRAJÑĀ—the monthly bilingual Journal of the Jain Vishva Bharati—contains not only the research papers on all subjects of Jainology (Religion, Philosophy, History and Arts-cum-science topics) but there is also provision to incorporate in it the thought-provoking articles on metaphysics, tenets of Jainism, short biographics of the renowned ācāryas, monks and nuns, as also the prominent personalities, present or past, stories, historical events, poems and mini-poems (muktakas) Short accounts of various Jaina institutions are also welcome for publication

Contributions should preferably be submitted typed on one side of the sheet An article should not normally exceed 12 double-spaced typed sheets with wide margins for corrections Copies of articles should be retained by the authors, as the MSS are not likely to be returned

It is essential that no article etc should cast any aspersion against any sect or religion, so as to hurt their feelings

Book review is another feature of this organ, for which two copies of the publication must be sent Every contributor of research paper only is, on prior request, given gratis 5 off-prints of his paper when published, alongwith a copy of the journal containing his paper Extra copies may be supplied at cost, if requisition is made in advance

Back numbers of Anusandhāna Patrikā, Vol I, Part 1 to 5 and Tulsī Prajñā, Vol I to III are available at the old rates of subscription, viz Rs 22/- a year Single copy may be had at Rs 6/- Copies of issues No 1 and 2 of Vol IV are also available at Rs 8/- per issue

All correspondence should be addressed to –

The Managing Editor, TULSĪ PRAJÑĀ,
Jain Vishva Bhāratī,
LADNUN, 341306 (Rajasthan)

अपील

प्रिय पाठकगण,

आपकी सेवा मे "तुलसी प्रज्ञा" का "युवाचार्य विशेषाक" भेजते हुए बहुत ही आनन्दानुभूति हो रही है। इस अक के प्रकाशन मे कुछ विलम्ब हुआ है, जिसका हमे खेद है।

आप तुलसी प्रज्ञा के ग्राहक होगे ही। अन्यथा आपसे अनुरोध है कि आप इसके ग्राहक अवश्य बने एव अन्य समाज एव साहित्य प्रेमी बन्धुओ को भी तदर्थ प्रेरित करे। स्थानीय सभासस्थाओ को भी इसके ग्राहक बनने के लिए अनुरोध करे। हर जैन सस्था के लिए इसका ग्राहक बनना नितात अपेक्षित समझा जाना चाहिए।

आपको यह लिखने की आवश्यता ही नही कि जैन विश्व भारती सत्साहित्य प्रकाशन के क्षेत्र मे एक महत्वपूर्ण स्थान लिए हुए है। शिक्षा, शोध, साधना एव सस्कृति विषयक जैन पत्रिकाओ मे "तुलसी प्रज्ञा" का एक विशिष्ट महत्व है। इसके प्राय प्रत्येक अक मे आचार्य श्री, युवाचार्यजी महाराज, साध्वी प्रमुखा श्री कनकप्रभाजी आदि सत सतियाजी तथा अन्य सुधीजनो के विद्वतापूर्ण लेख होते है। इसका प्रत्येक अक सग्रहणीय है।

इसका वार्षिक शुल्क मात्र रुपये २५/- है जो कि लागत मे काफी कम है।

यह पत्रिका आपकी है। इसे आपका पूरा सहयोग मिलेगा, ऐसी आशा है।

—निवेदक—

सूरजमल गोठी	श्रीचन्द बेगानी	गोपीचंद चोपड़ा
अध्यक्ष	मत्री	प्रबध सम्पादक